हिन्दी की प्रगतिवादी कविता : त्रिलोचन की कविता के विशेष सन्दर्भ में

HINDI KI PRAGADIVADI KAVITHA
THRILOCHAN KI KAVITHA KE VISESH SANDARBH MEIN

Thesis submitted to

THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

M. J. THOMAS

Supervising Teacher

DR. A. ARAVINDAKSHAN

Reader

Prof. and Head of the Department

DR. N. RAMAN NAIR

Dean, Faculty of Humanities

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

COCHIN - 682 022

1988

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by M.J.Thomas, under my supervision for Ph.D.Degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
Cochin - 682022.

9--5--1988.

Dr.A.Aravindakshan,
Reader
(Supervising Teacher).

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका — 1 - 7

अध्याय एक

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता — 8 - 72

प्रगतिवाद की परिभाषा - प्रगतिशील और प्रगतिवाद में अन्तर - प्रगतिवाद की प्रेरक राजनीतिक परिस्थितियाँ - आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - साहित्यिक परिवेश - द्विवेदीकालीन साहित्य - छायावाद - प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और उसका प्रगतिवाद से संबंध - प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन का घोषणा पत्र (अप्रैल 1936) - प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रभाव - हिन्दी में आन्दोलन का प्रभाव - समीक्षा क्षेत्र में प्रगतिवाद की देन - प्रगतिवादी आन्दोलन की कमजोरियाँ - प्रगतिवादी कविता का मार्क्सवादी आधार - लेनिन - प्लेखनॉव - मेक्सिम गोर्की - क्रिस्टोफर काडवेल - रेल्फ फाक्स - एनस्ट फिशर - हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - यथार्थवादी रुझान - प्रगतिवादी कविता का शिल्प विधान - प्रगतिवादी कवि-केदारनाथ अग्रवाल - नागार्जुन - रामविलास शर्मा - शिवमंगलसिंह सुमन - रांगेय राघव - गजानन माधव मुक्तिबोध - शमशेर बहादुर सिंह - निष्कर्ष .

अध्याय दो

त्रिलोचन : व्यक्ति और कवि — 73 - 103

जन्म - ग्रामप्रान्तर का परिवेश - घुमन्तु चरित्र - ज्ञान-पिपासा - कविता का प्रारंभिक स्फुरण - चरित्रगत विशेषतायें - विचारदर्शन - साहित्यिक मान्यतायें - प्रगतिशील आन्दोलन का प्रभाव - त्रिलोचन की रचना-प्रक्रिया - त्रिलोचन की कविता यात्रा .

अध्याय तीन

त्रिलोचन के काव्य में प्रगतिशील चेतना 104 - 177

सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष - देश की दुर्दशा - सामाजिक दुस्थितियों का वर्णन - अकर्मण्यता के प्रति क्रोध - नारी समाज के प्रति नया दृष्टिकोण - राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण - लोकतंत्र की अर्थ-शून्यता - वर्तमान शासन व्यवस्था की पतितावस्था - राजनीतिक अवनति - धर्मांधता के प्रति विरोध - सर्वहारा वर्ग का जागरण - सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति - मनुष्य की प्रगति में विश्वास - नवनिर्माण की आकांक्षा - आधुनिक समाज में छटपटाता व्यक्ति - कुछ आत्मपरक कवितायें - जीवन का एक लघुप्रसंग - अभावग्रस्त जीवन का रेखाचित्र - दुख की अभिव्यक्ति - एकाकीपन की भावना - दुनियादारी में कवि का पिछडापन-सामाजिक स्थिति में पिछडापन - जीवन संघर्ष में अपराजेय मनुष्य .

अध्याय चार

त्रिलोचन की कविता में प्रेम की परिकल्पना 178 - 238

स्वस्थ प्रेम का चित्रण - कौमार्य और निष्कलंक प्रेम - प्रथम अनुराग - प्रेम का उदय - प्रेम का तटस्थ स्वरूप - प्रेम का यथार्थवादी रूप - समाजवादी प्रेम - किसानी प्रेम - संघर्षपूर्ण जीवन में प्रेम - अभावग्रस्तता और प्रेम - वर्ग-समाज और प्रेम - दाम्पत्य प्रेम - आश्वासन की दूती - एकान्त में संगिनी - रूप-वर्णन: प्रेम का एक अलग सन्दर्भ - संयोग और वियोग पक्ष - संयोग पक्ष - प्रेम में सखाभाव - प्रेम का वियोग पक्ष - वियोग में भी संयोग की स्मृति - प्रेमाभिव्यक्ति के अन्य चित्र - रोमानी प्रेम - समर्पण की भावना.

अध्याय पाँच

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति-परिकल्पना 239 - 310

प्रकृति-परिकल्पना - प्रकृति और काव्य - हिन्दी काव्य और प्रकृति - छायावादी युग और प्रकृति का स्वरूप - त्रिलोचन की कविता में प्रकृति के अनेकायामी प्रसंग - प्रारंभिक कविता धरती की प्रकृति कवितायें - स्वरछन्द प्रकृति का वर्णन - प्रकृति के प्रति आभार मानवीय साक्षात्कार की इच्छा - मानवीय भावों की भूमिका - प्रगतिशील अवधारणा का समन्वय - प्रकृति के द्वारा श्रम महत्व - "प्रभात" प्रगति-अभियान की विजय का प्रतीक - त्रिलोचन की परवर्ती कवितायें - ओजपूर्ण प्रकृतिचित्रण - मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा - कवितना की प्रेरक प्रकृति - ऋतुवर्णन की सहजता - ग्रामान्तर की प्रकृति की जीवन्तता - किसानी दृष्टि से ग्रामान्तर प्रकृति - त्रिलोचन के काव्य में लोक-जीवन .

अध्याय छह

त्रिलोचन के काव्य की शिल्पविधि 311 - 383

त्रिलोचन के काव्य में प्रतीक विधान - त्रिलोचन के काव्य में बिंबविधान - त्रिलोचन के काव्य में छन्द विधान - अन्य भाषा-काव्य रूप - गज़ल - रूबाई - चतुष्पदी - सॉनेट - सॉनेट के गठन से अनुशासन - गीत-काव्य - लंबी कवितायें - क्षणिकायें - त्रिलोचन की काव्य भाषा

उपसंहार 384 - 390

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची 391 - 408

भूमिका

भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता में त्रिलोचन का शीर्षस्थ स्थान है। उनकी काव्य-यात्रा प्रगतिवादी काव्यधारा के साथ साथ शुरू हुई। प्रगतिवाद के प्रतिष्ठापकों में त्रिलोचन का स्थान है। प्रगतिवाद के पश्चात् आधुनिक हिन्दी कविता में अनेकानेक परिवर्तन हुए। इस कारण से आधुनिक हिन्दी कविता के अलग-अलग युग निर्धारित हैं और उन्हें एक दूसरे से अलग करके भी देखे जाते हैं। प्राय: प्रगतिवाद के पश्चात् की काव्य-प्रवृत्तियों के साथ त्रिलोचन को देखने का कार्य बहुत कम हुआ है। परन्तु त्रिलोचन की काव्य-यात्रा उत्तरोत्तर विकसित तथा कविता की गहराइयों की तलाश करती रही है। इतने पर भी त्रिलोचन के बारे में शोध-कार्य प्रगतिवादी बृहत्-त्रयी के अन्य दो कवियों की तुलना में बहुत कम ही हुए हैं। संभवत: इसका कारण यह है कि केदारनाथ अग्रवाल का शुरू से प्रगतिशील लेखक संघ के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है और प्राय: वे उसके प्रवक्ता भी हैं। नागार्जुन हिन्दी काव्य-जगत में एकाएक जनप्रिय कवि भी हो गये। लेकिन त्रिलोचन अपनी काव्य-साधना के साथ इसप्रकार तल्लीन रहे और उनका नाम उतना चर्चित भी नहीं हुआ। इस कारण से उनकी बहुत सारी कविताओं का संकलन के रूप में प्रकाशन उन्नीस सौ अस्सी के बाद ही अधिकाधिक हुआ है।

प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों को निर्णीत करते हुए त्रिलोचन की कविताओं का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करना ही इस शोध प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छह अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय प्रगतिवाद की परिचर्चा है। हिन्दी में प्रगतिवाद के संबंध में, उसके पक्ष और विपक्ष में खड़े होकर बहुत कुछ लिखे गये हैं। प्रस्तुत अध्याय में सामान्यत: प्रगतिवाद से संबंधित सभी मुख्य पक्षों पर, संक्षिप्त ढंग से ही सही, विचार किया गया है।

विशेष रूप से तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना जैसी ऐतिहासिक घटना का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि प्रगतिवाद इतिहासकारों की दृष्टि में सीमित समय की काव्य-प्रवृत्ति है, फिर भी प्रगतिवादिता की अन्दरूनी स्थिति हर युग की रचनाशील कविता की अन्वेषित दिशा है। वस्तुतः इस दृष्टि से ही प्रगतिवाद को देखा गया है। त्रिलोचन की कविता के अध्ययन के लिए प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन भी आवश्यक है। प्रगतिवाद के प्रारंभिक दौर की सभी प्रवृत्तियाँ त्रिलोचन की प्रारंभिक कविताओं में भली-भाँति प्राप्त होती हैं। अतः प्रगतिवाद का अध्ययन मात्र भूमिका बाँधने का कार्य ही नहीं करता है बल्कि विवेच्य कवि की काव्य यात्रा के मुख्य पड़ावों की जानकारी भी देता है।

दूसरा अध्याय त्रिलोचन के कृति-व्यक्तित्व से संबंधित है। हिन्दी कविता में त्रिलोचन के व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान है। निराला के समान ही त्रिलोचन के बारे में भी हिन्दी काव्य-जगत में ऐसी कई बातें प्रचलित हैं जिनका सटीक विश्लेषण करना उनके कृति-व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये भी आवश्यक है तथा उनकी कविता की परख के लिए भी। इस अध्याय में त्रिलोचन के जीवन और व्यक्तित्व के मुख्य पक्षों पर विचार किया गया है। त्रिलोचन के साथ उनके निवास स्थान पर कई दिन रहकर उनके जीवन तथा काव्य के संबंध में घंटों जो बातें हुईं, उसके आधार पर ही मैंने इस अध्याय को स्वरूपित किया है। अलावा इसके, केदारनाथसिंह, दिविक रमेश, वीरेन्द्र मोहन, शंभुबादल आदि के साथ त्रिलोचन के संवादों का सहारा भी इस अध्याय के लिये स्वीकारा गया है। व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के अध्ययन के साथ साथ त्रिलोचन के अन्य कार्यक्षेत्रों में जो योगदान है उसका भी विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

आगे त्रिलोचन की कविताओं के अध्ययन से संबन्धित चार अध्याय हैं। अब तक त्रिलोचन के बारह काव्य संग्रह प्रकाशित हैं। वे इस प्रकार हैं - धरती, गुलाब और बुलबुल, दिगन्त, ताप के ताए हुए दिन, शब्द, उस जनपद का कवि हूँ, अरघान, तुम्हें सौंपता हूँ, फूल नाम है एक, अनकहनी भी कुछ कहनी है, चैती, सब का अपना आकाश । लेकिन अन्तिम संकलन - सब का अपना आकाश - का अध्ययन इस शोध कार्य में शामिल किया नहीं गया है। इसका कारण यही है कि उक्त संकलन का प्रकाशन शोध प्रबन्ध की पांडुलिपि तैयार करने के बाद ही हुआ है। अतः "चैती" तक के काव्य संकलन अध्ययन-सीमा के अन्तर्गत हैं।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है, "त्रिलोचन के काव्य में प्रगतिशील चेतना"। त्रिलोचन धरती के कवि हैं। उनकी मूल चेतना सर्वहारा वर्ग के प्रति संबद्ध रही है। मुख्य रूप से त्रिलोचन ने किसान-जीवन की अभावग्रस्तता, उनकी आर्द्रता, उनपर होने वाले शोषण-अत्याचार, उनकी जुझारू वृत्ति आदि को प्रमुख विषय के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने अपने शब्दों को अनावश्यक ढंग से आह्वानात्मक नहीं बनाया। उनकी कविता अभावग्रस्तता की निजता की कविता भी है, स्वाभिमान भंगिमाओं की भी कविता है। जडता से उनका सख्त विरोध है। प्रगतिशीलता की स्फूर्ति उनमें हमेशा प्राप्त होती रहती है। इस अध्याय में उनके प्रथम काव्य-संग्रह "धरती" पर विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पुनः परवर्ती संकलनों की रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत है। त्रिलोचन की अनेकानेक कवितायें आत्मपरक हैं। बहिरंग स्तर पर स्पष्टतया यह लक्षित किया जा सकता है कि उन कविताओं का संबंध स्वयं कवि के जीवन के साथ ही है। अंशतः यह सही भी है। लेकिन त्रिलोचन ने अपने आत्मबिंब के सहारे जिस छटपटाते हुए व्यक्ति का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया है उसका संबंध उनकी प्रगति-चेतना से ही है। अतः ऐसी कविताओं का अध्ययन भी इस प्रकरण के लिए स्वीकार्य समझा गया है । एक निरीह, निरालंब, दयनीय औसत आदमी का चित्र भी इन कविताओं में है। वह

संघर्षरत है। वह व्यावहारिक नहीं है, इसलिए वह पराजित होता है, कभी दर-दर भटकता है। त्रिलोचन की वास्तविक प्रगति-चेतना ऐसी आत्मपरक कविताओं में है क्यों कि इन कविताओं का व्यक्ति अपराजेय भी है।

चौथा अध्याय त्रिलोचन की कविता के प्रेम-संकल्प से संबद्ध है। अध्याय का शीर्षक है - "त्रिलोचन की कविता में प्रेम की परिकल्पना"। त्रिलोचन ने प्रेम को काफी महत्व दिया है। छायावादी कविता के प्रेम के वायवीपन के स्थान पर पहली बार त्रिलोचन की कविता में सहज प्रेम का परिदृश्य देखने को मिला। त्रिलोचन ने कहीं भी प्रेम को अवास्तविक नहीं बनाया। प्रेम के सभी पक्षों से संबंधित कवितायें उनके विभिन्न संकलनों में उपलब्ध हैं। लेकिन पारंपरिकता के स्थान पर स्वच्छता को उन्होंने महत्ता दी। प्रेम को उन्होंने नियमों से आबद्ध करके देखा नहीं है। इसलिए उनकी विरहजन्य प्रेम-पीडा भी सहज मालूम पडती है। त्रिलोचन ने प्रेम को किसानी-चेतना से जोडा, मेहनतकश कमकरों की भावनाओं से भी जोडा है। किसान की आकाँक्षाओं के समान बढते हुए प्रेम का तरल सौन्दर्य त्रिलोचन ने जिस सूक्ष्मता से सँवारा है, वह उनकी काव्य दक्षता का ही परिचायक नहीं, बल्कि उनकी लोकचेतना की आन्तरिकता का भी परिचायक है। यही नहीं, उनकी सौन्दर्यवादी दृष्टि का रचनात्मक एहसास भी इन कविताओं से प्राप्त होता है।

प्रगतिशील कवि होते हुए भी त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। प्रकृति उनकी कविताओं की मुख्य विषय-वस्तु भी है। शोध-प्रबन्ध का पाँचवाँ अध्याय त्रिलोचन की कविता में प्रकृति के स्वरूप से संबद्ध है। प्रकृतिपरक कविताओं में भी त्रिलोचन के सौन्दर्यात्मक रुझान की प्रतीति मिलती है। प्रकृति के संबंध में विचार करते हुए स्वयं त्रिलोचन ने कालिदास-जैसे कवियों के साथ अपना संबंध सूचित किया है। यह सच है कि त्रिलोचन की कविता में प्रकृति रहस्यवादी स्तर की नहीं। परन्तु प्रकृति की

समग्र विराटता को आत्मसात् करने का प्रयत्न उनकी कविताओं में दृष्टव्य है। उसके साथ साथ उन्होंने प्रकृति को किसानी चेतना से जोड़कर एक प्रकार से अनूठे सौन्दर्य का प्रतिपादन किया है। त्रिलोचन की प्रकृति अगर एक तरफ़ लोकचेतना का एहसास देती है तो दूसरी तरफ़ अनुपम चित्रात्मकता का सही परिचय भी देती है। यह चित्र मन के विभिन्न प्रकार के उतार-चढावों से संबंधित भी है। कहीं कहीं त्रिलोचन ने प्रकृति का उपयोग प्रगति चेतना को निरूपित करने को भी किया है। इसप्रकार प्रस्तुत अध्याय में त्रिलोचन की सभी प्रमुख प्रकृतिपरक कविताओं का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

छठा अध्याय त्रिलोचन के काव्य शिल्प का अध्ययन है। प्रगतिवादी दौर की रचनाओं में शिल्प का अतिरिक्त आग्रह उपलब्ध नहीं है। लेकिन त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में सूक्ष्म अनुशासन का परिचय दिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी कविताओं में शिल्पगत सूक्ष्मता का बोझ है। त्रिलोचन अपनी कविताओं में सहज ही हैं। साथ ही साथ वे अनुशासनप्रिय भी हैं। उन्होंने कविताओं में अनेकानेक देशी-विदेशी छन्दों का अनूठा प्रयोग किया है। त्रिलोचन के नाम के साथ सॉनेट का अविच्छिन्न संबंध होने के कारण तथा त्रिलोचन के सॉनेटों का विशद अध्ययन आवश्यक हो गया है। इसलिए गज़लों, चतुष्पदियों और सॉनेटों के प्रयोग में एकमात्र दक्ष कवि के रूप में त्रिलोचन हमारे सामने उपस्थित होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उनके सभी शैल्पिक प्रयोगों तथा काव्यभाषा का अध्ययन किया गया है।

उपसंहार में प्रगतिवाद की समकालीन प्रासंगिकता के मुद्दे को उठाते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में त्रिलोचन को देखा गया है। इस ओर भी संकेत किया गया है कि किस प्रकार त्रिलोचन प्रगतिवाद से जुडे कवि हैं तथा किसप्रकार वे प्रगतिवाद की सीमाओं का उल्लंघन करते दिखाई देते हैं। यह भी समर्थित करने का कार्य किया गया है कि त्रिलोचन आज की कविता में क्यों इतने प्रमुख हैं।

प्रस्तुत शोधकार्य कोच्चिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डा. अरविन्दाक्षनजी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। उन्हीं के बहुमूल्य मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन से ही प्रस्तुत प्रबन्ध ने अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त कर लिया है। आदरणीय अरविन्दाक्षनजी के प्रति बडी श्रद्धा के साथ अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. रामन नायर जो शोधकार्य में हमेशा मेरा प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनके स्नेहोष्मल प्रोत्साहन के लिए उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

विभाग के प्राचार्य डा. विजयनजी के प्रति भी मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ, उन्होंने समय-समय पर मुझे आवश्यक निर्देशन और सुझाव दिये हैं।

हिन्दी विभाग के दूसरे अध्यापकों एवं कार्यालय के कर्मचारियों तथा सेंट्रल लाइब्रेरी एवं विभागीय लाइब्रेरी के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत शोधकार्य के सिलसिले में मुझे दो बार त्रिलोचन जी से मिलने का सुअवसर मिला। मुझे उनके साथ कुछ दिन तक रहने और शोधकार्य एवं उनकी कविता के संबंध में बातें करने का सुयोग भी प्राप्त हुआ है। त्रिलोचनजी ने मुझे जो स्नेह दिया वह मेरे लिए बहुमूल्य है। उनकी सद्भावना के लिए मैं उस महामानव के प्रति बडी श्रद्धा से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत शोधकार्य के सिलसिले में बहुमूल्य उपदेश और सुझाव देनेवाले हिन्दी के वरिष्ठ आलोचकों और लेखकों के प्रति आभार प्रकट करना मेरा परम कर्त्तव्य है। उनमें से प्रमुख हैं, हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचक डा. प्रभाकर श्रोत्रिय, डा. कमलाप्रसाद पांडेय, राजेश जोशी, डा. तारकनाथ बाली, प्रसिद्ध पत्रकार एवं आलोचक श्री. नन्दकिशोर नवल, दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डा. महेन्द्रकुमार, सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डा. शिवकुमार मिश्र, उज्जैन विक्रम विश्वविद्यालय के रीडर डा. बुधौलिया, सागर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक

एवं लेखक डा. गोविन्द द्विवेदी। इन महान व्यक्तियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकारियों को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे "फैकल्टी इम्प्रूवमेंट प्रोग्राम" के अन्तरगत शोध करने की अनुमति और आर्थिक सहायता दी। इस सिलसिले में कोच्चिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय और सैंट स्टीफन्स कॉलिज के अधिकारियों को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे शोधकार्य के लिये आवश्यक सहायता प्रदान की है।

कोच्चिन
9-5-1986

एम. जे. तोमस.

अध्याय एक

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता

अध्याय एक

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता

प्रगतिवाद छायावादोत्तर काव्यधारा है। प्रगतिवादी कविता सामाजिक चेतना और जीवन-यथार्थ को महत्व देती है। छायावादी कविता अतिशय कल्पना-प्रवण, जीवन के सुकुमार भावों को अधिक प्रधानता देनेवाली, वैयक्तिक कविता है। प्रगतिवाद ने सबसे पहले छायावाद की घोर वैयक्तिक प्रवृत्ति का विरोध किया। जीवन का संस्पर्श और आम आदमी की अवधारणा लेकर प्रगतिवाद ने अपना अभियान शुरू किया था। देशी और विदेशी परिस्थितियाँ इसके लिये अनुकूल थीं। एक ओर विदेशी शासन की दमनकारी नीति, अन्तरदेशीय मंदी और बेरोज़गारी, दूसरी ओर संसार-भर के दीन-हीन, दलित मानव-राशि को मुक्ति दिलाने का वादा करता हुआ रूसी सरकार का विश्व रंगमंच पर आगमन। इसके द्वारा प्रचलित आदर्शों से आकृष्ट कुछ लंदन प्रवासी भारतीय साहित्यकार 1936 में लखनऊ

में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन संपन्न करने में सफल हुए।[1] इस समय तक परिव्याप्त मार्क्सवादी चेतना का प्रभाव इसमें देखा जा सकता है। "रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणाकेन्द्र बन रहा था।"[2] विश्वम्भर की प्रगतिवादी कविता के मूल में साम्यवादी दर्शन की स्पष्ट झलक है। हिन्दी की प्रगतिवादी कविता भी उस बृहत् धारा की सहवर्ती धारा है।

यह विदित बात है कि प्रगतिवादी लेखक मानवतावाद, समाजवाद आदि से प्रेरित थे। समाजवादी यथार्थ का चित्रण, परंपरागत और सामंतवादी-पूँजीवादी समाज के जर्जर ढाँचे के खिलाफ़ क्रान्ति, वर्गरहित समाज की स्थापना आदि लक्ष्यों से वे प्रेरित और प्रोत्साहित थे। अतः डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का कथन संगत लगता है - "प्रगतिवाद सामाजिक मानवतावाद से निसृत, समष्टिमात्र को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक शोषण से मुक्ति दिलाने के लिये चालित, भौतिकवाद पर आधारित, वामपंथी साहित्यकारों से उद्घाटित साहित्य आन्दोलन है।"[3] प्रगतिवादी कविता विकासशील प्रवृत्तियों से युक्त कविता है। प्रगतिशील चेतना का महत्व कभी कम नहीं हुआ है।

---

1. "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन 1936 में लखनऊ में हुआ इस संघ की स्थापना 1935 में डा. मुल्कराज आनंद, सज्जाद ज़हीर, भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखकों ने लंदन में की थी" - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्दश भाग) सं. हरवंशलाल शर्मा - पृष्ठ 41.
2. वही - पृष्ठ 124.
3. हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - 1952, पृष्ठ 304.

प्रगतिवाद की परिभाषा

प्रगतिवाद उस काव्यधारा का नाम है जो मार्क्सवाद के आलोक में सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देती है। वह व्यक्ति के सुख-दुख से बढ़कर समष्टि के सुख-दुख को महत्व देती है। छायावादी युग में काव्य वैयक्तिकता के सीमित दायरे में बन्द जो था उसे प्रगतिवाद ने जन-जीवन के बीच में प्रतिष्ठित किया। छायावाद अपने अंतिम काल में कुंठाग्रस्त अवस्था में पहुँच चुका था जिसमें जन-जीवन के सुख-दुख और आशा-अभिलाषा की अपेक्षा वैयक्तिक और काल्पनिक भावभिव्यंजना की गुंजाइश थी। प्रगतिवाद ने तत्कालीन युगीन सत्यों के अनुरूप जीवन यथार्थ को काव्य का विषय बनाया। वही युग की आवश्यकता भी थी। प्रायः हिन्दी के सभी प्रमुख आलोचकों ने प्रगतिवाद के बारे में विचार किया है। उनमें से कुछ आलोचकों की परिभाषा पर विचार करना संगत लगता है।

"प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गई जो छायावाद की समाप्ति पर 1936 के आसपास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना प्रारंभ हुआ।"[1] प्रस्तुत परिभाषा प्रगतिवाद के द्वारा सामाजिक चेतना पर ज़ोर दिये जाने की ओर संकेतित है। डा. नगेन्द्र के अनुसार, "प्रगतिवाद के उद्भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ सहायक हुई हैं, साथ ही साथ छायावाद की जीवनशून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उनमें निहित थी।"[2] प्रस्तुत दृष्टि से डा. रामदरश मिश्र भी सहमत हैं - "देशी-विदेशी परिस्थितियों के साथ छायावाद की व्यक्तिवादिता भी प्रगतिवाद के जन्म के लिये प्रेरक रही।"[3]

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्दश भाग) डा. हरवंशलाल शर्मा - 1957 पृष्ठ 12५.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेन्द्र - 1973, पृष्ठ 631.
3. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - डा. रामदरश मिश्र - 1978, पृष्ठ 61.

भारतीय परिस्थितियों और परंपरा को प्रगतिवाद के जन्म के लिये उत्तरदायी मानते हुए साम्यवादी आन्दोलन से प्रगतिवाद को संबद्ध करनेवाले अन्य विद्वानों के मत भी विचारणीय हैं। "प्रगतिवादी काव्य का उद्भव और विकास साम्यवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में हुआ है, फिर भी भारतीय परिस्थितियों और परंपरा का आलोक भी इसमें पाया जाता है।"[1]

प्रगतिवाद को भारतीय मानवतावादी परंपराओं से विकसित साहित्य धारा माननेवाले विद्वान भी हैं - "प्रगतिवादी साहित्य भारतीय साहित्य की समस्त मानवतावादी परंपराओं से विकसित, सुसंगत, वैज्ञानिक चेतना का साहित्य है - वह भारतीय जन-मानस की आकांक्षाओं का प्रतिबिंब है।"[2] प्रगतिवाद का समारंभ पूर्णरूप से पश्चिमी दर्शनों से माननेवाले आलोचक भी हैं, "प्रगतिवाद के मूल उत्स की खोज करने पर उसके देशी-विदेशी दोनों स्रोत उपलब्ध होते हैं। फ्रेंच साहित्य में कलावादकी प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न यथार्थवाद, वैज्ञानिक, भौतिकवादी, जनवादी मनोभाव आदि सभी दर्शन इसके उद्गम के लिये उत्तरदायी हैं।"[3] कुछ और विद्वानों के अनुसार प्रगतिवादी काव्य 1936 के पहले के "लगभग दो दशकों से प्रवाहित अन्तर-धाराओं का और बदलती हुई परिस्थितियों का परिणाम था, केवल छायावाद की प्रतिक्रिया में ही नहीं जन्मा था।"[4]

1936 के पहले के दो दशकों से देश और विदेश की परिस्थितियों को प्रगतिवादी काव्यधारा के उद्गम का प्रेरक माननेवालों के साथ ही

---

1. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - भक्तराम शर्मा - 1980, पृष्ठ 135.
2. प्रगतिशील कविता के सौन्दर्यमूल्य - अजय तिवारी - 1974, पृष्ठ 112.
3. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - "प्रगतिवादी काव्य का भारतीय संदर्भ" (अनिलकुमार) से उद्धृत - 1978, पृष्ठ 126-127.
4. छाया के बाद - मुज़ीब रिज़वी - अशोक चक्रधर - 1978, पृष्ठ 17.

नामवरसिंह की राय का भी विवेचन संगत लगता है - "छायावाद के गर्भ से सन् 1930 के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्यधारा का जन्म हुआ उसे सन् 1936 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गयी।"[1] इस परिभाषा में भी छायावादी कविता के विकास के साथ साथ सामाजिक चेतना के ज़ोर पकडने की ओर संकेत है। इतने पर भी 36 तक इसका कोई आन्दोलीकृत रूप नहीं हो पाया था। यही नहीं, इस आन्दोलन के वैश्वविक सन्दर्भ को भी भूला नहीं जा सकता। प्रगतिशील या प्रगतिवादी काव्य को विशाल एवं व्यापक अर्थ में लेनेवाले विद्वान भी हैं जो समाज को आगे बढानेवाले किसी भी साहित्य को प्रगतिशील मानते हैं। "प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है।"[2]

प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यक दृष्टिकोण या मार्क्सवादी सिद्धांतों का साहित्यक रूपान्तर समझने वाले भी हैं - "मार्क्स का सिद्धांत साहित्य में जिस प्रकार प्रयुक्त हो रहा है उसे प्रायः साहित्यक प्रगतिवाद के नाम से पुकारते हैं।"[3] शिवदानसिंह के अनुसार - "प्रगतिवाद साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रगतिवाद के संबंध में विद्वानों के बीच में समानता की गुंजाइश बहुत कम दिखाई पडती है। प्रगतिवाद को मार्क्सवाद से प्रेरित कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन इसे केवल मार्क्सवादी सिद्धांत का रूपान्तर मात्र कहना अनुचित लगता है क्योंकि 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पहले

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ - नामवरसिंह - 1964, पृष्ठ 74.
2. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - रामविलास शर्मा - 1986, पृष्ठ 26.
3. नया साहित्य नये प्रश्न - नन्ददुलारे बाजपेयी - 1963, पृष्ठ 4.
4. साहित्य की समस्यायें - शिवदानसिंह चौहान - 1956, पृष्ठ 54.

के दो दशकों से भारत की देशी परिस्थितियाँ युग परिवर्तन की माँग करती दिखाई पडती हैं। इसका प्रभाव साहित्य में पडना बिलकुल स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, तत्कालीन छायावादी कविता कुंठाग्रस्त, वैयक्तिक एवं वायवी स्वरूप को प्राप्त कर रही थी। स्वयं छायावादी कवियों के इसे महसूस करने का प्रमाण मिलता है। अलावा इसके छायावादी कवियों में निराला का योगदान महत्वपूर्ण है। दरअसल वे छायावाद के अन्दर - अन्दर लड रहे थे। परिवर्तन की वांछा उस समय प्रबल थी। युगीन परिस्थितियों ने उसके लिये आवश्यक वातावरण जुटाया। मार्क्सवादी प्रभाव ने इसके लिये स्वीकृत स्वरूप दिया।

निष्कर्षत हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि प्रगतिवादी कविता मार्क्सवाद से प्रेरित सामाजिक चेतना से युक्त कविताधारा है जो युगीन, देशी और विदेशी परिस्थितियों से जागृत होकर जीवन यथार्थ को वाणी देने तथा युग-परिवर्तन का सन्देश देने में सफल रही है।

प्रगतिशील और प्रगतिवाद में अन्तर

"प्रगति" शब्द का अर्थ है, "आगे की तरफ गति"। इस अर्थ में सारा साहित्य प्रगतिशील है जिसमें मानव-समाज की उन्नति में सहायक तत्व हों। "वह साहित्य जो समाज को आगे की ओर जाने में मदद देता है, प्रगतिशील है।"[1] समाज की तत्कालीन अवस्था में सुधार या प्रगति की ओर गति में उन्मुख करानेवाले साहित्य की कोटि में हिन्दी का बहुत सारा साहित्य आ जाता है।

"प्रगतिशील" शब्द का व्यापक अर्थ के रहते हुए भी प्रायः उसका प्रयोग प्रगतिवादी कविता के सन्दर्भ में किया जाता है। "प्रगतिशील" और

---

1. प्रगतिवाद की रूपरेखा - डा. मन्मथनाथ गुप्त - 1952, पृष्ठ 4.

"प्रगतिवाद" दोनों शब्द प्रेमचन्द के सभापतित्व में संपन्न प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के साथ उद्घाटित साहित्य-आन्दोलन से उत्पन्न साहित्य विशेष के लिये रूढ़िग्रस्त हो गये। "प्रगतिशील" और "प्रगतिवाद" शब्दों का प्रयोग संपूर्ण साहित्य के एक सामान्य गुण के अर्थ में न करके साहित्य के एक अंश तक सीमित रखना तर्कसंगत नहीं लगता। इसकी पुष्टि करनेवालों की राय में "जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है।"[1]

दोनों शब्दों को पर्यायवाची शब्द समझनेवालों का विरोध करने वाले भी हैं - "प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवाद ये दोनों एकार्थक नहीं है, और न प्रगतिशील लेखक का प्रगतिवादी होना ही ज़रूरी है।"[2] प्रगतिशील और प्रगतिवादी साहित्य को मार्क्सवाद से प्रेरित साहित्य विशेष मात्र समझनेवालों की धारणा का निराकरण करते हुए शिवदान सिंह चौहान आगे कहते हैं - "प्रगतिशील साहित्य प्रोलितेरियन या सोवियत साहित्य का पर्याय नहीं है, वह कोई आज की, किसी विशेष "युग" "वर्ग" या "देश" की चीज़ नहीं है"- उनकी दृष्टि में "जो साहित्य जीवन के यथार्थों को गहराई और कलात्मक ऊँचाई से प्रतिबिंबित करता है वह प्रगतिशील है, चाहे उसकी रचना करनेवाले लेखकों का व्यक्तिगत दृष्टिकोण आदर्शवादी हो या मार्क्सवादी।"[3]

प्रगतिशील शब्द का प्रयोग सामान्यतः साहित्य के सन्दर्भ में हो सकता है। फिर भी प्रगतिवादी साहित्य के साथ प्रगतिशीलता का निकट संबंध है।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवरसिंह - 1964, पृष्ठ 80.
2. साहित्य की समस्यायें - शिवदानसिंह चौहान - 1956, पृष्ठ 51.
3. वही.

प्रगतिवाद की प्रेरक राजनीतिक स्थितियाँ

प्रगतिवाद के उद्गम के लिये कारणभूत देशी परिवेश का विवेचन आवश्यक है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक परिवेश का विश्लेषण विशेष महत्व का है।

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में बीसवीं सदी के पहले दशक की सबसे महत्वपूर्ण घटना स्वदेशी आन्दोलन है। स्वदेशी आन्दोलन 1905 में बंगाल विभाजन के विरुद्ध प्रान्तीय स्तर पर शुरू होनेवाला एक आन्दोलन तो था।[1] लेकिन यह बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की भारतीय-स्वतंत्रता के इतिहास में एक महान मील-पत्थर है। यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया और देश भर के शक्तिशाली आन्दोलन के रूप में बदल गया।[2] देश के विविध भागों में राष्ट्रीय भावना का संचार करने में प्रस्तुत आन्दोलन समर्थ हुआ था।[3] प्रस्तुत आन्दोलन का पहला फल मिन्टोमोरली नियम - सुधार है।[4] लेकिन इस नियम का वास्तविक उद्देश्य भारतीयों को स्वशासन देना नहीं था, बल्कि स्वदेशी आन्दोलन को पराजित करना था।[5]

इस नियम के साथ सरकार ने "रौलक्ट बिल" भी पास किया जिससे कोई भी राज्यद्रोह के लिये दंडित किया जा सकता था। एक ओर जनता का

---

1. 'The Swedeshi movement which commenced in 1905 as a protest against the partition of Bengal was at first a purely local movement'. 'History of the Freedom movement in India'- Vol.2 - R.C.Manjumdar-Preface p.XIII. 1963.
2. Ibid. p.139.
3. Ibid. 'It brought about a great upheaval of nationalist sentiment all over India'. Preface p.XV.
4. Its first fruit was the Minto Morley scheme of reforms of 1909. 'History of freedom Movement in India' - Vol.4. Tharachand - Preface p.VIII.
5. 'The reform was a clear device to defeat the movement'- ibid.

समर्थन प्राप्त करना और दूसरी ओर स्वतंत्रता के लिये लड़नेवाले लोगों का दमन करना, यही सरकार की नीति थी। गाँधीजी के नेतृत्व में रौलक्ट बिल का विरोध किया गया। स्वदेशी आन्दोलन से भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना जागृत हो गयी और राष्ट्रीय कांग्रेस की शासन-विरोधी प्रवृत्ति बलवती हो गयी।

इस बीच में जापान ने रूस पर सैनिक विजय प्राप्त की तो देशी आन्दोलनों की चेतना बहुत ही जागृत हो गयी क्योंकि एक यूरोपीय देश पर एशियायी देश की विजय अभूतपूर्व थी।

1914 में पहला विश्वयुद्ध हुआ तो भारतने जन-धन से ब्रिटीश सरकार की सहायता की। लेकिन युद्ध के बाद सरकार की दमन-नीति प्रबल हो गयी। इससे जनता सरकार के प्रति क्रुद्ध हुई और गाँधीजी भी उनकी दृष्टि में "विद्रोही" हो गये क्योंकि उन्होंने युद्ध में सब प्रकार से ब्रिटीश सरकार की सहायता करने का आह्वान किया था।

1919 में "मोन्टेग चेंसफार्ड" सुधार भी ब्रिटीश सरकार की "फूट करो और राज करो" नीति का परिणाम था।[1] 1920 में गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन आरंभ किया। उन्होंने सत्याग्रह का आविष्कार किया। आवेश में आकर जनता ने हिंसात्मक मार्ग भी अपनाया। चौरीचौरा के हिंसा - कांड से अशान्त गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया।[2] असहयोग आन्दोलन को वापस लेने से राष्ट्रीय एकता बिखर गयी। सरकार ने मुस्लिमलीगवालों को कांग्रेस से अलग कर दिया। कांग्रेस भी दो दलों में बँट गयी। गाँधीजी की असहयोग - आन्दोलन वापस लेने की नीति की देश

---

1. 'The principle of separation was repeated in the Mauntague Chemsford reforms', 'History of freedom movement in India' - Tharachand - Preface p.VIII.

2. Ajaykumar Ghosh and Communist movement in India - Pyotr Kutsobin - 1987, p.8.

भर में आलोचना हो गयी।[1] राष्ट्रीय कांग्रेस का भी विघटन हो गया। मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दास ने मिलकर स्वराज्य पार्टी की स्थापना की।[2]

स्वदेशी आन्दोलन के समय से ही देश के युवकों में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ ज़ोर पकडती जा रही थी।[3] निरस्त्र और सशस्त्र आन्दोलन दोनों साथ ही साथ चल रहे थे। 1920-21 में गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। तब क्रान्तिकारी गतिविधियाँ मन्द पड गयी थीं। लेकिन गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया तब क्रान्तिकारी आन्दोलन ज़ोर पकड गया।[4]

1917 में रूस में स्थापित मार्क्सवादी, साम्यवादी सरकार, मज़दूरों, कृषकों और श्रमिकों की सरकार थी जो सिद्धांत रूप से ही हिंसात्मक नीति को अपनाये हुए थी[5] और जिसकी योजनाओं की सफलता ने विश्व भर के पीडित, शोषित लोगों को उत्साहित करना शुरू किया था, इसीसे

---

1. 'The action of Mahatma Gandhi in suspending the movement was severely criticized from many quarters' The Cambridge history of India - H.H.Dodwell - Vol.VI 1932, p.772.

   'Under the leadership of C.R.Das and Motilal Nehru the Swaraj party was set up', ibid.

3. The revolutionary movement which became a potent force in Indian politics during the Swedeshi movement continued with checks and breaks upto the end of the civil disobedience of Gandhiji. (History of freedom movement in India' - R.C.Manjumdar) Vol.III, p.524.

4. 'There was a temporary swing of the revolutionaries to Gandhian non-violence in 1920-21 but the Suspension of the non-cooperative movement brought it to an end'. Ibid.

5. 'Marxism purports to be a revolutionary creed; it teaches that the workers must use force to destroy the 'bourgoise' and then set up their own form of class government'. The concise Encyclopedia of world history. Edited by John Bowl? 1971, p.408.

भारतीय भी आकृष्ट होने लगे थे। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, रूस की क्रान्ति और केवल दो दशकों से प्राप्त उसकी प्रगति से भारतीय अनुप्रेरित हो गये, कुछ लोग साम्यवाद से आकृष्ट हो गये, कुछ लोग नहीं, पर सब लोग रूस की कुछ क्षेत्रों में हुई प्रगति से आकृष्ट थे।[1]

कांग्रेस के विघटन से निराश युवक लोग श्रमिकों और मज़दूरों के अलग-अलग संगठनों से संबद्ध होने लगे। 1925 में कुछ भारतीय तरूणों ने यहाँ साम्यवादी दल की स्थापना की।[2] इससे मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रचार ज़ोरों से होने लगा।[3]

1933 में कांग्रेस अपनी पराजय की घड़ियाँ गिन रही थी, सविनय अवज्ञा आन्दोलन की स्वाभाविक मृत्यु हो रही थी। गाँधीजी स्वयं "सत्याग्रह" शस्त्र की निष्फलता समझ गये।[4] साम्यवादी आशयों से प्रेरित किसान-मज़दूरों की क्रान्तिकारी संगठित शक्ति के प्रभाव को कांग्रेस को भी मानना पड़ा और उसे अपनी नीति भी बदली पड़ी। कांग्रेस के कराची अधिवेशन में स्वयं गाँधीजी को भी इस शक्ति के सामने झुकना पड़ा।[5]

'Some were attracted to communism, others were not, but all were fascinated by the advance of the Soviet Union'. But most of all we had the exampleof Soviet Union which in two brief decades full of war and civil strife and in the face of what appeared to be insurmountable difficulties had made tremendous progress'. 'The discovery of India - Jawaharlal Nehru 1985, p.372.

2. 'In December 1925 the Communist Party of India was founded at the first Conference of Indian Communists in Kanpur'. Ajoykumar Ghosh and Communist movement in India - Pyotr Kut Sobin - 1987, p.12.

3. Modern India - Bipin Chandra. March 1984, p.230.

4. 'The year 1933 found the Congress Straying in wilderness. The civil disobedience champaign was severely dying a natural death . . . Gandhiji had realised the fulility of Satyagraha as a political weapon'. History of the freedom movement in India, Vol.III, R.C.Manjumdar 1963, p.532.

Ibid. p.526.

7 अप्रैल 1934 को स्वयं गाँधीजी ने प्रस्ताव प्रकाशित किया कि आगे व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए कोई भी तैयार न हो जाये।[1] 1934 के काँग्रेस अधिवेशन में काँग्रेस के वामपंथी समाजवादी गुट का आविर्भाव स्पष्ट रूप से दर्शित हुआ।[2] 1934 से काँग्रेस में ही समाजवादी काँग्रेस पार्टी का जन्म भी काँग्रेस के गुट के रूप में हो गया।[3] क्रान्तिकारी केवल विनाशकारी नीति से प्रेरित नहीं थे, उनके मन में एक समाजवादी भारत का सपना भी मौजूद था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 1920 के आसपास से लेकर काँग्रेस के अन्दर और बाहर देश भर में क्रान्तिकारी, समाजवादी, वामपंथी विचारधारा से प्रेरित आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था और काँग्रेस की नीति भी इससे प्रभावित हो रही थी। 1936 तक आते-आते एक मार्क्सवादी, समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने की अभिलाषा यहाँ के श्रमिक वर्गों और बुद्धिजीवियों में घर कर गयी थी। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार 1920 के बाद काँग्रेस में परंपरागत नीति से अलग रीति-नीतियों वाली शक्तियों का भी समावेश हो गया था और इसका प्रभाव स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा था।[4] उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियाँ 1936 तक प्रगतिवादी साहित्य के उद्‌गम के लिये स्पष्ट रूप से प्रेरक और सहायक रहीं।

---

1. 'On 7th April 1934 Gandhiji, the top most leader of Civil disobedience movement and its authentic spokesman came out with a statement - Clause (3) for every body except himself should keep aloof from individual satyagraha. A history of Indian Freedom Struggle - E.M.S. Nambodiripad, 1986, p.449.

2. The emergence of a socialist left wing in the Congress clearly was noticeable in the Congress session of 1934. Struggle for Freedom - K.M.Munshi 1969, p.557.

3. By 1934, however, a solid socialist group had emerged in the Congress itself. A history of Indian freedom struggle, E.M.S.Nambodiripad, 1986, p.533.

4. 'But the Congress had been ever since 1920 something much more than a constitutionally political party'. The discovery of India - Jawaharlal Nehru, 1985 p.368.

आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश शासक होने के साथ साथ उद्योगपति और व्यापारी भी थे। राजनीतिक अधिकार स्थापित करते ही उन्होंने भारत को आर्थिक रूप से लूटना आरंभ किया। उन्होने अपनी चीज़ों की बिक्री के लिये भारत को एक अच्छा-खासा बाज़ार बना दिया। साथ ही साथ उन्होंने भारत के देशी कुटीर-उद्योगों का अन्त करके अपने यहाँ निर्मित विदेशी चीज़ों का आयात कर भारत की आर्थिक व्यवस्था को तोड दिया।[1] यहाँ के कुटीर उद्योगों से उत्पादित चीज़ों का, महीन वस्त्र आदि, व्यापार करके जीवन निर्वाह करनेवाले व्यापारी और अन्य उद्योगों से जीवन निर्वाह करनेवाले लोग भी बेरोज़गार हो गये। कुछ लोग विवश होकर खेती करने को तैयार हो गये।[2] पहले विश्वयुद्ध के समय ब्रिटीश लोगों को विदेश में निर्मित चीज़ों का आयात करने में कठिनाई हुई तो देशी पूँजीपतियों की खुशहाली हो गयी और भारतीय बाज़ारों में विदेशी उद्योगपतियों का अब तक का एकाधिकार कमज़ोर हो गया।[3]

भारतीय पूँजीपतियों ने अपनी पूँजी नये नये उद्योगों में लगा दी और पूँजी उनके पास इकट्ठी भी होने लगी। यह नये पूँजीवाद के उदय में परिणत हो गया। भारतीयों के लगाये कल-कारखाने देश के कुछ ही भागों में पनप उठे और देश का बाकी भाग अविकसित ही रहा।[4]

---

1. Modern India-Bipinchandra, p.182.
2. Ibid. p.184.
3. 'The world war-I offered a rare opportunity for industrial development by eliminating much of the foreign competition in the Indian Market'. Struggle for freedom - K.M.Munshi - 1969, p.847.
4. 'Indian industries were concentrated only in a few regions and corners of the country. Large part of the country remained totally under developed'. Modern India, Bipin Chandra - p.193.

कृषि प्रधान भारत के खेती के क्षेत्र में भी ब्रिटिश शासकों की नयी आर्थिक नीति का प्रभाव पडा। ग्रामीण उद्योगों में लगे लोग भी खेती करने लगे और किसानों की संख्या बहुत बढ गयी।[1] बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में आकर खेती का पतन इतना दयनीय हो गया कि बीच में अकाल भी पडने लगा। ये अकाल ही भारतीय खेती के पतन का उत्तम सबूत है।[2]

ग्रामीण महाजनों के लिये खुशहाली का समय था। वही निर्धन किसानों को पूँजी देता था और ऊँची दर का सूद लेकर ही - पूँजी का वितरण करता था। उधार ली हुई रकम वापस करने को पैसा गरीब किसानों के पास नहीं था, लगान की दर भी ऊँची होती जाती थी। इस हालत में भारतीय किसानों को महाजनों की शरण में अधिक से अधिक जाना पडा और ज्यों ज्यों उनका आश्रय लेना पडा त्यों त्यों वे शोषित और गरीब होते गये।[3]

पहले विश्वयुद्ध के समय खाद्य-वस्तुओं का दाम कम ही रहा क्योंकि शासकीय नियंत्रण उसपर लगा था जब कि कपडे जैसी जरूरी चीजों का दाम बहुत ही बढ गया,[4] इस महँगाई से भारतीय किसानों की कमर टूट गयी

---

1. Between 1901 and 1941 alone the percentage of population dependent on agriculture increased from 63.7% to 70% - Modern India, Bipin Chandra - p.193
2. 'An evidence of the low level of agricultural development in India during the first half of the 20th Century was the continued recurrence of famines'. Struggle for freedom - K.M.Munshi, p.833.
3. 'A majority of Indian farmers live in a state of perpectual debt. They borrow for repaying old loans and/ or for securing ready cash for social ceremonies'. 'Rural Economics' Patel, Shah & D'mello, 1984,p.295.
4. 'In the early years of world war I prices of food grains and of agricultural products generally remained low, partly as a consequence of administrative controls, while the prices of important items of mass consumption e.g. cloth went up considerably'. Struggle for freedom, K.M.Munshi, p.839.

और भारतीय खेती का क्षेत्र बिलकुल शोचनीय हो गया। किसान ज़मीन्दार, महाजन और पूँजीपति तीनों के शोषण के शिकार हो गये। कुछ लोगों को शहरों में उद्योग-धंधों में नौकरी करनी पड़ी। उद्योग-धंधों में लगे मज़दूरों और श्रमिकों की हालत इतनी दयनीय हो गयी कि उनके जीवन को देखकर जवाहरलाल नेहरू यों कहते हैं - "मज़दूरों के वासस्थान को देखकर कोई भी भय और रोष से भर जाता था, उनके घरों के न खिड़कियाँ थी, न चिमनी।"[1]

प्रथम महायुद्ध के बाद देश के श्रमिकों और मज़दूरों की बुरी हालत के बारे में वे आगे कहते हैं - "किसान और व्यावसायिक संस्थानों के मज़दूर सब बुरी तरह से भयभीत और दयनीय जीवन बिताते थे जिन्हें देखकर कोई भी चक्कर खा जाता था।[2] किसान और मज़दूर ही नहीं मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी भी निराश और हताश हो गये थे। कुछ लोग तो बेरोज़गारी के मारे विवश होकर फ़ौज में भी भरती हो गये।[3]

कुल मिलाकर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की आर्थिक स्थिति को देखकर यह स्पष्ट होता है कि वह समय आर्थिक दृष्टि से बिलकुल पिछड़ा हुआ था।[4]

---

1. 'The workers who had created those dividends lived at an incredibly low level of existance in filthy, disease ridden hovels which had no windows or chimneys'. The discovery of India, Jawaharlal Nehru, p.356.

'I remember visiting some of these slums and hovels o industrial working, gasping for breathe there and coming out dazed and full of horror or anger'. Ibid. p.357.

3. Ibid.

4. 'India in the mid-twentiath Century was a typical case of economic backwardness', Struggle for freedom - K.M.Munshi, p.866.

सामाजिक स्थिति में भी एकदम परिवर्तन की हवा चलती थी। ज़मीन्दारों के गुलाम श्रमिक और किसान दैनिक या मासिक वेतन पानेवाले हो गये। उत्पादित चीज़ों के स्थान पर पैसा लगान के रूप में किसान देते थे, पहले गाँवों में किसान ज़मीन्दारों के आश्रय में रहते थे। अब ज़मीन्दारों और किसानों के बीच में अंग्रेज़ अधिकारी आ गये। एक ओर तो सामन्तवाद का पतन होने लगा और महाजनों से नियंत्रित पूँजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आयी। अबतो अर्थ-व्यवस्था भी धन केन्द्रित हो गयी।

अंग्रेज़ शासकों को क्लर्की करने के लिये अंग्रेज़ी-पढ़े गुमाश्ताओं की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति के लिये अंग्रेज़ी-पढ़े युवक लोग आगे आये। इनका एक अलग वर्ग-मध्यवर्ग-का भी उदय हो गया। यह वर्ग देशी जीवन में बहुत ही प्रभावशाली अंग हो गया।

संास्कृतिक पृष्ठभूमि

भारत में अंग्रेज़ शासन की स्थापना के बाद भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के बीच सांस्कृतिक लेन-देन की प्रवृत्ति पैदा होने लगी,[1] जिसके कई परिणाम हुए। पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा, वैज्ञानिक उपादान आदि ने भारत के परंपरागत जीवन-क्रम को एक ऐसा धक्का दे दिया जिसके फल स्वरूप भारतीय जीवन के विचार और व्यवहार में एक नयी जान और अवधारणा पैदा हो गयी, यह भारत को एक नया बौद्धिक जीवन प्रदान करने में समर्थ हुआ है।[2] इसके फलस्वरूप 19 वीं शताब्दी से ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, वेद समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि सांस्कृतिक आन्दोलन प्रस्फुटित और प्रस्तुत हुए।[3] इसके प्रवर्त्तकों को मालूम हो गया कि ऐहिक पक्ष में भारत को यूरोप से बहुत कुछ सीखना है।

---

1. 'Once the initial period of romanticism and disillusionment had been overcome...a new phase of cultural interaction between India and the west began'. 'India and world civilisation', Vol.2, D.P.Singhal, 1972, p.273.

2. The introduction of western culture, education and scientific techniques gave Indian life jolt, shocking Indian into a new awareness and vitality in thought and action, Ibid, p.277.

3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - सं. हरवंशलाल शर्मा - पृष्ठ 33.

इसके अलावा, अंग्रेज़ शासन से एक शिक्षित बुद्धिवादी मध्यवर्ग का उदय हुआ जिसने राष्ट्रीयता में अपना योगदान किया। एक ऐसे श्रमिक वर्ग का भी उदय हुआ जिसमें राष्ट्रीयता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य भी विद्यमान था। यह संस्कृति-क्षेत्र का एक अलग प्रतिमान माना जा सकता है। देशी प्रश्नों को अन्तरदेशीय दृष्टि से विवेचन करने का क्रम भी अस्तित्व में आ गया। यह अन्तरदेशीय दृष्टिकोण यहाँ के साहित्य में मानवतावाद और साम्राज्यवाद-विरोध की प्रतिष्ठा करने में सहायक हुआ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाश्चात्य संस्कृति की खूबी है। प्रस्तुत दृष्टि का प्रभाव भारतीय, साहित्य में पड गया। यहाँ साहित्य में "ईश्वरत्व" की प्रतिष्ठा पहले से विद्यमान थी। उसी के स्थान पर "मानवत्व" प्रतिष्ठित हो गया।[1]

इससे भौतिकवाद और मार्क्सवाद का अध्ययन करने की मनोवृत्ति भारतीयों में पैदा हो गयी। सांस्कृतिक दृष्टि से ये परिस्थितियाँ प्रगतिशील साहित्य-सृष्टि के लिये अनुकूल थीं।

साहित्यिक परिवेश

प्रगतिवादी साहित्य की कारणभूत साहित्यक परिस्थितियों की चर्चा भारतेन्दुयुग से शुरू करना उचित जँचता है। "आधुनिक हिन्दी काव्य में नवयुग का स्वर सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में मिलता है।"[2] सामाजिक सुधार के आन्दोलन एक ओर चल रहे थे। दूसरी ओर शासक लोगों और पूँजीवादी-सामन्तवादियों के अत्याचार भी हो रहे थे। समाज की यथार्थ

---

1. 'The new spirit of humanism and rationalism stimulated Indian thought and literature enormously ...No longer was Indian writing appended to theology, mythology and scholasticism. No gods and goddesses discended from heaven'. India and world civilisation - Vol.2, D.P. Singhal, 1972, p.?32.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. रामकुमार वर्मा - 1955, पृष्ठ 289.

स्थिति का चित्र प्रस्तुत कर जनता को जागृत करने और प्रगति की ओर बढ़ने का सन्देश देने में प्रवृत्त भारतेन्दुकालीन साहित्य अपने प्रगतिशील स्वभाव का परिचय देता है। "इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेज़ों की अर्धपूँजीवादी व्यवस्था ने देश की जडता को अनजाने ही तोडा और शिक्षित वर्ग में एक राजनीतिक सामाजिक चेतना जागी। हिन्दी भाषा - भाषी क्षेत्र में भारतेन्दु इस चेतना के अग्रदूत थे। साहित्य को जो उन्होंने नये विचारों के साथ जोडा यह सभी को मालूम है"।[1]

"वास्तव में भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों की रचनाओं में देशप्रेम की चेतना शरीर में रक्त की धमनियों की तरह सर्वत्र व्याप्त है। लेखकों की दृष्टि अपने परिवेश की हर छोटी-बडी चीज़ पर गयी। विदेशी शासन का शोषण, अत्याचार, अंग्रेज़ी संस्कृति का दुष्प्रभाव, राष्ट्रीयता, एकता, वाणिज्य, व्यवसाय, कारीगरी, खेती, शिक्षा, पर्व-त्योहार, भाषा, समाज, धर्म, साहित्य, नैतिकता चरित्र आदि सब ने उन्हें आकृष्ट किया।"[2]

भारतेन्दुकालीन साहित्य के प्रगतिशील स्वभाव के ढंग पर अवश्य मतभेद हो सकते हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि उसने समकालीन परिवेश के यथार्थ का धरातल अपना लिया था। "अपने समय की समस्याओं से टकराते हुए भारतेन्दुने साहित्य को अपने समकालीन यथार्थ के ठोस आधार पर खडा किया। भारतेन्दु ने पहली बार सामान्य भौतिक मनुष्य का साहित्य रचा, उस मनुष्य का साहित्य जो अपने पुरुषार्थ और अपनी सामूहिक ऐतिहासिक शक्ति को पहचानने लगता है।"[3]

---

1. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर - 1986, पृष्ठ 15-16.
   भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व्यक्तित्व के अन्तरविरोध बच्चनसिंह.
2. वही - पृष्ठ 11. हिन्दी नये चाल में ढली हँसमुख गद्य का विकास
   विजय शंकर मल्ल
3. वही - पृष्ठ 31. राष्ट्रीय जागरण और भारतेन्दु - खगेन्द्र ठाकुर.

भारतेन्दु साहित्य में प्रस्तुत राजभक्ति के संबंध में भी आलोचना को गुंजाइश तो है। लेकिन इसे एकदम राजभक्ति नहीं कहा जा सकता। इसमें तत्कालीन शासन और देश की अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश भी पडा पाया जाता है। शिवकुमार मिश्र के शब्दों में - "भारतेन्दु की यह राज-भक्ति कोरी राजभक्ति नहीं है। इसमें देश-दशा की प्रखर अभिव्यक्ति है। अंग्रेज़ों के शासन में होनेवाली अनीति और अन्याय का भर पूर आख्यान है। उनके द्वारा भारत की आर्थिक लूट और भारत को हर प्रकार से लाचार कर देने की अंग्रेज़ों की नीति के प्रति गहरा क्षोभ है।"[1] अतः स्पष्ट है कि प्रगतिवादी साहित्य के लिये प्रेरक प्रगतिशील चेतना-तत्व भारतेन्दुकालीन साहित्य में मौजूद है।

द्विवेदो कालीन साहित्य

द्विवेदी कालीन साहित्य राष्ट्रीयता प्रधान था। प्रस्तुत युग "मातृभूमि के प्रति अनुराग, देशाभिमान, सांस्कृतिक उत्थान की तडप, समाज सेवा, अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति, रूढि-विरोध, मानवतावादी दृष्टिकोण, बलिदान-भावना, स्वातंत्र्य-भावना आदि प्रवृत्तियों से युक्त था"[2]। गाँधीजी के द्वारा चलाये हुए सामाजिक और संस्कृतिक आन्दोलनों का गहरा प्रभाव द्विवेदी कालीन साहित्य पर दृष्टिगत होता है।

उक्त युग में समसामयिक युग के आर्थिक पतन और राजनीतिक गुलामी से छटपटाती भारतीय जनता के दीन स्वर की अपेक्षा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। "जागरण युग के वातावरण जो

---

1. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर - 1986, पृष्ठ 31. शिवकुमार मिश्र

2. प्रगतिवादी काव्य साहित्य कृष्णलाल हँस - 1971 पृष्ठ 89.

राजनीतिक तथा सामाजिक जागृति हुई थी, वह अपना निश्चित स्वरूप और दिशा ग्रहण कर रही थी   यह दिशा पाने के लिये और आगे बढने की प्रेरणा ग्रहण करने के लिये इतिहास के गौरवशाली युगों और महापुरूषों का स्मरण करता है, उनसे प्रेरणा ग्रहण करने के लिये समाज का आह्वान करता है।"[1] जहाँ दिशा-निर्धारण नहीं, आगे बढकर ध्येय-प्राप्ति ही करणीय हो वहाँ सांस्कृतिक गरिमा और अतीत गौरव चिन्तन ही इस काल के कवियों की दृष्टि में उचित लगा होगा। इस युग के सर्वप्रमुख कवि मैथिलीशरणगुप्त के संबंध में कहा गया है "इनकी चेतना अतीतोन्मुखी और पुनरुत्थान वादी है, परन्तु इनका अतीत वर्णन वर्तमान को प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता है। कवि के अनुसार अतीतकालीन भारतवर्ष आर्य संस्कृति के गौरव का स्वर्णयुग था जिसमें साम्राज्यवादी लिप्सा और शोषण के भाव नहीं थे।"[2]

काव्यसौष्ठव की दृष्टि से भारतेन्दुयुग के साहित्य से द्विवेदी कालीन साहित्य अधिक परिमार्जित है। लेकिन युगप्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति में भारतेन्दुसाहित्य ही आगे है। सामाजिक चेतना की अपेक्षा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से युक्त द्विवेदीकालीन साहित्य जागृति का सन्देश देने में एक सीमा तक सहायक हुआ है। "उनके (महावीरप्रसाद द्विवेदी) समय के कवि लेखक रूस की राज्यक्रान्ति से सीधे नहीं जुटे, फिर भी राष्ट्रीय चेतना के रूप में वे अपनी प्रगतिशील भूमिका निभा रहे थे।"[3] द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध से ही हिन्दी साहित्य में अंग्रेज़ी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। शैली, कल्पना, प्रतीक, बिंबविधान शब्दावली सब में यह प्रभाव देखा जाता है। इसके अलावा निराशा, वेदना से उत्पन्न दार्शनिकता, विदेशी शासन के प्रति विद्रोह, स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा, जागृति के स्वर आदि कविता में प्रचुर मात्रा में सुनाई पडने लगे।

---

1. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर - 1986, पृष्ठ 83, "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और मैथिलीशरणगुप्त   मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य" - रघुवंश.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. रामनिवास गुप्त-डा. हरिश्चन्द्रवर्मा - 1982, पृष्ठ 380.
3. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - पृष्ठ 127. प्रगतिवादी काव्य का भारतीय सन्दर्भ-अनिलकुमार.

छायावाद

छायावाद का काल दो महायुद्धों के बीच का समय है। जब गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन ज़ोर से चल रहा था उस समय छायावादी आन्दोलन का विकास होने लगा था। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत युगीन परिस्थितियों में इस साहित्यिक आन्दोलन का जन्म क्यों हुआ, यह विचारणीय विषय है।

छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृतियाँ "स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण, आध्यात्मिक छाया, मूर्तिमत्ता, लाक्षणिक विचित्रता आदि हैं।"[1] "छायावाद में रहस्यभावना स्वच्छन्दता भाव के साथ साथ और कई बातें हैं, वह अंग्रेज़ी के "रोमैन्टिसिज़्म" का समानार्थी साहित्य है।"[2]

कुछ विद्वानों के अनुसार युग जीवन की विषमताओं ने छायावादी कवि को व्यक्तिवादी बना दिया था। उसमें जन जीवन से पलायन की प्रवृत्ति दिखाई पडी थी।[3] लगता है, असहयोग आन्दोलन की पराजय के कारण निराश छायावादी कवि निष्क्रिय और अन्तर्मुखी हो गये थे। श्रमिक और मज़दूर निराश होकर क्रान्ति और प्रगतिवादी तत्वों को अपना कर चले और मार्क्सवादी दर्शन में आश्वासन ढूँढने लगे। "छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है जिसका आरंभ व्यक्तियों के महत्व को स्वीकार करने और करवाने से हुआ, किन्तु पर्यवसान संसार और व्यक्ति की स्थायी शत्रुता में हुआ।"[4]

---

1. छायावाद नामवरसिंह - 1955 भूमिका - पृष्ठ 1.
2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवरसिंह - 1964, पृष्ठ 14.
3. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - कृष्णलाल हँस - पृष्ठ 97.
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ - नामवरसिंह - पृष्ठ 16.

संक्षेप में, छायावाद वैयक्तिकता को स्वानुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसमें आत्माभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता, प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य की प्रधानता, कल्पना की अतिशयता, रूपविन्यास की विलक्षणता आदि पायी जाती है।

व्यक्तित्व के विकास के लिये चालित छायावाद व्यक्ति के माध्यम से समाज को स्वाधीनता की अभिव्यक्ति चाहते हुए भी समाज निरपेक्ष वैयक्तिकता में परिणत हो गया। "सभी छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के किसी न किसी पहलु को यथाशक्ति चित्रित करने की कोशिश की",[1] लेकिन आगे की गति में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण छायावाद समग्र जीवन से कट गया। फिर भी उस में अगले आन्दोलन-प्रगतिवाद-के जन्म के कारणभूत प्रगतिशील तत्व भी भले ही कम मात्रा में हो, विद्यमान है। विशेषकर निराला की कविता में। "उन्होंने अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र तथा प्रगतिशील सामाजिक शक्ति को अपनाने की चेष्टा की, उन्हीं के प्रयत्न से छायावादी कविता "बहुजीवन की छवि" कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकी", "औरों की अपेक्षा निराला का दृष्टिकोण भी अधिक प्रगतिशील रहा है क्यों कि उनमें वास्तविकता का बोध सब से अधिक था और यहबोध इसलिये आधिक था कि जीवंत वास्तविकता के साथ उनका संबंध सबसे अधिक रहा।"[2] त्रिलोचन जैसे कवि ने उन से प्रभावित होने की बात कही है।

संक्षेप में, छायावाद की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति, समाज-चेतना से युक्त काव्य-सरणी प्रगतिवादी काव्य के जन्म के कारणभूत पृष्ठभूमि हो जाती है। शिवकुमारमिश्र के अनुसार, इस समय तक "केवल महादेवी को ही कविता नहीं उनसे प्रेरणा लेते हुए उस युग में ऐसे अनेक कवि नाम-धारी भी सामने आये जिन्होंने कविता को रहस्यवाद, कल्पना तथा व्यक्तिवादिता की क्रीडा-भूमि भी बना दिया।"[3] अंत में निराला, पंत जैसे प्रमुख छायावादी लोकोन्मुख

---

1. छायावाद - नामवरसिंह - पृष्ठ 74. 1955.
2. वही.
3. प्रगतिवाद - शिवकुमारमिश्र - 1966, पृष्ठ 13.

कवितायें लिखकर युगीन सन्दर्भों के दबाव में आकर प्रगतिवादी साहित्य के उद्घाटन में सहयोगी हो जाते हैं। फिर भी "पूर्ववर्ती कविता की इस संकीर्ण आकृति के प्रति प्रतिक्रिया तथा नई रचनात्मक शक्तियों के प्रति आत्मीयता पूर्ण रुख लिये, नये बौद्धिक तथा भावात्मक संवेदनों की भूमि पर इसी बीच प्रगतिवादी कविता ने जन्म लिया।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत के तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यक परिवेश प्रगतिवादी साहित्य के जन्म के लिये प्रेरक रहे।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और उसका प्रगतिवाद से संबंध

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के लिये प्रेरक परिस्थितियों पर विचार करना संगत प्रतीत होता है।

अक्तूबर 1917 को रूस में मार्क्सवादी बोलशेविक पार्टी ने लेनिन के नेतृत्व में सशस्त्र कार्रवाई से अधिकार प्राप्त कर लिया।[2] तब से लेनिन ने मार्क्सवादी सरकार को लोकप्रिय बनाने और समाजवादी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिये आवश्यक कार्यक्रम का सूत्रपात किया।[3] बोलशेविक रूसी सरकार की जनोपकारी कार्यक्रमों की सफलताने संसार भर में अपना प्रभाव डाला। इसके साथ ही साथ रूसी क्रान्ति के समर्थकों ने समाजवादी आदर्शों का प्रचार कार्य शुरू कर दिया।[4] नयी रूसी सरकार की क्रान्तिकारी नीति

---

1. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 14.
2. A concise history of Russia - Ronald Hingley, 1972, p.155
3. 'Meanwhile Lenin had set himself from the beginning to strengthen his tenuous hold on Russia by energetic gestures and legislation! Ibid. p.157.
4. 'The truimph of Bolshevism in Russia had two important consequences for the rest of the world. It split the Marxists and other Socialists in the west into supporters and opponents of Lenin. The supporters thought it their duty to complete the proletarian revolution inaugurated by the Bolsheviks! 'The concise encylopedia of world history Edited by John Bowle, 1971, p.411.

और सिद्धांतों का प्रभाव रूसी साहित्य में भी परिलक्षित होने लगा। साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद का आगमन हुआ और उसके आधार पर साहित्य सृजन भी होने लगा। 1934 में रूसी साहित्य क्षेत्र में "सोवियत राष्ट्रीय लेखक संघ का गठन हुआ।[1] इसके फलस्वरूप 1935 में पेरिस में "संस्कृति की रक्षा के लिए विश्वलेखक" अधिवेशन संपन्न हुआ। इसी अधिवेशन के सिलसिले में मार्क्सवादी अंग्रेज़ी साहित्यकारों के प्रोत्साहन से "1935 में ई.एम.फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में "अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिवादी लेखक संघ" का प्रथम अधिवेशन संयोजित हुआ।[2] "समाजवादी शक्तियों के प्रसार और फासिस्ट विरोधी शक्तियों के प्रसार को रोकने के लिये इस प्रगतिशील संघ की स्थापना की गई थी। इसके संगठन में मैक्सिम गोर्की का भी हाथ था।"[3] प्रस्तुत अधिवेशन में संसार भर के उत्पीडित राष्ट्रों के समर्थन में आवाज़ दी गई। इससे संसार भर के प्रगतिशील लेखकों को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने अपने-अपने देशी संगठन बनाने और प्रगतिशील-साहित्य रचना करने का कार्यक्रम शुरू किया।

1935 में लन्दन प्रवासी कुछ भारतीयों ने समाजवादी विचार धारा से प्रभावित और अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक सम्मेलन से प्रेरित होकर भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना करने का निश्चय किया और इसकी पहली बैठक लंदन की एक चीनी रेस्त्रॉ में की और आवश्यक कार्रवाइयाँ करने का

---

1. 'A national union of soviet writers was thereupon organise in 1934 and a new doctrine of socialist realism propound to guide creative efforts'.
The new encyclopedia Britanica Vo-26, 1985, p.1022.

2. आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद - डा.परशुराम शुक्ल विरही - 1966, पृष्ठ 127-128.

3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - चतुर्दशभाग - संपा. डा.हरवंशलाल शर्मा - पृष्ठ 41.

दायित्व सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनन्द को दिया गया। इसके प्रमुख प्रवर्तक सज्जाद ज़हीर, डा. एम. डी. तासीर. मुल्कराज आनन्द आदि थे।[1]

लन्दन की पहली बैठक में एक घोषणा पत्र तैयार किया गया और इसके साथ भारत में प्रगतिशील लेखक आन्दोलन शुरू करने की योजनायें भी तैयार हो गयीं। घोषणा पत्र की प्रतियाँ भारत के प्रमुख लेखकों और संपादकों को भेज दी गयीं। "इस चरण में अधिकांशत: वही लोग थे जो या तो कम्युनिस्ट थे या फिर कम्युनिस्ट आन्दोलन के काफी निकट के हमदर्द थे।[2]

प्रगतिशील लेखक संघ की लन्दन - बैठक में पारित घोषणापत्र से स्पष्ट हो गया कि इस संगठन का उद्देश्य भारत की तत्कालीन बुनियादी समस्याओं पर प्रकाश डालना, जीवन की वास्तविकताओं से जनता को अवगत कराना और देश में शोषण मुक्त सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये साहित्य को सफल साधन बनाना भी इसका ध्येय रहा।[3] तदनुसार 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" का पहला अधिवेशन लखनऊ में संपन्न हुआ जिसमें भारत की लगभग सभी भाषाओं के प्रतिनिधि लेखक उपस्थित हुए।[4] अधिवेशन का घोषणा-पत्र लन्दन बैठक में पारित-घोषणा-पत्र ही था जिसमें बताया गया था कि भारतीय समाज में होनेवाले परिवर्तनों और क्रान्ति को शब्द और रूप देने का उत्तरदायित्व भारतीय साहित्यकारों पर निर्भर है, उसमें स्पष्ट किया गया

---

1. प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन - हंसराज रहबर 1966, पृष्ठ 15.
2. आलोचना - अप्रैल-जून - 1986, पृष्ठ 15. राल्फ़ रसेल.
3. वही - पृष्ठ 23-24. (Manifesto of the Indian progressive writers' association, London, 1935.)
4. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 16.

था कि लेखक संघ का उद्देश्य यह रहेगा कि साहित्य और कला को पुजारियों, पंडितों - जैसे अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर जनता के संपर्क में लाना और उनमें जीवन की वास्तविकता की झलक देना।[1]

प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन का घोषणापत्र (अप्रैल 1936)

"भारतीय समाज में बडे बडे परिवर्तन हो रहे हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की जडें हिलती जा रही हैं और एक नए समाज का जन्म हो रहा है। भारतीय लेखकों का धर्म है कि वे भारतीय जीवन में पैदा होनेवाली क्रान्ति को शब्द और रूप दें और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों।

"भारतीय साहित्य को विशेषता यह रही है कि वह जीवन की यथार्थताओं से भागता है और वह वास्तविकता से मुँह मोडकर भक्ति और उपासना की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ है कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रूप में भी अर्थ में भी और आज हमारे साहित्य ने विचार और बुद्धि का एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया है।

"हमारे इस संघ का उद्देश्य साहित्य और दूसरी कलाओं को अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संपर्क में लाया जाए, उनमें जीवन और वास्तविकता लाई जाए और वे उसे उज्ज्वल भविष्य का मार्ग दिखायें जिसके लिए मानवता इस युग में संघर्षशील है।

"हम भारतीय संस्कृति की परंपराओं की रक्षा करते हुए देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की बडी निर्दयता से आलोचना करेंगे। हम इस संघ

---

1. आलोचना -अप्रैल-जून - 1986, पृष्ठ 24-25.
(Manifesto of the First Conference of Progressive Writers' Association, Lucknow, 1936).

के द्वारा उस भावना को व्यक्त करेंगे जो हमारे देश को एक नये और बेहतर जीवन का मार्ग दिखाए। इस काम में हम अपनी और विदेशों की सभ्यता तथा संस्कृति से लाभ उठायेंगे। हम चाहते हैं कि भारत का नया साहित्य जीवन की बुनियादी समस्याओं को अपना विषय बनाए। वे हैं हमारी रोटी की, हमारी दरिद्रता, हमारी सामाजिक अवनति की और हमारी राजनीतिक पराधीनता की समस्यायें।

"वह सब कुछ जो हमें निष्क्रियता, अकर्मण्यता और अंधविश्वास की ओर ले जाता है, हेय है। हम उसका विरोध करते हैं।"

"वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की प्रवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रूढियों को बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिये प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मठ बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।

"संघ के उद्देश्य ये होंगे।

1. भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों की संस्थायें संगठित करना और साहित्य छापकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करना।
2. प्रगतिशील लेखकों और अनुवादकों को प्रोत्साहित करना और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाना।
3. प्रगतिशील लेखकों की सहायता करना।
4. स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचार की रक्षा करना।"[1]

---

1. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी (परिशिष्ट से) 1978, पृष्ठ 317.

लखनऊ सम्मेलन में अध्यक्षता करते हुए प्रेमचन्द ने कहा कि साहित्य की बहुत - सी परिभाषायें की गयी हैं। लेकिन मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है, चाहे वह किसी भी रूप में हो। उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए। हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी चाहिए हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, हमें सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[1]

प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन दिसंबर 1938 में कलकत्ता के आशुतोष मेमोरियल हाल में हुआ[2] जिस का आरंभ रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सन्देश से हुआ। ठाकुरजी ने अपने सन्देश में कहा कि साहित्यकारों को मानवता और समाज से लगाव रखना चाहिए, उसी ढंग के साहित्य की सृष्टि के लिये भारतीय साहित्यकारों का आह्वान किया गया।[3]

प्रस्तुत अधिवेशन के घोषणा-पत्र में भारतीय साहित्यकारों को सचेत किया गया था कि वे जीवन की वास्तविकता से मुँह मोड़नेवाले साहित्य निर्माण की प्रवृत्ति से सजग रहें और वे ऐसे साहित्य की सृष्टि करें जो भूख और दरिद्रता, सामाजिक अवनति, व्यक्ति और समाज की समस्याओं का हल ढूँढें।[4]

---

1. कुछ विचार - प्रेमचन्द - 1961, पृष्ठ 14, 15, 25.
2. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 17.
3. अखिल भारतीय प्रगतिशील साहित्य सम्मेलन - 1935-47
   आलोचना - अप्रैल-जून - 1986, पृष्ठ 21. राल्फ़ रसेल .
4. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृष्ठ 42.

प्रगतिशील लेखक संघ का एक अधिवेशन 1942 में दिल्ली में संपन्न हुआ जिसे फासिज़्म विरोधी सम्मेलन कहा जा सकता है। अधिवेशन में भारतीय साहित्यकारों को यह सन्देश दिया गया कि वे फासिज़्म के संस्कृति विरोधी स्वरूप को भली-भांति समझकर अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये साहित्य का प्रयोग करें।[1]

प्रगतिशील लेखक संघ का अगला सम्मेलन बंबई में 1943 में श्री. एस. ए. डांगे की अध्यक्षता में हुआ जिसमें दुतरफा संकट में पडे देश के मनोबल को सुदृढ बनाने का सन्देश भारतीय प्रगतिशील लेखकों को दिया गया था। देश उस समय एक ओर साम्राज्यवाद को भीषण दमन नीति और दूसरी ओर जापान के आक्रमण से पीडित था।[2]

प्रगतिशील लेखक संघ के पाँचवें सम्मेलन का आयोजन बंबई की भिवंडी में 1950 में श्रमिककवि अन्नाभाऊ साठे के सभापतित्व में हुआ। इस सम्मेलन पर सरकार ने रोक लगा दी थी। इसके घोषणा पत्र में कहा गया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत साम्राज्यवादियों के गठबन्धन से मुक्त नहीं है।[3]

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का छठा सम्मेलन दिल्ली में 1953 में हुआ जिसके घोषणा पत्र में प्रगतिशील लेखकों को आह्वान किया गया था कि वे जनता की सेवा के लिए संगठित हों, अपनी रचनाओं द्वारा सुखी और समृद्ध जीवन की प्राप्ति में सहायक बनें।[4] प्रस्तुत सम्मेलन के घोषणा पत्र

---

1. आलोचना - अप्रैल-जून - 1986, पृष्ठ 53.
   प्रगतिशील लेखक संघ के पचास वर्ष - नत्थनसिंह
2. वही - पृष्ठ 54 .
3. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी - परिशिष्ट - पृष्ठ 322, 1978 .
4. वही - पृष्ठ 326 .

से स्पष्ट हो गया था कि स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद प्रगतिशील लेखक संघ की नीति में परिवर्तन हो गया था। देश के सुखी और समृद्ध जीवन के निर्माण में लगी जनता का साथ देना उसकी नीति में नयापन सूचित करता है।

प्रगतिशील लेखक संघ का अंतिम अधिवेशन 1968 में दिल्ली में डा. नीहार रंजन राय की अध्यक्षता में हुआ।[1] इस काल की राजनीतिक और साहित्यक स्थिति इसके अनुकूल न हो सकी। परिणाम स्वरूप धीरे धीरे प्रगतिशील लेखक संघ का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।[2] लेकिन यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। क्योंकि प्रस्तुत संघ का सुवर्णजयन्ति-समारोह हाल ही में लखनऊ में संपन्न हुआ था। "1950 के बाद कुछ वर्षों को प्रगतिशील लेखक संघ के मौन का युग कहा जाये तो कोई विशेष आपत्ति न होगी। लेकिन इसको निद्रा का काल नहीं माना जा सकता"[3] क्योंकि प्रगतिवादी समीक्षा, कथा और कविता क्षेत्र को आगे बढाने के लिये कुछ साहित्यकार सक्रिय ढंग से कार्यरत थे। "यदि यह कहा जाये कि अन्य साहित्यक संस्थाओं तथा साहित्य विषयक आन्दोलनों की समता में प्रगतिशील लेखकसंघ आज भी सशक्त तथा जीवन्त है, तो अतिशयोक्ति न होगी।"[4]

निष्कर्षत: 1950 के बाद का काल प्रगतिवाद का मौन-काल ही है। लेकिन प्रगतिशील काव्य प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती रही है। प्रगतिवाद ने जब अपना पहला दौर समाप्त किया और प्रयोगवादी युग में प्रगतिवादी स्वर गुंजायमान रहा है। आगे भी नई कविता के युग में भी प्रगतिशीलता काफी सक्रिय रही है।

---

1. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - प्रगतिवादी काव्य का भारतीय सन्दर्भ, अनिलकुमार - पृष्ठ 136.
2. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डा. कृष्णलाल हँस - 1971, पृष्ठ 23.
3. आलोचना - अप्रैल-जून - 1986, पृष्ठ 57 - नत्थनसिंह
4. वही.

प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रभाव

प्रगतिवादी साहित्यान्दोलन का हिन्दी साहित्य में ही नहीं, भारत के विविध प्रान्तों के भाषा-साहित्यों में भी प्रभाव पड़ा था। लखनऊ सम्मेलन के "कुछ महीनों के भीतर काव्य, कथासाहित्य और साहित्यक आलोचना के प्रमुख लेखकों ने अपनी सहानुभूति घोषित कर दी थी।"[1] "उर्दू लेखकों में आन्दोलन का विकास असाधारण रूप से हुआ",[2] सज्जाद ज़हीर के अनुसार संघ की कार्यकारिणी ने यह तय किया कि हिन्दुस्तान की हर बड़ी भाषा के क्षेत्र में क्षेत्रीय संघ हों और तमाम प्रान्तीय संघों के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अखिल भारतीय परिषद बने।[3]

1938 के प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में यह तय किया गया कि लखनऊ से एक पत्रिका संघ की ओर से प्रकाशित करे जिसके संपादक मंडल में भारत की सभी भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे। "यह पत्रिका" "न्यू इण्डियन लिटरेचर" नाम से यथासमय 1939 में निकली। संपादक मंडल में हिन्दुस्तानी हिन्दी - उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड के प्रतिनिधि थे।"[4]

1942 में बंबई में जन-नाट्य संघ की स्थापना हुई और साम्राज्य विरोधी चेतना का प्रवाह तीव्रतर हुआ।[5] प्रगतिशील आन्दोलन का प्रभाव हिन्दी, उर्दू के अलावा भारत की विविध भाषाओं के साहित्य में काफ़ी पड़ा था, इसमें सन्देह नहीं है। शमशेर जी के अनुसार "बंगला, उर्दू, मराठी,

---

1. आलोचना - अंक-77. पृष्ठ 16 - राल्फ रसेल , अखिल भारतीय प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन 1935-47
2. वही पृष्ठ 19.
3. आलोचना - 77, पृष्ठ 3. "प्रगतिशील लेखक संघ की पहली कान्फ्रेंन्स" सज्जाद ज़हीर .
4. वही - पृष्ठ 21 राल्फ़ रसेल
5. वही - पृष्ठ 53 - नत्थनसिंह - प्रगतिशील लेखक संघ के पचास वर्ष

मलयालम, पंजाबी और काश्मीरी भाषाओं में समाजवादी विचारधारा ने प्रगतिशील साहित्य की रीढ बहुत हद तक मज़बूत की थी। मगर हिन्दी का प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन सन् 37-38 से लेकर लगभग 1952 तक अपना जैसा - तैसा रोल पूरा करके खासा निश्शक्त हो गया" -[1]

मलयालम साहित्य में 1937 में "जीवल साहित्य संगठन" का जन्म हुआ था। प्रस्तुत संगठन का प्रेरक प्रेमचन्द के नेतृत्व में संपन्न प्रथम प्रगतिशील लेखक संघ रहा और मलयालम के साहित्यकारों ने प्रेमचन्द और रूसी साहित्यकार मा़क्सिम गोर्की से प्रेरणा पाई थी।[2]

हिन्दी में आन्दोलन का प्रभाव

हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत आन्दोलन का प्रभाव किन किन दिशाओं में हुआ और इसका क्या स्वरूप था, इसपर विचार करना संगत होगा। "हिन्दी साहित्य/की काव्यधारा के विकास में इस आन्दोलन ने एक महत्वपूर्ण अध्याय जोडा था। साहित्य को व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द दायरे से निकालकर जन-जीवन के बीच प्रतिष्ठित करने का कार्य उसने किया। इतना ही नहीं, जीवन और साहित्य के मूल्य, सौन्दर्य - बोध और लक्ष्य को समाज के यथार्थ से जोडा और भाषा को वास्तविक धरातल पर प्रतिष्ठित किया।"[3]

उस समय तक हिन्दी कविता छायावादी अतिशय कल्पना और असीमित भावुकता में डूब गयी थी। वह युगीन यथार्थ और सामान्य एवं पीडित मानव पर केन्द्रित होने लगी, सामान्य भाषा का भी प्रयोग होने लगा।

---

1. केदारनाथ अग्रवाल - संपा. अजय तिवारी 1986, पृष्ठ 57.
   (छायावाद के अलगाव - शमशेर बहादुर सिंह)
2. मातृभूमि - साप्ताहिक (मलयालम) - 4-11-1982, के अंक से - ई. एम. एस. नंपूतिरिपाड् .
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - चतुर्दशभाग - पृष्ठ 130 - हरवंशलाल वर्मा

डा. रामकुमारवर्मा प्रगतिवादी आन्दोलन के व्यापक प्रभाव पर यों प्रकाश डालते हैं – "हिन्दी की अनेक प्रतिभाओं ने इस आन्दोलन से प्रेरणा पायी। आलोचना और विवेचन के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्रगुप्त, शिवदानसिंह चौहान, रामविलासशर्मा, और भगवतशरण उपाध्याय, कथा के क्षेत्र में यशपाल, रांगेय राघव, अमृतराय तथा काव्य के क्षेत्र में शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन और प्रभाकर माचवे का नाम उल्लेखनीय है।"[1] प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रभाव तत्कालीन छायावादी अधिकाय प्रतिभाओं पर भी पड़ा।

हिन्दी के मूर्धन्य समीक्षक नन्ददुलारे बाजपेयी ने इसे नवयुवकों में तेजस्विता का संचार करनेवाला कहा तो आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने इसकी तुलना भक्ति आन्दोलन से की थी।[2] प्रगतिवाद की उपलब्धियों के बारे में चर्चा करते हुए डा. नामवरसिंह कहते हैं कि इसके व्यापक प्रभाव से मध्यवर्ग के बहुत से युवक कवि और कलाकार होकर साहित्य क्षेत्र में प्रत्यक्ष हो गये थे।[3] इस का मतलब यह निकलता है कि प्रगतिवाद का प्रभाव मध्यवर्गीय नवशिक्षित समाज में बड़ा व्यापक था।

समीक्षा-क्षेत्र में प्रगतिवाद की देन

कविता, कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में प्रगतिवाद का प्रभाव जितना व्यापक था उससे भी बढ़कर समीक्षा के क्षेत्र में हुआ था। "एक सुनिश्चित, ऐतिहासिक, सामाजिक समीक्षा-सिद्धांत की सरणी का सूत्रपात करने में प्रगतिवाद सफल हुआ था। इसने सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा के द्वारा समीक्षा क्षेत्र को विकसित किया।"[4]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामकुमार वर्मा – पृष्ठ 380.
2. प्रगतिवाद – शिवकुमार मिश्र – आमुख – पृष्ठ 1.
3. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – नामवरसिंह – पृष्ठ 96.
4. वही – पृष्ठ 118.

प्रगतिशील आन्दोलन ने पत्रिकाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की थी। बहुत-सी पत्रिकाओं का आरंभ इस काल में हुआ था। "रूपाभ, चकल्लस, प्रभा, जनता, संघर्ष, विल्पव, आदि पत्रिकाओं ने ऐतिहासिक कार्य किया।"[1] इससे समाजवादी कला और संस्कृति के क्षेत्र में विश्व-स्तर की गतिविधियों का पता हिन्दी के लेखकों को प्राप्त हो गया। यह संस्कृतिक दृष्टि से एक उपलब्धि मानी जा सकती है।[2] इसके अलावा प्रगतिवादी आन्दोलन से संबंधित अनेक पत्रिकाओं के द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। जागरण, हंस, आज, विशाल भारत, जनवाणी, नया साहित्य, जनयुग, वीणा, वसुधा, कल्पना, फिलहाल, वाम, स्वाधीनता, विश्वभारती, विचार, उच्छृंखल, कर्मवीर, योगी उनमें कुछ हैं।[3]

भारतीय लेखकों में दृष्टिगत एकता को जगाने में प्रगतिवाद ने मदद की है। श्री. रामविलास शर्मा इस ओर संकेत करते हैं। भारत की विविध भाषाओं के लेखकों को एक दूसरे के निकट लाने का कार्य प्रगतिवाद ने किया है। हिन्दी-उर्दू के लेखकों में एक सामान्य जातीय भावना लाने में भी वह सफल हो गया था। इस आन्दोलन की सबसे बडी सफलता यह है कि उसने साहित्यकार को एकांत साधना के बदले जन-जीवन से संबद्ध करने का काम किया है।[4]

"प्रगतिवाद" शब्द भले ही आज प्रयुक्त न हो, उसकी अनिवार्य परिणति का रचनात्मक एहसास आज की कविता का मूल स्वर है। यह जनबद्धता कहीं प्रतिबद्धता के रूप में, कहीं व्यापक मानवीय सहानुभूति के रूप में आज भी विधमान है।

---

1. आलोचना - 77 - पृष्ठ 72 - प्रगतिशील लेखक संघ के पचास वर्ष - नत्थन सिंह
2. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी - पृष्ठ 75 .
3. उसीसे संकलित -
4. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - रामविलास शर्मा - 1984 - पृष्ठ 220.

प्रगतिवादी आन्दोलन की कमज़ोरियाँ

प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारंभिक दौर के उत्साह पूर्ण वातावरण में मार्क्सवादी चेतना एवं उसके ठोस सामाजिक लक्ष्य के प्रति पराड़्.मुख लोग भी इसके सहयोगी हो गये थे। "इनमें कुछ परंपरावादी, रूढिवादी, व्यक्तिवादी भी थे",[1] उनकी दृष्टि में लक्ष्य एकदम अस्पष्ट था। इसको प्रस्तुत आन्दोलन के विघटन का एक मज़बूत कारण माना जा सकता है। रामविलास शर्मा भी इस तथ्य से सहमत हैं। "मार्क्सवाद से प्रेरित प्रगतिवादी आन्दोलन के अनेक सहयोगी ऐसे थे जो मार्क्सवाद के कायल नहीं थे, पर प्रगतिशील भावना से प्रभावित थे। यह संगठन की कमज़ोरी रह गयी।" वे आगे कहते है कि "प्रगतिशील साहित्य के अन्दर फैलनेवाले प्रतिक्रियावादी रुझानों का विरोध न करना भी एक कमज़ोरी थी।"[2] भारत के स्वतंत्र होने पर प्रगतिवादी लेखकों के बीच में भी अन्तरविरोध पैदा हो गया। देश स्वतंत्र हुआ या नहीं, इस विषय को लेकर भी मतभेद हुआ।[3] यह अन्तरविरोध भी प्रगतिवादी आन्दोलन की एक कमज़ोरी थी। "आरंभ में प्रगतिशील लेखक संघ में विभिन्न प्रवृत्ति के लोग थे, जिनको साथ मिलानेवाली भावना वस्तु स्थिति के प्रति एक सन्देह की भावना थी।"[4]

प्रगतिवाद की एक सिद्धांतगत कमज़ोरी की ओर मुक्तिबोध इशारा करते हैं। "प्रगतिवाद में मनुष्य जीवन का केवल राजनीतिक पक्ष उठाया गया। उसने संपूर्ण मनुष्य को अपना काव्य विषय नहीं बनाया।" मुक्तिबोध अन्तरजीवन के विविध पक्षों के सर्वांगीण सौन्दर्य के देखनेवाले हैं।

---

1. प्रगतिवाद का पुनर्मूल्यांकन - हँसराज रहबर - पृष्ठ 1.
2. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य रामविलासशर्मा - पृष्ठ 222, 223, 225.
3. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखाअवस्थी - पृष्ठ 70.
4. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - सच्चिदानंद वात्सयायन - 1967 पृष्ठ 32.

उनकी दृष्टि में समष्टि मानव पर मात्र बल देना प्रगतिवाद की एक कमज़ोरी है। वे आगे कहते हैं - "आज के प्रगतिवाद में बाह्यपक्ष का ही चित्रण किया जाता है, व्यक्तिगत यथार्थ, आन्तरिक अनुभूति को तो वे लोग जैसे छूते ही नहीं।"[1]

प्रगतिवाद के प्रारंभिक दौर की कविताओं की इन कमज़ोरियों के प्रति तटस्थ होना ठीक नहीं होगा। उसकी प्रासंगिकता को समझने केलिए इन कमज़ोरियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

प्रगतिवादी कविता का मार्क्सवादी आधार

मार्क्सवाद ही प्रगतिवादी साहित्य का प्रेरणास्रोत और मार्गदर्शक सिद्धांत है। मार्क्सवाद का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। "भौतिकवाद, दार्शनिक दृष्टि से, वह सिद्धांत है जो वस्तु को सब कुछ और सभी को उसीसे उत्पन्न मानता है।"[2] लेकिन "कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगिल्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने वस्तु को मनुष्य मन की निर्मातृ शक्ति माना और वस्तु यथार्थ के परे किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय शक्ति के अस्तित्व का निराकरण भी किया।"[3]

मार्क्सवादी चिन्तकों ने मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर कला और साहित्य संबंधी अपनी मान्यतायें स्पष्ट रूप से प्रकट की हैं। इन मान्यताओं का प्रगतिवादी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ कुछ मार्क्सवादी चिन्तकों की साहित्यक मान्यताओं पर विचार करना उचित लगता है।

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध - 1983, पृष्ठ 36.
2. 'Materialism, in philosophy, the theory that everything is material and results from matter'. Encyclopedia Americana - Vol.18, p.424.
3. 'The dialectical materialism of Karl Marx and Freidrich Engles viewed matter as producing mind and denied any transcedental, or higher, spiritual basis of reality'. The new college encyclopedia _ 1978, p.561,562.

लेनिन

लेनिन ने कला और साहित्य को ही नहीं, पर समस्त सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का वर्गपरक दृष्टिकोण से आकलन करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। वे वास्तविक साहित्य उसे मानते हैं जो वैयक्तिक नहीं, पर देश के असंख्य श्रमिकों के उत्थान में सहायक हो। उन्होंने कला-साहित्य के संबंध में स्पष्ट रूप से यह मान्यता दी कि "साहित्य सर्वहारा के अभ्युदय के लिये हो, वह सामाजिक प्रजातंत्रीय यंत्र का एक उपकरण मात्र हो।"[1] लेनिन की साहित्य संबंधी मान्यताओं के संबंध में क्लारा जेटकिन कहती है। "कला जनता की अपनी है, उसकी जड़ें मेहनती सर्वहारा के गहरे में जमी रहनी चाहिए"।[2] संक्षेप में, लेनिन साहित्य को समाज-सापेक्ष मानते हैं। उनके अनुसार साहित्य संघर्षरत, शोषित सर्वहारा के जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से तैयार किया हुआ चित्र हो और वह उनके उत्थान में सहायक हो। "लेनिन ने साहित्य को उपयोगितावाद की तुला पर तोलना समीचीन समझा है। वे साहित्य और साहित्यकार के ऊपर बहुत सी जिम्मेदारियाँ डालते हैं।"[3]

प्लेखनॉव

काव्य और कला को मार्क्सवादी दृष्टि से विवेचन करनेवाले चिन्तकों में प्लेखनॉव का महत्वपूर्ण स्थान है। वे कला को एक सामाजिक प्रक्रिया मानते हैं। उनके अनुसार, "कला तभी पैदा होती है जब मनुष्य अपने बाह्यजीवन के प्रभाव से अपने अनुभूत भावों और विचारों को सुनिश्चित सम्मूर्तनों से व्यक्त

---

1. 'Literature must become part of the common cause of the proletariat, a 'Cog and a Screw' of one simple great social democratic machanism set in motion, by the entire politically - conscious vanguard of the entire working class'. On Literature and Art-Lenin 1978, p.25.

2. 'Art belongs to the people : Its roots should be deeply implanted in the very thick of the labouring masses. Ibid. My recollections of Lenin, Clara Zetkin, p.275.

3. मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की भूमिका - मक्खनलाल शर्मा - पृष्ठ 67.

करता है। उनके मत में मनुष्य को अपने सामाजिक संबंध ही प्रभावित करते हैं जिनके मूल में भौतिक और आर्थिक जीवन की सक्रियता बलवती होती है।"[1] वे मानव कल्याण के लिये उपयुक्त साहित्यक प्रक्रियाओं को ही श्रेष्ठ मानते हैं और उनकी दृष्टि में वही साहित्य श्रेष्ठ है जिसमें मानव कल्याण के लिये उपयुक्त साधन हो। "हम मानवीय क्रियाओं को उपयोगी बनाये रखना चाहते हैं जो आवश्यक है कि उनका उद्देश्य मानव जाति का कल्याण हो।"[2] वे ऐसी साहित्य-रचना के समर्थक हैं जिसका प्रेरणास्रोत जन-जीवन हो और जो जन-जीवन के उन्नयन में सहायक हो।

मेक्सिम गोर्की

सोवियत क्रान्ति के बाद मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर साहित्य और कला के क्षेत्र में "समाजवादी यथार्थवादी" सिद्धांत के जन्मदाता के रूप में मेक्सिम गोर्की विख्यात हैं। रूसी किसानों के जीवन यथार्थ की गाथा गाने के साथ साथ प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध लडते हुए अपनी जुझारू वृत्ति भी उन्होंने प्रकट की है। सामाजिक यथार्थवाद की व्याख्या करते हुए गोर्की ने जीवन की क्रियाशीलता और सृजनात्मकता का लक्ष्य मानवमात्र का सर्वांगीण विकास और एकता घोषित किया।[3] उन्होंने साहित्य को जीवन विकास एवं उदात्त वृतियों के उत्कर्ष का सशक्त साधन और समाजवादी संस्कृति का शक्तिशाली हथियार मान लिया। सोवियत साहित्य के संबंध में उन्होंने कहा - सोवियत

---

1. 'The art of any people is determined by their psychology; that their psychology is the outcome of their condition and that this is itself determined in the last analysis by the state of their productive forces and their relatior of production', Art and Social Life, G.V.Plekhanov, p.59.
2. "पाश्चात्य काव्यशास्त्र : मार्क्सवादी परंपरा"- डा. मक्खनलाल शर्मा, पृष्ठ 132. मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की भूमिका-लेखक वही - पृष्ठ 68.
3. Socialist realism proclaims that life is action, creativity, whose aim is the unfesttered development of man's most valuable abilities' for his victory over the forces of nature, and his health and longivity for the greater happiness of living on earth. (The speech delivered to the first all union congress of Soviet writers, August 17, 1934) 'On literature' Maxim Gorkey, p.264.

साहित्य को अपनी विविध नयी प्रतिभाओं सहित एक सशक्त इकाई के रूप में संगठित करना चाहिए।[1] साहित्य उनकी दृष्टि में समाजवादी संस्कार बढाने का माध्यम है। गोर्की के प्रगतिशील विचार संसार-भर के प्रगतिवादी साहित्यकारों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हुए हैं।

क्रिस्टोफर काडवेल

आधुनिक युग के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक और समीक्षक क्रिस्टोफर कॉडवेल साहित्य को समाज के आर्थिक संबधों पर आधारित मानते हैं। उन्होंने काव्य को समाज की कृति माना था। उनके मतानुसार, काव्य राष्ट्रीय या जातीय धरातल पर नहीं, उत्पादन प्रणाली से समाज में होने वाले आर्थिक संबंधों पर निर्भर है। वे कला और साहित्य का विवेचन समाजशास्त्रीय ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि से करने के पक्ष में हैं। उनकी राय में - "श्रमिक सभ्यता के अभ्युदय और वर्गीय संस्कृति के अन्त के साथ ही व्यक्तिवादी भावनाओं के स्थान पर विशुद्ध सामूहिक भावनाओं का उदय होगा।"[2] उनके अनुसार काव्य और साहित्य को भी नई समाज-व्यवस्था के निर्माण में प्रयत्नशील होना चाहिए।

रेल्फ फाक्स

श्रेष्ठ मार्क्सवादी कलाचिन्तक रेल्फ़ फाक्सने दूसरे कला - चिन्तकों की इस भ्रान्ति को दूर किया कि मार्क्स कला साहित्य को केवल आर्थिक और

---

1. With all its diversity of talent and the growth in the new and gifted writers, Soviety literature must be organised as a United and Collective whole, a mighty weapon of Socialist Culture - On literature - Maxim-Gorkey, p.263.

2. Illusion and Reality - Christpher Cadwell, p.40.

भौतिक स्थितियों का प्रतिबिंब मानते थे। उन्होंने साहित्य को मनुष्य के बाह्य-जगत और अन्तरजीवन एवं भावजगत से संबंधित माना। इन दोनों के समन्वय में उन्होंने यथार्थवाद का स्वरूप दर्शित किया। "फाक्स सामाजिक यथार्थवाद के प्रबल समर्थक हैं और उनकी यह यथार्थवादी दृष्टि मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत पर ही आधारित है।[1]

एर्नस्ट फिशर

एर्नस्ट फिशर कला के मूल स्रोतों पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य कला का आश्रय इसलिये लेता है कि वह अपने को अपूर्ण समझता है। वह अपने अलग के अपूर्ण अस्तित्व से संतृप्त नहीं है। पूर्ण जीवन की असीम स्तर की ओर वह बढना चाहता है। इस दृष्टि से वे कला की परिभाषा यों करते हैं - "कला व्यष्टिमानव के संपूर्णता से संपृक्ति पाने का अनिवार्य साधन है, वह उसके पूर्णता के साथ समागम पाने, अनुभवों एवं विचारों के संभागी होने की अपार क्षमता को प्रतिबिंबित करती है।"[2]

फिशर के अनुसार कलाकार के लिये मात्र अनुभूति ही काफी नहीं है। उसे अपनी कला पर भी अधिकार होना चाहिए। उसे कला के सभी नियमों, कलात्मक कुशलता, शैल्पिक रूपों एवं परंपरा का ज्ञान रखना ज़रूरी है। कलाकार अनगढ़ प्रकृति के हाथ का उपकरण नहीं है, उसे प्रकृतिरूप को माँजकर कलात्मक रूप देना चाहिए। अतः कलाकार को अनुभवों को प्राप्त करने उन्हें ताज़ा बनाये रखने और स्मृति के रूप में परिवर्तित करने स्मृति को अभिव्यक्ति देने और वस्तु को सुष्ठु रूप देने की क्षमता होनी चाहिए। वर्ग

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - कृष्णलाल हंस - पृष्ठ 41.

2. 'Art is the indispensable means for this merging wit' the whole. It reflects his infinite capacity for association, for sharing experiences and ideas' - T necessity of Art- Ernst Fischer, 1964, p.8.

समाज में, जहाँ वर्गसंघर्ष अपने उभार में है, कला अपने मूल धर्मों का निर्वाह नहीं कर पाती। फिर भी सामाजिक परिस्थितियों के बदलते स्वरूपों में भी कला अपने शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति कर पाती है। सभी कलायें अपने काल विशेष की मानवता की आशा-अभिलाषाओं, भावों-प्रत्याशाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।

निष्कर्षत: फिशर की दृष्टि में कला विश्व-परिवर्तन का साधन है ही, साथ ही साथ वह कला की दृष्टि से भी खरी हो। "विश्व परिवर्तन के लिये नियत वर्ग के संबंध में कला का धर्म जादू करना नहीं, सजग और प्रेरित करना है, लेकिन कला में जादू के स्पर्श की उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता, उसके बिना कला कला नहीं रहती।"[1] याने कला तभी कला बनती है जब वस्तु-यथार्थ के साथ कला का "जादू" - स्पर्श भी उसमें हो। यह चिन्तन सरणी विश्व भर के साहित्य में गहरा प्रभाव डालने में समर्थ हुई है। इसी को प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार करके अनेक भाषाओं में प्रगतिवादी साहित्य का सूत्रपात हुआ था।

उपर्युक्त मार्क्सवादी विचारकों एवं समीक्षकों की मान्यताओं के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांतों के आधार पर बनी उसकी अपनी कला-साहित्य संबंधी मान्यतायें हैं और उसकी अपनी अलग पहचान है। जीवन-सत्यों पर उसकी अलग यथार्थ-दृष्टि है। उस दृष्टि से शोषितवर्ग और उसके परिवेश का विवेचन किया जाता है, और उन जीवन-सत्यों से बनी अनुभूतियाँ प्रगतिशील साहित्य में अभिव्यक्ति पाती हैं। सामाजिक असंगतियों और विडंबनाओं की समाप्ति और शोषित दलित वर्ग का उन्नयन ही प्रस्तुत

---

1. 'True as it is that the essential function of art for a class destined to change the world is not that of making magic but of enlightening and stimulating action it is equally true that a magical residue in art cannot be entirely eliminated, for without that minute residue of its original nature, art ceases to be art'. The necessity of art - Ernst Fischer, 1964, p.14.

साहित्य का उद्देश्य है। वे कला-साहित्य में व्यक्तिवादी-कल्पनावादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए सामाजिक चेतना से पूर्ण साहित्य-निर्माण करते हैं।

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता का प्रेरणास्रोत मार्क्सवादी दर्शन है। मार्क्सवादी दर्शन ने भारतीय साहित्य और कला के क्षेत्र में अपनी गहरी छाप जो छोडी इसी सिलसिले में हिन्दी साहित्य की सभी विधायें अनुप्राणित हो गयीं। "प्रगतिशील आन्दोलन के साथ सामने आनेवाली मार्क्सवादी समाजवादी चेतना ने साहित्य की सभी विधाओं को अनुप्राणित किया। हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक नए युग का आविर्भाव हुआ, जिसे प्रगतिशील या प्रगतिवादी काव्ययुग के नाम से अभिहित किया गया।"[1]

"हिन्दी की प्रगतिवादी कविता का प्रेरणास्रोत मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और आर्थिक चिन्तन है।"[2] प्रगतिवादी काव्यधारा का मार्क्सवादी प्रभाव प्रमाणित हो गया है। जनेश्वरवर्मा के अनुसार "हिन्दी काव्य साहित्य में आज जिसे प्रगतिशील धारा के नाम से अभिहित किया जाता है वह भी वास्तव में मार्क्सवादी प्रभाव की ही उपज है।"[3]

"हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को कथ्य बनाकर चली"[4] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जीने भी यह राय दी है कि "प्रगतिवादी साहित्य मार्क्स के प्रचारित तत्वदर्शन पर आधारित है।"[5]

---

1. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - संपा. प्रभाकर श्रोत्रिय - प्रगतिशील काव्यान्दोलन में मार्क्सवाद की भूमिका - डा. शिवकुमार-मिश्र - पृष्ठ 144. 1978.
2. भारतीय साहित्य कोश - संपा. डा. नगेन्द्र - 1981, पृष्ठ 745-746.
3. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डा. जनेश्वर वर्मा -1974, पृष्ठ 504.
4. हिन्दी कविता - आधुनिक आयाम (छायावादोत्तर) रामदरश मिश्र, पृष्ठ 61.
5. हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास - हज़ारी प्रसादद्विवेदी पृष्ठ 30.

अजय तिवारी के अनुसार प्रगतिवादी काव्य पर "विश्वदृष्टि पर आधारित चिन्तन विधि-मार्क्सवाद - का गहरा प्रभाव पड़ा।[1]

उपर्युक्त विद्वानों के अनुसार प्रगतिवादी काव्य मार्क्सवाद पर आधरित और अनुप्राणित काव्य धारा सि द्ध हो गयी है। अत: यह भी स्पष्ट है कि मार्क्सवादी दर्शन की प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं की गूँज और अनुगूँज प्रगतिवादी कविता में प्राप्त है।

मार्क्सवादी, भौतिकवादी, साम्यवादी आदर्शों पर आधारित होने के कारण प्रगतिवादी काव्य में तदनुसार राजनीतिक आर्थिक क्षेत्रों की असंगतियों को खास संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। सामन्तवाद-पूँजीवाद के प्रति विद्रोह, सर्वहाराका एकाधिपत्य, साम्यवादी दल की भूमिका, वर्ग-रहित समाज का आदर्श, उपनिवेशवाद का विरोध, विश्वस्तर पर मज़दूरों का सहयोग-संगठन आदि पर प्रगतिवादी काव्य बल देता दिखाई पडता है। सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों के प्रति प्रस्तुत काव्य की प्रतिक्रिया भी उपर्युक्त आदर्शों पर आधरित है। रूढियों के प्रति विद्रोह, नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण, अपराध की नयी धारणा, नये मानव की कल्पना, प्रवृत्तिमार्गी जीवनादर्श के अलावा आर्थिक क्षेत्र में वर्गों की वैषम्यचेतना, शोषण का उच्छेद और साम्य की स्थापना, यंत्रपूजा के आदर्शों की अभिव्यक्ति करता है।[2]

धार्मिक क्षेत्र में प्रगतिवाद निरीश्वरवाद पर आधरित आदर्श की अभिव्यक्ति करता है। वह धर्म के प्रति कट्टर विरोध प्रकट करता है। इसी सिलसिले में सांप्रदायिकता का भी विरोध किया जाता है।

---

1. प्रगतिशील कविता के सौन्दर्यमूल्य - अजयतिवारी - 1984, पृष्ठ 113.
2. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - डा. भक्तरामशर्मा - 1980, पृष्ठ 45-46.

मार्क्स की समाजवादी दृष्टि के अनुरूप प्रगतिवादी काव्य में खास प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं - "सामाजिक वैषम्य का चित्रण, विषमता को जन्म देनेवाली पारंपरिक व्यवस्था और पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति घृणा का प्रचार, शोषण का विशद चित्रण और आर्थिक कारण की मीमांसा, परिवर्तन का संकेत, शोषक वर्ग को फटकार आदि।"[1]

यथार्थवादी रुझान

प्रगतिवादी कविता की मुख्य विशिष्टता उसका यथार्थवादी रुझान है। जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण होने के कारण प्रगतिवादी कविता जीवन यथार्थ का ज्यों का त्यों वर्णन प्रस्तुत करती है। वर्गसंघर्ष में रत समाज की असंगतियों का चित्रण यथातथ रूप में कर उसका समाधान कराना उसकी मुख्य प्रवृत्ति है।

"सन् 1938 में "रूपाभ" के प्रकाशन के साथ आरंभ होनेवाली नयी कविता प्रगतिशील काव्य है जो मार्क्सवाद से प्रभावित है। यथार्थवादी रुझान जिसमें प्रबल है।"[2] अन्य काव्यान्दोलन की अपेक्षा इसमें सामाजिक असंगतियों के प्रति यथार्थवादी दृष्टि है, जबकि नयी कविता में व्यक्तिपरक कुंठा और अतृप्ति पर ज़ोर है तो प्रगतिवादी काव्य में इसके प्रति संघर्ष करने की आकांक्षा है। "प्रगतिशील साहित्य की इस यथार्थवादी भूमिका की उपेक्षा करके 1938 के संक्रमण युग को समझना असमर्थ है।"[3] प्रगतिवादी काव्य की मुख्य पहचान ही यथार्थवादी रुझान है, इसकी चर्चा करते हुए वे अन्य काव्य

---

1. "हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका" - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - "प्रगतिवाद काव्य का भारतीय सन्दर्भ" - लेख से - अनिलकुमार - 1978 - पृष्ठ 127.
2. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - रामविलास शर्मा - 1984 - पृष्ठ 304.
3. कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह - 1968 - पृष्ठ 90 .

विशेषों से इसे यों अलग करते हैं - "जिस तरह कल्पना प्रवण अन्तरदृष्टि छायावाद की विशेषता है और अन्तरमुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की, उसी तरह सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रगतिवाद की विशेषता है।"[1]

यथार्थवाद की व्याख्या करते हुए मुक्तिबोध कहते हैं - "स्वान्तर्जगत् और बाह्यजगत की विरोधी स्थिति से उठकर उन दोनों की साम्यावस्था से जनित जो व्यापक दृष्टिकोण है, वह यथार्थवाद की आत्मा है। यथार्थवादी कला उस विरोधी, स्थिति को मिटाने का प्रयत्न है जिसको मैं आध्यात्मिक कहता हूँ।"[2]

प्रगतिवादी काव्य में सौन्दर्य-वृत्ति, विचार दृष्टि और रचना-सामर्थ्य की दृष्टि से आमूल-चूल परिवर्तन हुए। "इसने लेखकों को नये यथार्थवादी सौन्दर्यबोध, समाजवादी विचारधारा और जन संस्कृति के उपादानों से कविता को समृद्ध करने का प्रयत्न करने को प्रोत्साहित किया।"[3]

हिन्दी काव्य में एकदम नया कलात्मक मानदंड का सूत्रपात प्रगतिवाद की प्रस्तुत यथार्थवादी दृष्टिकोण के द्वारा हुआ। "प्रगतिवाद ने एक सुव्यवस्थित कलात्मक मानदंड अर्थात् समाजवादी यथार्थवाद के नये साहित्यक मानदंड को रखने का प्रयत्न किया। इन मानदंडों के निर्माण में समीक्षकों से लेकर सृजनशील साहित्यकारों तक का योग है।"[4]

रामदरश मिश्र के अनुसार, "प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया, यह इसलिये संभव हुआ कि जीवन को

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह - 1964 - पृष्ठ 98.
2. मुक्तिबोध रचनावली-सं. नेमिचन्द्रजैन - 1980, पृष्ठ 282.
3. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी - पृष्ठ 107.
4. वही - पृष्ठ 108.

देखने का उसका दृष्टिकोण सर्वथा नवीन था।"[1] संक्षेप में कहा जा सकता है कि सौन्दर्य बोध, विचार दृष्टि, रचना कौशल में – प्रगतिवादी काव्य अन्य काव्यों से स्पष्ट अन्तर रखता है।

प्रगतिवादी काव्य की सौन्दर्य-दृष्टि में अपनी विशिष्टता के कारण उसके स्वरूप में काफ़ी विलक्षणता देखी जाती है। प्रेमचन्दजी ने प्रगतिशील साहित्य की सौन्दर्य-दृष्टि का दिशा-निर्देश किया था। उनके अनुसार "अब तक कलाकारों की दृष्टि अंतःपुर और बंगलों की ओर ही उठती थी, अब उन्हें सीधी-सादी, अभावग्रस्त, दरिद्र लोगों की दयनीयता में सौन्दर्य को खोज निकालना है, उस बच्चों वाली गरीब रूपरहित स्त्री में भी, जो खेत की मेड पर बच्चे को सुलाये पसीना बहा रही है, सौन्दर्य देखना चाहिए"[2]। याने सामाजिक असंगतियों एवं सामाजिक जीवन की कुरूपता में भी कलाकार की दृष्टि पडनी चाहिए।

प्रगतिवादी कविता का शिल्प-विधान

सौन्दर्य दृष्टि के इस बदलाव का प्रभाव प्रगतिवादी कविता के शिल्प विधान में स्पष्टतया दृष्टिगत होता है। प्रगतिवादी काव्य के शिल्प विधान की अपनी विशेषता है। कथ्य के विषय में विलक्षणता शिल्प की विलक्षणता का आधार बना है।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार प्रगतिवादी कवियों का झुकाव वस्तु-पक्ष की ओर रहा है। कुछ प्रगतिवादी कवियों ने शिल्प पक्ष की सर्वथा उपेक्षा की है परन्तु समूचे प्रगतिवादी काव्य को शिल्प की दृष्टि से निचला कहा नहीं जा सकता। कलावादियों की जैसी पच्चीकारी प्रगतिवादी कविताओं में अवश्य

---

1. हिन्दी समीक्षा और सन्दर्भ – डा. रामदरश मिश्र – 1974, पृष्ठ 253.
2. कुछ विचार – प्रेमचन्द – 1961, पृष्ठ 18-19.

नहीं देखी जाती। उनके अनुसार प्रगतिवादी कविता में शिल्प को वह स्थिति अवश्य है "जो किसी कविता के भाव को आकर्षक तथा प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता रखती है।"[1] प्रगतिवादी कविता के शिल्प विधान में आडंबरहीनता और अनगढ़पन का आरोप कुछ समीक्षक करते हैं। लेकिन मिश्रजी इसे बिलकुल कलाहीन नहीं मानते। प्रगतिवाद के आरंभिक दौर में शिल्प की शिथिलता प्रगतिवादी काव्य में दृष्टिगोचर होने लगी थी जब कविता अभिधा-प्रधान थी। फिर भी इसमें ऐसी विशेषता रही जो अपनी अलग पहचान का कारण बनी। डा. नगेन्द्र के अनुसार, प्रगतिवादी कविता की भाषा जीवन्त रही, भले ही प्रगतिवादी आन्दोलन के आरंभिक दिनों में शिल्प ध्वनि पर आधारित न होकर अभिधार्थप्रधान हो गया था। जन जीवन के बीच से प्रतीक, बिंब, शब्द, मुहावरे तथा चित्र का चयन करने के कारण प्रगतिवादी कविता का शिल्प-पक्ष रंगीन न होकर ज्यादा प्रभावोत्पादक और जीवन्त हो गया था। शिल्प का यह परिवर्तन नगेन्द्रजी की दृष्टि में गुणात्मक है, क्योंकि एक नयी जीवन्त, सुस्पष्ट और सामान्य भाषा का उद्‌भव इसके द्वारा हुआ।[2]

प्रगतिवादी कवियों के सामने "यथार्थवादी सौन्दर्यबोध और समाजवादी विचार-दृष्टि को हृदयग्राही बनाने की समस्या थी, इसके सुलझान में भाषा, छन्द, प्रतीक, बिंब, उपमान, लय और अन्विति तथा स्पबन्ध सब में नई उद्‌भावनाओं को लेने के प्रयत्न हुए थे।[3]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी कविता का शिल्प सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त सामान्य, साधारण और जन

---

1. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 61.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डा. नगेन्द्र - 1973, पृष्ठ 633-634.
3. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य-रेखा अवस्थी - पृष्ठ 132-133.

सामान्य के लिये सुबोध भाषा और शिल्प का प्रयोग करने में प्रगतिवादी आन्दोलन के आरंभिक दिनों में भले ही सफल न हुए हो मगर आगे चलकर कुछ कवि सफल भी हुए थे। सामान्य जन-जीवन और ग्रामीण जन-जीवन से प्रतीक, बिंब, उपमान लेने की प्रवृत्ति प्रगतिवादी कविता में दिखाई पडती है।

प्रगतिवादी कवियों में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने सामाजिक यथार्थ से निकली सहज सुन्दर कल्पनाओं के द्वारा अपनी कविता को आकर्षक बनाया था।

निष्कर्षत प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

1. वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष और उसके परिवर्तन का मोह।
2. नये समाज के निर्माण की आकाँक्षा।
3. समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर समाज का यथार्थवादी चित्रण।
4. सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता।
5. राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रेम की उद्भावना।
6. रूस और अन्य देशों की साम्यवादी व्यवस्था के प्रति तत्परता।
7. रूढ़ि-विरोध।
8. साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामन्तवाद के विरुद्ध विद्रोह।
9. सर्वहारा के प्रति सहानुभूति और जागरण का सन्देश।
10. नारी के प्रति नया दृष्टिकोण।
11. बौद्धिकता और सामाजिक विसंगतियों के प्रति व्यंग्य का व्यापक प्रयोग
12. काव्यशिल्प की दिशा में सामान्यता का आग्रह।

प्रगतिवादी कवि

प्रगतिवाद का प्रभाव छायावादियों पर भी पड़ा, विशेषकर पंतजी पर। उन्होंने "युगवाणी" की घोषणा की। तरल सौन्दर्य के स्थान पर जीवन की प्रखरता से युक्त परिदृश्य उनकी कविताओं में प्रकट होने लगे। जहाँ तक निराला का संबंध है, कि उन्हें प्रगतिवाद से प्रभावित कवि कहना पूर्ण रूप से सही नहीं है

क्योंकि उनकी प्रगतिशीलता, भले ही मार्क्सवादी सिद्धांतों से परिचालित न हो, उनके व्यक्तित्व का अंग है। इसलिए उनकी कविता छायावादी युग में प्रगतिशीलता का परिचय दे रही थी । लेकिन प्रगतिवादी आन्दोलन से उपजे हुए कवियों के रूप में जो प्रगतिवाद के पूरे अभियान में उसी का अभिन्न अंग बने रहे और पूरी आस्था के साथ आगे बढे हैं, उसके सही प्रतिनिधि के रूप में जाने-माने हैं, "उनमें नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री के साथ रामविलासशर्मा, रांगेय राघव, शील, शिवमंगल सिंह सुमन, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।"[1] इस सिलसिले में शमशेर बहादुरसिंह का कथन भी विशेष रूप से धातव्य है । "इस आन्दोलन में पंत, निराला, नरेन्द्र, सुमन और कुछ लोक कवियों के बाद जो चार कवि दृढता से बराबर जनता के मनोबल में विश्वास रखते हुए अपना नाता उसकी आन्तरिक रचनाशील शक्तियों से जोड रहे थे, वे मात्र केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और नागार्जुन थे। शेष सभी कवि व्यक्तिगत साधनाओं की ओर उन्मुख होकर साहित्य की प्रगतिशील धारा के लिये खो गये।"[2]

त्रिलोचन के अलावा इस धारा के कवियों का सामान्य विश्लेषण इस अवसर पर अनिवार्य प्रतीत होता है।

केदारनाथ-अग्रवाल

प्रगतिवादी धारा के सबसे प्रमुख कवियों में केदारनाथ अग्रवाल का नाम आता है। वे मूलत: प्रगतिवादी आन्दोलन से जुडे हुए कवि हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में छायावादी रूमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से दर्शित होता है। लेकिन जनवादी दृष्टि उनमें धीरे धीरे घर कर गई है।

---

1. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 25-26.
2. केदारनाथ अग्रवाल - सं. अजयतिवारी 1986, पृष्ठ 57.
   छायावाद के अलगाव - शमशेर

मार्क्सवादी चिन्तन ने उनकी कविताओं को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। "मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने के बाद वे जीवन के खुले, स्पष्ट और सच्चे चित्र खींचने लगे। इस वजह से उनकी कविताओं पर जो बन्धन लगा था, छद्म काव्यात्मकता का, वह टूट गया।"[1] केदार के प्रथम काव्यसंकलन "नींद के बादल" में प्रणयसंबंधी वैयक्तिक भावमयता की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन उक्त संकलन में इसकी सूचना मिलती है कि कुछ धारणात्मक तत्व भी उन पर हावी होने लगते हैं –[2]

"लेकिन प्यारे नींद के बादल
लाल सबेरा होते होते
सब होने लगते ओझल"[3]

बाँदा प्रदेश के जन–जीवन की गहराइयों में उतर कर वस्तुस्थिति से तादात्म्य प्राप्त करने की प्रवृत्ति उनकी प्रगतिशील कविताओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। "केदारजी की प्रगतिवादी रचनाओं में बिंबों के माध्यम से जीवन के जन–सामान्य की गरीबी, संघर्ष और वेदना को चित्रित किया गया है"[4]

केदारजी की "युग की गंगा", "लोक और आलोक", "फूल नहीं रंग बोलते हैं", "आग का आईना" आदि संकलनों की रचनाएँ सामाजिक चेतना से ओतप्रोत हैं। मनुष्य और प्रकृति के सौन्दर्य का स्वस्थ और सहज रूप इनमें मिलता है। मानवता और संसार के प्रति उनकी गहरी आस्था का एक उदाहरण –

---

1. आलोचना – अक्तूबर–दिसंबर – 1985, पृष्ठ 88.
   केदार की कवितायें – पूर्वा और अपूर्वा – अपूर्वानन्द
2. आधुनिक हिन्दी काव्य – डा. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र – 1966, पृष्ठ 376.
3. नींद के बादल – केदारनाथ अग्रवाल – दस्तावेज़ – अक्तूबर 1984, पृष्ठ 67
   (केदारनाथ अग्रवाल का काव्य – जोगेंद्र सिंह वर्मा) से
4. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृष्ठ 134.
   (चतुर्दश भाग).

"हम न रहेंगे
तब भी तो यह खेत रहेंगे
माटी को मदमस्त बनायें
श्याम बदरिया के
लहराते केश रहेंगे
हम न रहेंगे
तब भी तो रति -रंग रहेंगे"[1]

केदारजी की रचनाओं का कथ्य इतना विशाल है कि वह जीवन और देश के सुदूर तलों का स्पर्श करता है। "अन्य प्रगतिवादी कवियों की तुलना में केदार की काव्य-धारा में कथ्य सबसे अधिक है।"[2] वह देश और जीवन के धार्मिक, राष्ट्रीय, मानवीय, प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दिशायें कथ्य के दायरे में समेटती है।

उनकी प्रगतिशील संवेदना को स्पष्ट करनेवाली रचनाओं में कवि के युग - निमाण के लिए उत्कंठित हृदय की झाँकी मिलती है -

"जागरण है प्राण मेरा
क्रान्ति मेरी जीवनी है
जागरण के क्रान्ति से मैं
घनघना दूँगा दिशायें"[3]

केदारजी की परवर्ती रचनाओं में भी शोषण उत्पीडन से मुक्त सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिये क्रान्ति के फूल खिलाने की इच्छ प्रकट है -

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल -(परिशोध - मई 1983 केदारनाथ अग्रवाल का कथ्य विविध रूप एवं वैविध्य) से. पृष्ठ 23 डा. रामचन्द्र मालवीय
2. वही
3. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा - पृष्ठ 311।

"काश,
मैं भी फूलता
मेरे भाई अनार।
देता, तुम्हारी तरह मैं भी
लपट मारती कविताओं के फूल
क्रान्तिकारी फूल"[1]

"युग की गंगा", और "लोक और आलोक" की बहुत सी रचनायें कवि के प्रकृति-प्रेम का उदाहरण हैं। इनमें कवि का सौन्दर्य बोध विकसित अवस्था में है। केदार की परवर्ती रचनायें "जमुन जल तुम" और "अपूर्वा" में प्राय: प्रकृति का विराट ऐश्वर्य और उसका आवेग नहीं मिलता। इन में प्रयुक्त बिंबों में आँखों को चकाचौंध कर देनेवाली ऐन्द्रिता भी नहीं है। "केदार की पहले की प्रकृति संबंधी कविताओं में जैसे प्रकृति के दृश्य और चित्र ही भाषा का निर्माण करते हैं, भाषा उनके इशारे पर चलती है। लेकिन इधर भाषा की सहजता देखने को नहीं मिलती।"[2]

सिद्धांतवादिता और प्रतिबद्धता का सामान्य स्तर कविता के लिये कमज़ोरी का कारण माना जाय तो केदार नाथ अग्रवाल की कविता में भी कमज़ोरी है। वे जीवन के विविध पक्षों का विस्तृत आकलन न कर शोषित पीडित मानवता और उसके परिवेश का चित्रण कर पाये हैं। इसके सिवा बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण उनकी कविता में अनुभूतियों की कमी यत्र-तत्र देखी जाती है।

---

1. अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल - 1984. पृष्ठ 81
2. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर - 1985, पृष्ठ 92.
   केदार की कवितायें - पूर्वा और अपूर्वा - अपूर्वानन्द

नागार्जुन

नागार्जुन हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख हैं। युगधारा, सतरंगो पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, खून और शोले, आदि उनकी काव्य-रचनायें हैं जो सामाजिक चेतना से संपन्न हैं। प्राकृतिक सौन्दर्यवर्णन और वैयक्तिक अनुभूतियों को कवितायें भी उन्होंने लिखी हैं। कुछ उद्‌बोधनात्मक कविताओं को भी रचना उनके द्वारा हुई हैं। उनको कविताओं की खूबियों में सब से उल्लेखनीय है कि कवि के अपने अंचल मिथिला की मिट्टी की सुगन्ध से वे सुरभिल है।[1] यथार्थ की ठोस धरती में उनको कविता की जड़ें जमी हैं।

अभावग्रस्त परिवार के परिवेश ने उनके कवि-व्यक्तित्व का स्थापन किया था। अभावग्रस्त जीवन की असन्तोषजनक, संघर्षमय परिस्थितियों ने उनमें सामाजिक जीवन की असंगतियों और कुरूपता के प्रति सजगता पैदा कर दो और हृदय में विरोध और विद्रोह भर दिया। पूँजीवाद के प्रति विरोध और जनशक्ति के प्रति गहरी आस्था उनकी कविता की मुखमुद्रा कही जा सकती है। कवि स्वयं अपने परिवेश पर प्रकाश डालते है -

"पैदा हुआ था मैं
दीनहीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि। मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
जीवन गुज़रता प्रतिपल संघर्ष में"[2]

नागार्जुन की प्रगतिशीलता आरोपित नहीं है। वह स्वानुभूत है, क्योंकि उनका जीवन स्वयं वर्तमान समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपता का साक्षी है।

---

1. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - पृष्ठ 32.
2. युगधारा - नागार्जुन - पृष्ठ 42

उनके संबंध में प्रस्तुत कथन बिलकुल संगत लगता है - "नागार्जुन प्रगतिवाद के वे केन्द्रीय कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता से किसान मज़दूर आन्दोलन को संघर्षशील आत्मा प्रदान की है। उनकी कविता किसान - मज़दूर वर्ग की जुझारू चेतना की, शोषण की विराटता में इस वर्ग की निरीहता की, निम्नमध्यवर्ग की निष्क्रियता के प्रति हितैषी शुभ-चिन्तन की, और शासन-शोषक मगरमच्छों के प्रति व्यंग्य की बडी सादा, स्पष्ट और कठोर अभिव्यक्ति है।"[1]

नागार्जुन की अभिव्यक्ति की खूबी इस बात में है कि उनके द्वारा प्रस्तुत वस्तुयथार्थ को किसी अतिरिक्त टिप्पणी की अपेक्षा नहीं होती। उनकी कविता "अकाल और उसके बाद" इसका उत्तम उदाहरण है। इस छोटी सी कविता में ग्रामीण यथार्थ की समग्रता में अभिव्यक्ति हुई है। उसके द्वारा अभिव्यक्त विवशता दयाभाव नहीं संघर्ष चेतना को उभार देती है -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद,
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद,
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद,
कौए ने खजुलाई पाँखें कई दिनों के बाद।"[2]

(अकाल और उसके बाद)

---

1. छाया के बाद - मुजीब रिज़वी - अशोक चक्रधर- पृष्ठ 23
2. सतरंगे पंखों वाली - नागार्जुन - पृष्ठ 32.

नागार्जुन एक घुमंतु यायावर, मुक्त स्वच्छन्द व्यक्ति हैं। किंतु वे कवि-रूप में स्वच्छन्द नहीं, प्रतिबद्ध हैं। वे सामाजिक विद्रूप, राजनीतिक विसंगतियों और विडंबनाओं पर करारे व्यंग्य कर सब की पोल खोलनेवाले हैं। व्यंग्य की दिशा में वे अकेले हैं, कोई सानी नहीं रखते। "उनके बारे में कहा भी जाता है कि नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।"[1]

स्वाधीन भारत के भुखमरे स्वाभिमानी स्कूल मास्टर के प्रेत के मुँह से ये व्यंग्य भरे शब्द निकलते है -

"सुनिये, महाराज,
तनिक भी पीर नहीं,
दुख नहीं, दुविधा नहीं,
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सहन सकी आँत पेचिश का हमला"[2]

(प्रेत का बयान)

नागार्जुन की व्यंग्यात्मक कविताओं से स्पष्ट होता है कि कवि ने "सामाजिक जीवन के तथ्यों को निकट से देखा और समझा है।"[3]

प्रकृतिवर्णन में नागार्जुन ने दो तरीके अपनाये हैं - एक, प्रकृति का यथार्थ मूलक चित्रण, सतरंगे पंखोंवाली में संगृहीत "वसंत की अगवानी" तथा "नीम की टहनियाँ" इसी प्रकार की रचनायें हैं। दो, सौन्दर्य मूलक ढंग से प्रकृति चित्रण उन्होंने पर्वतीय दृश्यों के वर्णन के दौरान कुशलतापूर्वक किया है। "बादल को घिरते देखा है" में कुछ कवितायें इसके उदाहरण हैं।

---

1. छाया के बाद - मुजीब रिज़वी - अशोक चक्रधर - पृष्ठ 25 .
2. युगधारा - नागार्जुन - पृष्ठ 42.
3. आधुनिक हिन्दी काव्य डा. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र - पृष्ठ 370.

"नागार्जुन हिन्दी की जनवादी कविता के सशक्त और जीवंत प्रतीक हैं, सबसे प्रखर और सबसे सच्चे कवि हैं।"[1] नागार्जुन की आत्मा ग्रामीणता में स्वयं पनपती है, अतः वे यथार्थवादी कवि रूप में इतने आत्मीय लगते हैं।

रामविलासशर्मा

रामविलास शर्मा आलोचक अधिक हैं और कवि कम। उनका एकमात्र काव्यसंग्रह "रूपतरंग" है। शिवकुमार मिश्र के अनुसार, "रामविलासशर्मा समीक्षा में कठोर और कविता में अनुभूति प्रवण और कल्पाशील है।" प्रस्तुत संकलन में "शोषण और अत्याचार के चक्र में पिसती जनता के प्रति कवि की हार्दिक व्यथा तथा संवेदना"शब्दबद्ध है।[2]

रामविलास शर्मा की कवितायें तीन प्रकार की हैं - प्रथम, वर्तमान सामाजिक जीवन की विभिन्न विसंगतियों से पीडित सर्वहारा की आहत चेतना को प्रस्तुत करती है। दूसरे प्रकार की रचनायें समसामयिक घटनाओं पर आधारित हैं, "पंजाब का हत्याकांड", "और भी ऊँचा उठे झण्डा हमारा", "गुरुदेव की पूज्यभूमि", "जल्लाद की मौत"आदि उदाहरण है। तीसरे प्रकार की रचनायें कुछ ऐतिहासिक इतिवृत्त और कुछ आधुनिक कवियों पर आधारित हैं।

आर्थिक शोषण के कारण दयनीय स्थिति में पडे एक असहाय श्रमजीवी के वासस्थान का चित्र इस प्रकार है -

"यह आषाढ़ का पहला दिन, ये काले बादल
लू से झुलसे हाडों को करते हैं शीतल,

---

1. छाया के बाद - मुजीब रिज़वी अशोक चक्रधर - पृष्ठ 26
2. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - पृष्ठ 32.

टपक रहा है टूटा घर, खटिया टूटी है,
एक यहाँ मनचाही सुख की लूट नहीं है।
भरे तराई - ताल नदी, नाले उतराये।
आता है, सैलाब, गाँव जिसमें बह जाये।"[1]

"रूपतरंग" में प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर वर्णन भी मिलता है। बैसवाडा के ग्रामीण जीवन को कवि ने निकट से देखा है, वहाँ की प्राकृतिक शोभा से वह बार-बार आकर्षित भी हुआ।[2]

शर्माजी की कविता में तादगी, वेग और सहजता है, लेकिन इसमें नारेबाजी और स्थूल व्यंग्य भी विद्यमान है।जहाँ "वादी प्रवृत्ति" अधिक प्रबल नहीं है वहाँ कविता अधिक प्रभावित करती है।[3] सामाजिक संवेदना को सरल जन-भाषा में अभिव्यक्ति देना उनकी खूबी है।

संक्षेप में, कविता के क्षेत्र में कम लिखकर भी रामविलासशर्मा प्रगतिशीलता के प्रतिमानों के निर्वाह में सफल माने जा सकते हैं।

शिवमंगलसिंह "सुमन"

शिवमंगल सिंह "सुमन" हिन्दी के लोकप्रिय-प्रगतिशील कवियों में प्रमुख हैं। प्रगतिवादी आन्दोलन से घनिष्ठ रूप से संबद्ध कवि की रचनायें दलित शोषित अभावग्रस्त लोक-जीवन के प्रति आस्था और सहानुभूति प्रकट करने का माध्यम है। दलित-पीडित बुनियादी वर्ग के साथ मिलकर क्रान्ति द्वारा समाज के रुढिवादी, व्यक्तिवादी संस्कारों का अन्त करने और नये

---

1. रूपतरंग - रामविलासशर्मा - पृष्ठ 11.
2. आधुनिक हिन्दी काव्य राजेन्द्रप्रसाद मिश्र - पृष्ठ 384 .
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृष्ठ 134

शोषण हीन, समत्वपूर्ण समाज की रचना को सुमनजी अपनी कवित्व शक्ति का उपयोग करते हैं। उनके "हिल्लोल", "जीवन के गान", "प्रलयगान", "विश्वास बढता ही गया" आदि काव्यसंग्रह इसके निदर्शन हैं। कवि अपनी पक्षधरता को यों स्पष्ट करते हैं –

"विस्तृत पथ है मेरे आगे, उसपर ही मुझको चलना है
चिर शोषित असहायों संग, अत्याचारों को दलना है।"[1]

कवि "जीवन के गान" में अपनी प्रेमिका को भी क्रान्ति के लिये उत्साहित करते हैं –

"तुम-भी रणचंडी बन जाओ,
मैं क्रान्ति कुमारी का अनुचर"[2]

कवि को जन-जीवन पर अटल विश्वास है। वह उसके लिये सदैव सचेष्ट है।"[3]

प्रगतिवादी कविता का जो सहज लोक जीवन पक्ष है, जिसका विकास "सुमन" ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

रांगेय राघव

यथार्थ जन्य अनुभूतियों को सामाजिक दायित्व और प्रतिबद्धता के साथ अभिव्यक्ति देनेवाले जागरूक प्रगतिवादी कवि के रूप में रांगेय राघव का बडा महत्व है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता की देशी दृष्टि के साथ फासिज़्म, साम्राज्यवाद जैसे मानवता विरोधी बुराइयों को अन्तरदेशीयता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रांगेय राघव ने देखा और अनुभव किया है।

---

1. हिल्लोल – शिवमंगलसिंह सुमन – पृष्ठ 81.

2. जीवन के गान – शिवमंगलसिंह सुमन –(छायावादोत्तर हिन्दी गीतकाव्य – डा. सुरेश गौतम) से – पृष्ठ 149.

3. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास – डा. अजित सिंह – 1984, पृष्ठ 137.

"अजेय खंडहर" देशी स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानियों के लिये प्रेरणाप्रद रचना है, "पिघलते पत्थर" साम्राज्यवाद, फसिज़्म जैसे संस्कृति - विरोधी बुराइयों के प्रति जागरण कर कवि की मानवमात्र के लिये चेतावनी है, तो "राह के दीपक" मानव को पशु-सदृश बनानेवाली युगीन असंगतियों और विषमताओं से मुक्ति प्राप्त करने का आह्वान है। "मेधावी" कवि की प्रतिभा और परिपक्वता का साक्षी है। "पांचाली" महाभारत कालीन चित्रपट को युगीन परिप्रेक्ष्य से देखने और अपने प्रगतिशील चिन्तन और प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत करने का माध्यम है। समकालीन समस्याओं को ऐतिहासिक, आख्यानक ढंग से आँकने और सुलझाने का प्रयास उनकी मेधावी, स्वछाया, पांचाली - रचनाओं की खूबी है। "प्रगतिवाद के वे अकेले कवि हैं जिन्होंने हिन्दी कविता की आख्यानक काव्य परंपरा को नये युग में भी जीवित रखने की चेष्टा की है।"[1] युगीन संकटों के सामने त्रस्त और निस्पाय मानवता की शाश्वत मुक्ति के लिये रांगेय राघव ने अपनी कलम चलायी है।

मानव-शोषण के विरूद्ध विद्रोह की आवाज़ बुलन्द करके रांगेयजी ने अपनी प्रगतिशीलता की घोषणा की है -

"धन कुबेरों की भयंकर वासना का
हलाहल मैं कंठ में
धर
मानवी अज्ञान की उन
पार्वती की उँगलियों से
घेर लूँ ग्रीवा
अरे धिक्कार,
शत शत बार"[2]

(आततायी)

---

1. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - पृष्ठ 33 .
2. पिघलते पत्थर - रांगेय राघव -(प्रगतिवादी काव्य साहित्य - कृष्णलाल हँस) से - पृष्ठ 250

"रांगेय राघव प्रगतिवाद के उन कवियों में से है जिन्हें धरती से लगाव है। जनता को कसक की अनुभूति है और है लोकजीवन के प्रति प्रगाढ महत्व"[1] रांगेय राघव की पक्षधरता मानव मात्र के प्रति है जो बिलकुल ठोस और जीवन्त है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

"तारसप्तक"केकवि होने के नाते एक लंबे अरसे तक मुक्तिबोध की गणना प्रयोगवादी कवि के रूप में होती रही है। लेकिन उनके चिन्तन, वैचारिक भूमिका, दर्शन, और सृजन को ध्यान में रखते हुए कहना पडता है कि वे प्रगतिवादी विचारधारा से घनिष्ठ रूप से संपृक्त रहे हैं। इसलिये उनके बारे में शिवकुमार मिश्र का प्रस्तुत कथन बहुत ही संगत लगता है - "प्रगतिवादी कविता की सबसे नई और मज़बूत कडी के रूप में तार-सप्तक के कवि गजानन माधव मुक्तिबोध का स्मरण सहज स्वाभाविक है।"[2]

भले ही वस्तु तथा शिल्प दोनों धरातलों पर मुक्तिबोध अन्य प्रगतिवादी कवियों की तुलना में अधिक आधुनिक होने का वैशिष्ट्य रखते हैं, उनकी कविता में किसान-मज़दूर की अपेक्षा मध्यवर्गीय जीवन की संघर्ष पूर्ण मानसिकता की अभिव्यक्ति पर ज़्यादा ज़ोर है, फिर भी उनकी वैचारिक आस्था, जनसामान्य, शोषित पीडित मानवता के प्रति अनन्य प्रेम और गहरी संवेदना और उनके भविष्य पर अटल विश्वास के स्तर पर अन्य प्रगति-वादी कवियों से वे अलग और आगे रहते हैं। "मध्यवर्ग के व्यक्ति की आशा निराशा और घुटन-टूटन के बीच भी मुक्तिबोध का जीवन और सृजन उस सुख को पाने के लिये जीवन के अंतिम समय तक कसमसाता रहा जो आस्था

---

1. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - डा. अजित सिंह - 1984, पृष्ठ 139.

2. प्रगतिवाद - शिवकुमारमिश्र - पृष्ठ 34

की गोद में जन्म लेकर विकास की मंजिलों की छुअन से रोमांचित हो उठता है।"[1] मध्यवर्गीय जीवन के आत्मसंघर्ष के प्रति कवि की आस्था-भरी संवेदना और ऊँचे स्तर की प्रगतिशीलता की झाँकी उनके काव्य-संग्रह "चाँद का मुँह टेढा है" में द्रष्टव्य है।

"भूलगलती" प्रस्तुत काव्यसंग्रह की पहली कविता है जो एक दरबारी दृश्य उपस्थित करती है जो खोखले ऐश्वर्य से आक्रान्त लेकिन पराजय और नाश के कगार पर खडे दरबार का है। दरबार में ईमान कैदी होकर खडा है और गुनाह सिंहासन पर बैठा है -

"भूल-गलती
आज बैठी है ज़िरह बख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के,
चमकते हैं खडे हथियार उसके दूर तक,
आँखें चिलकती है नुकीले तेज़ पत्थर - सी,
खडी है सिर झुकाये
सब कतारें
बेज़ुबाँ बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबों - थमे
दरबारे - आम में
सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कहा
चहेरा
कि जिसपर काँप
दिल की भाप उठती है

---

1. सामयिक साहित्य (राधाकृष्ण प्रकाशन) - जुलाई 1985, मुक्तिबोध की आत्मकथा - (विष्णुचन्द्र शर्मा) की समीक्षा से - समीक्षक - शांतिलाल जैन - पृष्ठ 12.

पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद,
समूचे जिस्म पर लत्तर
झलकते लाल लंबे दाग
बहते ख़ून के।
वह कैद कर लाया गया ईमान

(भूल गलती)

दरबार का "यह समूचा दृश्य जितना बाहर का है, सारे समाज का, उतना ही हमारे भीतर का भी है यह कविता कविता-मात्र की क्रान्तिकारी संभावना के बारे में है. यह कविता कर्म और मुक्ति की पक्षधर कविता है, वह जड़ता, स्वीकार, समझौते, दोमुँहेपन के विरुद्ध की कविता है।"[2] चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखी गयी यह कविता तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों की झाँकी भी प्रस्तुत करती है।

मुक्तिबोध की पक्षधरता और प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से उनकी रचनाओं में प्रकट हुई है। "मुक्तिबोध के ज्ञानात्मक आधार पर "उत्पीड़न करनेवाली शक्तियों की चेतना और उनके विरुद्ध "विद्रोह करनेवाली ताकतों से सक्रिय सहानुभूति का समावेश विशेष रूप से किया गया है।[3] जैसे उपरोक्त सूचित किया गया है कि मुक्तिबोध को प्रयोगशील नए कवि के रूप में देखा गया है जो सही भी है। नई कविता के वे सर्वस्वीकृत कवि इसलिए हैं कि उनकी कविता में समय का स्पन्दन मिलता है। समकालीन कवियों ने मुक्तिबोध के प्रति अपना ऋण-स्वीकार किया है। उसके पीछे भी मुक्तिबोध की जनवादी चेतना वर्तमान है। प्रगतिचेतना का सर्जनात्मक धरातल उनकी कविता में निरंतर विकासमान है।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है - मुक्तिबोध - 1964, पृष्ठ 1-2
2. पूर्वग्रह अंक 63-64, पृष्ठ 85-86, प्रकट विकट - अशोक वाजपेयी
3. पूर्वग्रह अंक 76-77, दिसंबर 1986, पृष्ठ 107.
   मुक्तिबोध का साहित्य चिन्तन और टी.एस.एलियट .
   मोहकृष्ण बहोरा .

शमशेर ने भी मुक्तिबोध को प्रगतिशील कवियों के अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित किया है - "इस प्रगतिशील आन्दोलन में पंत, निराला, नरेन्द्र, सुमन और कुछ लोक कवियों के बाद जो चार कवि दृढ़ता से बराबर जनता के मनोबल में विश्वास रखते हुए अपना नाता उसकी आंतरिक रचनाशील शक्तियों से जोड़े रहे थे, वे मात्र केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और मुक्तिबोध और नागार्जुन थे ।"[1]

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह ऐसे कवियों में एक हैं जो प्रगतिशील आन्दोलन से प्रभावित तो हुए, लेकिन आगे चलकर अभिव्यक्ति की दिशा में भिन्नता का परिचय देकर उससे अलग हुए। फिर भी उन में प्रगतिशील चेतना और संस्कार कमोबेश रूप में जीवित है।[2]

शमशेर में अपूर्व सौन्दर्य दृष्टि है। उस दृष्टि से सारा दृश्य जगत सौन्दर्य से ओतप्रोत है। "उनकी इस सौन्दय दृष्टि को खानों में नहीं बाँट सकते कि आत्म और वस्तु की अन्तरक्रिया से ही उसकी उपलब्धि होती है।"[3]

उनकी कल्पना यथार्थ से शून्य नहीं है, "शमशेर में अतियथार्थवादी रूपाकारों की मौजूदगी है . उनकी कला में यथार्थ के, प्रतीत और आभासित विन्यास के पीछे छिपे वास्तविक साक्षात्कार का ही प्रयत्न है।
यथार्थवाद की कलात्मक संभावनाओं का इससे अधिक दोहन करनेवाला, उसे इतनी ऊँची कलात्मकता तक उठानेवाला और कोई कलाकार समकालीन परिदृश्य में मौजूद नहीं है।"[4] शमशेर को परवर्ती कविताओं के आधार पर

---

1. केदारनाथ अग्रवाल - सं. अजयतिवारी - 1986, पृष्ठ 57. छायावाद के अलगाव - शमशेर .
2. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र - 1966, पृष्ठ 26.
3. वसुधा - अप्रैल-जून 1986, पृष्ठ 29 प्रेम और प्रकृति:प्रगतिशील काव्य की बृहत्त्रयी - नागार्जुन, केदार, शमशेर - धनंजय वर्मा
4. वही - पृष्ठ 30 .

उन्हें प्रगतिवादी नहीं माना जा सकता। लेकिन शमशेर की संवेदना की बुनावट में प्रगतिचेतना का उल्लेखनीय स्थान है।

निष्कर्ष

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रगतिवादी आन्दोलन की तुलना भक्ति आन्दोलन से की है। यह तुलना असंगत नहीं है। आन्दोलन का जो गहरा प्रभाव हमारे सांस्कृतिक चिन्तन क्रम तथा सामाजिक गतिविधान में पड़ता है उसको देखते हुए प्रगतिवाद को आन्दोलीकृत भूमिका का महत्व स्पष्ट होता ही है प्रगतिवाद ने भक्ति आन्दोलन के समान भारतीय मानसिकता की आकांक्षाओं की मिली-जुली अभिव्यक्ति को प्रेरणा दी। प्रगतिवाद, जैसे कि हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सूचित किया, एक "अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में प्रगट" हुआ। प्रगतिवाद की अप्रतिरोध्य शक्ति का प्रमुख कारण उसका सुनिश्चित सामाजिक क्रम से संबंध रहा है। सामाजिकता का स्वर इसके पहले भी गूँज उठा था। लेकिन उसमें समाज की मूलस्थिति तक पहुँचने की कोई रचनात्मक गति नहीं थी। प्रगतिवाद ने सबसे पहले ऐसा एक क्रम अपनाया जिस में मनुष्य की निजी अवस्था का पूरा रेखांकन सन्निविष्ट है।

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता का संबंध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ जुडी हुई राजनीतिक स्थितियों से भी है। जिसप्रकार अखिल भारतीय स्तर पर सर्वहारा वर्ग के जागरण के प्रति विशेष उत्तेजना जाग उठी उसकी सांस्कृतिक व सृजनात्मक भूमिका प्रगतिवादी कविता में ढूँढी जा सकती है। सांप्रदायिकता, रूढ धार्मिकता तथा जातिवाद के खिलाफ सुदृढ कदम उठाने का संकल्प भी प्रगतिवादी कविता का सुस्पष्ट अंग रहा है। कुल मिलाकर प्रगतिवादी कविता नई नई चेतनाओं की स्फूर्तिप्रद अभिव्यक्ति है।

प्रगतिवादी कविता में आदर्श का स्वर भी कम नहीं है। यह स्वर कभी कभी आह्वानात्मक भी है। परन्तु यह उसकी एक स्वाभाविक परिणति मात्र है। सृजनात्मक स्तर पर प्रगतिवादी कविता ने जो स्वर गुंजायमान किया है उसमें वास्तविक मनुष्य की आन्तरिकता की अभिव्यक्ति ही हुई है। यह भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है कि प्रगतिवादी कविता ने मुख्यतः किसानी चेतना या ग्रामीणता को भी स्वर दिया है। अर्थात् जो सचमुच सर्वहारा है, शोषित है, अपनी निर्बलता के बावजूद अपनी पूरी अस्मिता केलिए लड रहा है, अपनी निजता और सहजता को संरक्षित करना चाहता है, प्रगतिवादी कविता उसका पक्षधर है। इस अर्थ में प्रगतिवादी कविता का महत्व समकालीन युग में भी अधिकाधिक है।

अध्याय दो

त्रिलोचन : व्यक्ति और कवि

अध्याय दो

त्रिलोचन : व्यक्ति और कवि

त्रिलोचन छायावादोत्तर कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। प्रगतिवादी दौर के प्रसिद्ध त्रयी में त्रिलोचन का प्रमुख स्थान है [1]। केदारनाथ - अग्रवाल और नागार्जुन इस त्रयी के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं। त्रिलोचन की कविताओं का संबन्ध मात्र प्रगतिवाद से नहीं है। उस दौर में वे कविता के क्षेत्र में आए और प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति को गतिशील बनाने का कार्य किया। अतः प्रगति चेतना उनकी कवि चेतना का प्रमुख अंग है।

---

1. क. आलोचना. अक्तूबर - दिसंबर 1985 - पृष्ठ 77.
   रंगों का एक पूरा संभार - श्याम कश्यप.

   ख. केदारनाथ अग्रवाल - सं. अजय तिवारी - 1986 - पृष्ठ 57.
   छायावाद के अलगाव - शमशेर बहादुर सिंह.

वह उनके व्यक्तित्व का प्रबल पक्ष भी है। प्रगतिवादी दौर के समापन के बाद भी त्रिलोचन की कविता विकासशील रही है। नई कविता के दौर में भी त्रिलोचन की रचनात्मकता निरंतर सूक्ष्म होती रही है। उन्होंने अपनी कविताओं में जनवादी चेतना को सतहीपन से बचाते हुए ठोस स्थिति में पहचाना है। इस कारण से आज भी उनकी कविता में वह सहजता प्राप्त होती है जो प्रायः हमारी लोक कविता की अपूर्व प्रवृत्ति है।

त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व का निरंतर विकास होता रहा है। आज त्रिलोचन की कविता हिन्दी प्रदेश के संस्कारों से युक्त, सहज अभिव्यक्ति है, भले ही उसमें अवध के परिवेश का भली - भाँति संकेत अधिकाधिक रूप में वर्तमान हो। त्रिलोचन की यह सहजता उनके ग्रामीण संस्कार के कारण है। अलावा इसके, सामान्य जीवन के साथ उनका गाढ़ा संबंध भी है। इसलिए अपनी भाषा और समाज की अन्दरूनी स्थितियों को सही ढंग से संबद्ध करने में वे सफल हुए हैं। त्रिलोचन ने औसत आदमी को अपनी कविता के केन्द्र में खडा किया है।

एक खास अर्थ में त्रिलोचन की कविता पारंपरिक है। उन्होंने अपने को उन आर्ष कवियों की परंपरा से जोड़ा है जो कालिदास से लेकर तुलसी तक की कवि-परंपरा है। "त्रिलोचन में परंपरा के प्रति कृतज्ञता का भाव है। वे संस्कृत कवियों की उस परंपरा को लेकर चलते हैं, जहाँ कवि अपने से पहले के उन बडे कवियों को प्रणाम करके ही रचना में प्रवृत्त होता था। कालिदास और तुलसीदास दोनों के प्रति कृतज्ञता त्रिलोचन ने ज्ञापित की है"[1]। यह उनके परंपरा के प्रति वायवीय मोह के कारण नहीं है, बल्कि परंपरा को गतिशील दृष्टि से

---

1. पूर्वग्रह - मार्च - जून-1986-पृष्ठ 31
   उँचाए हाथ और त्रिलोचन की कविता - राधा वल्लभ त्रिपाठी.

देखने के कारण है। उस दृष्टि से देखते समय कालिदास से शुरू होने वाली कवि परंपरा का महत्व सर्वाधिक है। त्रिलोचन उस दृष्टि से ही अपनी परंपरा के पोषक के रूप में प्रस्तुत होना चाहते हैं।

उनके काव्य व्यक्तित्व का एक और प्रबल पक्ष ग्रामीणता का एहसास है। यह बात मात्र उनकी भाषिक-संरचना तक सीमित नहीं है। यह प्रवृत्ति उनके रोए - रेशे से जुडी हुई है। इस कारण से उनकी कविता आजकल एक नई परंपरा की खोज करती है। अतः वह पारंपरिक भी है और अपारंपरिक भी है।

त्रिलोचन के कवि-व्यक्तित्व को समग्रता के साथ समझने के लिए उनके जीवन परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है। त्रिलोचन बाहर से बिलकुल सहज और सामान्य हैं, उनकी सामान्यता प्रचारित होने के कारण असामान्यता की प्रायः उपेक्षा हो जाती है। इस संदर्भ में श्री. शिवप्रसाद सिंह का यह कथन ज़्यादा तथ्यपूर्ण लगता है। "इसका सहज और सामान्य इतना बहुप्रचारित रहा है कि असामान्यता और असहजता के प्रति कभी किसीने स्वाभाविक जिज्ञासा ही नहीं की"।[1] एक परिपक्व कवि की सामान्य बातों से लोग इस कदर परिचित होते हैं कि उनकी कविता का सही आस्वादन एक अरसे तक होता नहीं। प्रगतिशील दौर की कुछ इनी गिनी बातों के आधार पर त्रिलोचन का जिक्र होता रहा। परन्तु त्रिलोचन की कविता उत्तरोत्तर बढती और विकसित होती रही। प्रगतिवादी कविता के प्रथम दौर के समाप्त होने के बाद जब हिन्दी कविता आधुनिक परिवेश को अभिव्यक्त करने में संलग्न रही तब भी उसका केन्द्रविषय मानव और मानवीय संकट ही रहा है। शिल्प के स्तर पर होने वाले विभिन्न प्रयोगों के बावजूद औसत आदमी की तलाश आधुनिक कविता

---

1. कस्तूरी मृग - शिवप्रसाद सिंह - 1972 - पृष्ठ 153.

ने की है। त्रिलोचन का काव्य विकास भी इसके अनुकूल ही है। उन्होंने अपनी कविताओं को प्रगति चेतना के सामान्य संवाहक रचनाओं के रूप में ही देखा नहीं है। उनके शब्द और उनकी धरती गहन अर्थवाले हैं। यही नहीं, व्यक्ति के रूप में भी उन्होंने अपने संस्कार को परिष्कृत किया।

जन्म

त्रिलोचन शास्त्री का जन्म - स्थान उत्तरप्रदेश के सुलतानपुर जिले का गाँव चिरानीपट्टी है , ननिहाल भी उत्तरप्रदेश के जौनपुर जिले का अखड़पुर गाँव है। दोनों अवध प्रान्त के अन्तर्गत हैं। त्रिलोचन का जन्म सन् बीस अगस्त 1917 में हुआ। उनके पिता का नाम जगरदेव सिंह था और माताजी का नाम पनवर्ता देवी। त्रिलोचन का बाल्यकाल का नाम वासुदेवसिंह था। ग्रामीण संस्कार की विरासत उन्हें इन ग्राम प्रान्तरों से मिली है। इस संस्कार में परोक्षतः एक गूढ काव्य-संस्कार भी छिपा है। इस संस्कार - विशेष की अपनी अलग सत्ता का वैशिष्ट्य भी है। अवध में उन दिनों साधारण लोग भी - बातचीत के दौरान दो - एक छन्द खुद बनाकर कह देते थे [1]। गाँव के आसपास सुलतानपुर जिले में ही उन दिनों कुछ प्रसिद्ध कवि थे - जगलालभट्ट, गंगाभाट, बालकवि प्रभुदयाल लाल, लोककवि द्विवदेनी आदि। ग्रामीणों के काव्य - संस्कार या उस गाँव के जो कवि थे उनके सीधे प्रभावस्वरूप त्रिलोचन में काव्य - लेखन का अंकुर फूटा हो, ऐसी बात नहीं। त्रिलोचन ने इस संस्कार को गहराई में आत्मसात किया है। अपने आत्मबोध के साथ

---

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार कवि के आवास पर - अक्तूबर - 1986.

इसे मिलाया है। "त्रिलोचन की कविता का धरातल भारत के गाँव हैं और उनके आसपास की प्रकृति है। इसी से उनकी संवेदना जन्मी है और इसीसे कला"[1]

पिताजी घरेलू धंधा – कृषिकर्म – में लगे थे। त्रिलोचन के हृदय में अपने पिताजी के प्रति विशेष आदर भाव था। इसके अपने कारण भी थे। क्योंकि गाँव के रीति – रिवाज़ के विरुद्ध शिक्षा और कविता के प्रति त्रिलोचन को पिताजी ने ही प्रोत्साहित किया था। गाँव – भर में ऐसा एक अंधविश्वास प्रचलित था कि शिक्षा प्राप्त करने से लोग मर जायेंगे और कुछ घरों में पढ़ने के कारण लोग मर भी गये थे[2]। इस अंधविश्वास को चुनौती देकर ही पिताजी ने वासुदेवसिंह को पढ़ने की प्रेरणा दी थी। इतना ही नहीं, रामायण बाँचने को प्रोत्साहित भी किया था। "नगई महरा" में महरा स्वयं त्रिलोचन से कहता है --

"अच्छा बाँच लेते हो रामायन
तुम्हारे बाबू कहते थे जैसे
अब कोई क्या कहेगा
उनकी भीतरी आँख खुली थी
सुर भी क्या कंठ से निकलता था
जैसे आषाढ़ के मेघ की गरज"[3]

इस कारण से त्रिलोचन अपने पिताजी के लिये "महिमा –मंडित मनुष्य" जैसा विशेषण जोडने के इच्छुक हैं। अंधविश्वास को ललकारनेवाले पिताजी के बारे में त्रिलोचन ने लिखा --

---

1. धरती – 4 – 5. फ़रवरी – 1983 – पृष्ठ 39.
   समकालीन कविता की विरासत जीवनसिंह.
2. "माँ – पढ़ते – लिखते ही तीन–चार जने मर गये"
   (जीवन का लघुप्रसंग) – "धरती" पृष्ठ 82 – त्रिलोचन.
3. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन – 1983 – पृष्ठ 72.

"हृष्टपुष्ट उन्नत शरीर वह, पित: तुम्हारा
एक चुनौती था मनुष्य की ऊँचाई के लिए" [1]

शास्त्रीजी को कभी कभी आश्चर्य-सा होता है कि क्यों "मेरा कद पिताजी का जैसा न रहा " ? यह आश्चर्य आवयविक कमी से उत्पन्न नहीं है, यह आश्चर्य एक आदर्श की ऊँचाई को प्राप्त करने की इच्छा से उत्पन्न है।

वासुदेवसिंह की माताजी पुराने विचारों की महिला थी। वह खेती - बारी का कठोर दायित्व अपने पुत्र के बलिष्ठ कंधों पर रखना चाहती थी। वह कभी यह चाहती नहीं थी कि वासुदेव स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त करें। [2] वह वासुदेव को लगातार खिलाने - पिलाने के पक्ष में थी। वह बालक को घंटों कमरे में बन्द रखती थी, इसलिये कि वह खूब खाये - पिये , वह कहीं बाहर निकल न जाय, खाना - पीना छोडने से कहीं दुबला न हो जाये [3]। वह यह न चाहती थी कि बेटा दुनियादारी में हार - जाय, खेती - बारी में पिछड जाय। माता के इस विचित्र स्वभाव का वासुदेवसिंह पर बहुत गहरा प्रभाव पडा था। माताजी इस बात पर भी भयभीत थी कि लड़का अगर पाठशाला में जाये तो उसको असामयिक मृत्यु हो सकती है। वासुदेवसिंह माता जी के इस व्यवहार से विद्रोह करते थे। खाने - पीने की मजबूरी ने उन्हें इन सब के प्रति विरक्त बना दिया।

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन - 1981 - पृष्ठ 15.
2. "तब तक माँ आई और उसने कहा रोज़ रोज़ कहती हूँ ,
   पढ़ लिखकर क्या होगा, पढ़ना अब बन्द करो इसका, घर काम करें,
   पढ़ना हमारे नहीं सहता पर बात मेरी कौन यहाँ सुनता है।
   (जीवन का एक लघु - प्रसंग) "धरती" पृष्ठ 82.
3. मेरे कुछ आधुनिक कवि - शमशेर बहादुर सिंह - स्थापना - 7. सितंबर - 1970 - पृष्ठ 89.

लेकिन वासुदेवसिंह की दादी जी – जिन्हें वे "बुआजी" कहते थे – अपनी बहू के विचारों से सहमत नहीं थी। वासुदेव को पाठशाला भेजने के मामले में बहू के साथ हुए विवाद में दादीजी ने कहा था, मैं ने उसे देवी सरस्वती को सौंप दिया है, और समर्पित चीज़ को वापस लेना उचित नहीं है,

"बुआने कहा: दुलहिन माँ को वे यही कहा करती थीं इस बच्चे को
मैंने श्रद्धा से, प्रेम से निष्ठा से
विधा को दान कर दिया है,
जान – बूझकर दान कैसे फेर लूँ" – ।

ग्रामीण और अपढ होने पर भी "बुआजी" में वासुदेव को शिक्षित कराने की तत्परता थी जिसका जिक्र स्वयं कवि ने किया है।

गाँव की पाठशाला में त्रिलोचन ने संस्कृत, उर्दू और फारसी पढी। जब संस्कृत और उर्दू पढ़ चुके तो फारसी पढ़ने की अनुमति उन्होंने अपनी बुआजी से माँगी, तब बुआजी ने कहा कि तुम जो चाहे पढ़ो जो अपने जीवन के लिये आवश्यक है [2]।

घर में पिटनेवाले लड़के की बाहर मित्रों के बीच में कद्र नहीं होती थी [3]। इसलिए घंटों घर में बन्द वासुदेव जब बाहर निकलता था तब भद्र समाज के लडकों से दूर रखा जाता था। इसलिए गाँव की निचली जाति के लडकों से उनका मेल – जोल हो गया। साधारण और सामान्य पिछडे लोगों के प्रति ममता और लगन वासुदेवसिंह में छोटी उम्र से ही घर कर गयी। संयोगवश प्राप्त इस संबंध ने उन्हें बहुत –

---

1. (जीवन का एक लघु प्रसंग) –"धरती" – पृष्ठ 82.
2. व्यक्तिगत साक्षात्कार.
3. वही.

कुछ दिया है। यही संबंध उनके जीवन - दर्शन को स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ।

बचपन में वासुदेवसिंह लज्जाशील भी था जिसकी ओर एक कविता में स्वयं कवि ने संकेत किया है।

- - - मैं छोटा था,
झोंपू था, मिलने - जुलने में सिकुडा सिकुडा
रहता था" - - - [1]

सभी प्रकार के लडकों के साथ मेल जोल के अवसर से वंचित होना भी उपर्युक्त लज्जाशीलता का कारण मालूम पडता है।

वासुदेवसिंह पढ़ने में बहुत ही तेज़ था। संस्कृत के अध्यापक व्याकरण के सूत्र एक बार सुना देते थे और छात्रों से जल्दी ही इन्हें कंठस्थ करने केलिये कहते। तभी वे कहीं चले जाते थे। उनके लौटने तक छात्रों को सूत्र - मुँहज़बानी सुना देना था। लड़के न खेल सकते थे, न कूद। लेकिन वासुदेवसिंह खेलते - फिरते थे। क्यों कि गुरुजी के एक बार कह देने भर से व्याकरण के सूत्र उन्हें कंठस्थ हो जाया करते थे। अध्यापक के आने पर खेलते फिरते वासुदेव को डाँट खानी पड़ती थी। उसके कहने पर भी अध्यापक को विश्वास नहीं होता था, फिर कंठस्थ सूत्र उन्हें सुनाना पड़ता था। सुस्पष्ट ढंग से सूत्र बोल देने पर अध्यापक काफी प्रसन्न होते थे। इन्हीं संस्कृत के अध्यापक पंडित देवदत्त ने ही वासुदेव को "त्रिलोचन" नाम रखा था। तभी से "वासुदेवसिंह" "त्रिलोचन" हो गये। "शास्त्री" की उपाधि उन्होंने बाद में पंजाब युनिवर्सिटी से पाई। [2] उस समय से वे "त्रिलोचन शास्त्री" बन गये।

---

1. "दिगन्त" - त्रिलोचन - 1957 - पृष्ठ 29.
2. "पंजाब से उन्होंने संस्कृत में "शास्त्री" किया" - त्रिलोचन के काव्य - राजू एम. फिलिप - 1985 पृष्ठ 20.

ग्रामप्रान्तर का परिवेश

त्रिलोचन के व्यक्तित्व को स्थापित करनेवाले सशक्त पक्ष उनके अपने ग्रामप्रान्तर ही हैं। ग्रामीण जीवन की स्वच्छन्दता तथा तालबद्धता ने उनके भीतरी स्वर को गुंजायमान किया। स्वयं त्रिलोचन ने इस ओर संकेत किया है - उस परिवेश का "लय - ताल और छन्द की पहचान खेलते - खेलते मेरे मन में आ गई थी कि मैं बातचीत तक में इसका उपयोग कर लेता था। मुझे सैकडों लोकगीत बहुत ही छोटी उम्र में याद हो गये थे जिन्हें एकांत में मैं दुहराया करता था। कभी कभी ऊँचे स्वर में और कभी - कभी मन ही मन। लिखने का अभ्यास हो जाने पर मैं ने कॉपी में इन कविताओं का लिखना शुरू किया। लोकतत्व जिसमें लोकगीत और लोककथायें सम्मिलित हैं - यह मेरे बाद के जीवन में प्रेरक रहे" [1]। आधुनिक कविता में लोक लय का संस्पर्श अनुभव किया जा सकता है। लेकिन अधिकतर कवियों ने उसे भाषिक संरचना के स्तर पर ही लिया है। त्रिलोचन की कविता में लोकदृष्टि का परिपाक मिलता है।

संस्कृत के प्रति त्रिलोचन की रुचि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत के अध्यापक से जो भी सीखा उसीसे वे संतृप्त न हुए। भाषा के इस अनियंत्रित प्रेम के बारे में आगे वे कहते हैं - "गुजराती से ही मैं ने पत्रकारिता शुरू की। वहीं संस्कृत जो छायी हुई थी, झडी, झबेरचन्द मेधाणी जैसे अद्भुत आदमी और लेखक मुझे गुरु के रूप में मिले थे" [2]। जो भी संस्कृत ग्रंथ हाथ लगते, सब वे पढ लिया करते थे और कंठस्थ भी कर लिया करते थे। संस्कृत के प्रति विशेष प्रेम से

---

1. त्रिलोचन के श्रीमती मीना सिन्हा के नाम पत्र से - 10-7-1986.
2. आजकल - अप्रैल - 1982 - पृष्ठ 4. दिविक रमेश के कवि त्रिलोचन से साक्षात्कार से

वशीभूत होना ही इतना था कि उन्होंने दक्षिण की यात्रा भी की थी और जिन विद्वानों से मिलने की सुविधा प्राप्त हुई उनसे वेदान्त और मीमांसा पर उन्होंने शास्त्रार्थ भी किया था [1]।

त्रिलोचन के गाँव की अपनी बोली अवधी थी और अंचल विशेष की भाषा पश्चिमी भोजपुरी थी जिनसे उनका अच्छा - खासा परिचय हो गया था। शिक्षा के दौरान उन्होंने बँगला, गुजराती और मराठी की जानकारी पायी। अंग्रेज़ी उन्होंने स्वाध्याय से पढ़ी। इसी सिलसिले में अंग्रेज़ी साहित्य में एम. ए. पूर्वार्द्ध भी उन्होंने पास कर लिया।

घुमन्तु चरित्र

घुमक्कड़ी वृति त्रिलोचन में बचपन से शुरू हुई थी। अंधविश्वास से जूझने की क्षमता और अपूर्व शारीरिक शक्ति उन्हें पिताजी से प्राप्त थी। पाठशाला में सहपाठियों को कुश्ती में पछाड़ने की कुशलता भी विरासत के रूप में मिली थी। कुश्ती में विजय प्राप्त करने के लिये वासुदेवसिंह ने अभ्यासवश अपनी खोपड़ी को मज़बूत किया था। जीवन का बोझ उठाने की ताकत कम से कम स्वयं ही मिल गयी।

दिनों तक बिना खाये - पिये वे रह सकते हैं। त्रिलोचन ने इससे संबंधित अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख किया। एक बार पैसे के अभाव में वे बनारस से लखनऊ होकर अपने गाँव की ओर पैदल चले थे। रास्ते पर एक लेखक से मिलन हुआ। दुर्भाग्य से वह दिन एकादशी का था। शास्त्री जी ने भी कहा कि मेरे लिये भी आज एकादशी है। इसलिये बिना खाये, बिना पैसा माँगे वहाँ से चल पड़े।

---

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार

एक दिन और चलकर निस्पाय हो, पास की झाडी में खडे "खरोंच" के पेड से फल तोड़कर भरपेट खाया। मगर वह ज़हरीला फल था। रास्ते में वे गिर गये और कई बार कै हुई और कुछ दिन वहीं के वहीं पडे रहे, बेहोशी दूर हुई तो पास कहीं नल के पास गये और पानी पिया। किसी एक सज्जन ने उन्हें गाँव पहुँचा दिया था [1]।

प्रकृति के विराट प्रांगण में अपने को डुबोने में वे विशेष आनन्द का अनुभव प्राप्त करते थे। सबसे पहले यह प्रवृत्ति घर के वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुई थी। मगर यह एक कारण मात्र है। वास्तव में यह घुमक्कडी वृत्ति उनकी चेतना का एक प्रबल पक्ष है।

छह साल की उम्र में ही गाँव में त्रिलोचनजी किसी साधू से परिचित हो गये। पिताजी ने भी साधू से उनका संपर्क चाहा था [2]। साधू का संपर्क उनमें घुमक्कडी वृत्ति को उजागर करने में सफल सिद्ध हुआ था। साधू स्थान - स्थान पर घूमते फिरते थे। उनके साथ त्रिलोचन भी। सात वर्ष की उम्र में अकेले ही उन्होंने पैदल दिल्ली जाने का इरादा किया था। वे एक दिन रेल के मार्ग से खाली हाथ पैदल चल पडे। रास्ते में जो भी मिला, खाया और यात्रा जारी रखी।

साधू के साथ घूमने की प्रवृत्ति से उन्हें अपने ज्ञान का विकास करने का मौका प्राप्त हुआ था। हिमालय के आसपास घूमते समय एक बार उन्हें किसी तीक्ष्ण गंध का अनुभव हुआ। तब साधू ने उन्हें बता दिया था कि वह एक फूल से निकलती गंध है जिसे ज्यादा सूँघने पर

---

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार.
2. "बचपन ही में उनके पिता ने उन्हें किसी संकल्प के कारण, स्वामीजी की सेवा में सौंप दिया था। और वह उनके शिष्य बने हुए आसाम से पंजाब तक कई बरस तक घूमे थे, - - - वन, पर्वत, देहात" स्थापना - 7 - पृष्ठ 88. "मेरे कुछ आधुनिक कवि" - शमशेर

बेहोश हो सकता है। इस तीक्ष्ण गंध को अरघान कहा जाता है। इसी शीर्षक पर त्रिलोचन की एक कृति बाद में निकली है।

जहाँ कहीं भी वे घूमते, प्रकृति के कण - कण में रम जाते थे। प्रकृति के रोए - रेशे से गाढ़ा संबंध जोडते थे। यहाँ तक कि पेड - पौधों को उनकी छाया से वे पहचानते थे। एक बार वे उडीसा में घूम रहे थे , उन्हें लगा कि पहाड चादर बिछाकर सोया पडा है क्योंकि वहाँ मिट्टी की परत काफी पतली थी। इसपर उनकी एक क्षणिका बनी है - - -

"जहाँ तहाँ दूसे हैं
मिट्टी की चादर ताने
पहाड सोया है" [1]।

घुमन्तु स्वभाव ने उन्हें सौन्दर्य का उपासक बना दिया। प्रकृति के साथ एक अटूट संबंध इसी दौरान विकसित हुआ है। लेकिन यह संबंध एक वायवीय मोह का परिणाम नहीं था। सौन्दर्य की चेतना उनमें उत्तरोत्तर विकसित हो रही थी। जीवन को व्यापकता ने उन्हें जो दृष्टि दी, कठिनाइयों और मजबूरियों ने उन्हें जिस कदर कठोर और कर्कश बना दिया उनको सौन्दर्य चेतना को भी परिष्कृत किया है। वह एक भावुक कवि के आवेगों की अभिव्यक्ति नहीं। वह जीवन की ही अभिव्यक्ति है। अतः उनकी प्रकृति के प्रति जो अनुराग दृष्टि है, उसका परिपार्श्व व्यापक जीवनानुभव से संबंद्ध है। अतः उनकी प्रकृति - दृष्टि गतिशील जीवन की ही अभिव्यक्ति है।

---

1. "अरघान" - त्रिलोचन - 1983 - पृष्ठ 26.

ज्ञान-पिपासा

त्रिलोचन की घुमक्कडी वृत्ति उनकी अद्भुत ज्ञान - पिपासा से भी उद्भूत है। अनेक भाषाओं का अध्ययन करने में यह भ्रमण सहायक सिद्ध हुआ है। यह ज्ञान पिपासा "त्रिलोचन को काशी में भी दर - दर की ठोकरें खाते रहने और भटकते रहने को निरंतर बाध्य करती रहती है और जहाँ जिस किसी से भी, कुछ पाने की संभावना ज्ञात हो जाय, तो गुडसे चिउटे की तरह, काशी से पटना तक की नहीं, अथवा कहीं की भी दौड लगाने से त्रिलोचन चूकते नहीं" [1]

ज्ञान पिपासा को बुझाने केलिये उन्होंने भारत भर ही नहीं, अफगानिस्तान तक का भ्रमण किया।

कविता का प्रारंभिक स्फुरण

त्रिलोचन के अनुसार उनकी पहली कविता समस्यापूर्ति के रूप में है [2]। बचपन से ही लयबद्ध ढंग से बोलने के वे आदी थे। दादी माँ के मुँह से उन्होंने मीरा, सूर, कबीर, तुलसी आदि के पद सुने थे। छन्द का विधान और स्वर की आलापना आदि से वे खूब परिचित थे। पिताजी को रामचरितमानस और विनयपत्रिका याद थे। ग्रामीणों के संपर्क से कबीर, दादु आदि के दोहे त्रिलोचन ने सुने थे। "भारतवर्ष का इतिहास" उन्होंने विद्यालय जीवन में ही दोहे चौपाइयों में लिखा था।

---

1. स्थापना - 6 - पृष्ठ 72. "त्रिलोचन दृष्टिदोष के चश्मे से" - लक्ष्मीशंकरश्रेष्ठ .
2. साक्षात्कार - जुन - जुलाई 1984 - पृष्ठ 123. त्रिलोचन बातचीत त्रिलोचन और शंभु बादल की -

कविता लिखने की प्रेरणा को वे "स्वतःस्फूर्त" मानते हैं [1]। ननिहाल के एक वृद्द सज्जन ने उन्हें समस्यापूर्ति का पाठ पढाया था। उनके निर्देशानुसार वे कवित्त लिख देते थे। एक बार "वसन्त" विषय पर एक लंबी कविता शास्त्रीजी से लिखवाकर उस सज्जन ने किसी कवि सम्मेलन में अपनी रचना के रूप में उसको प्रस्तुत किया जिसपर उन्हें सौ रुपये का पुरस्कार मिला था। दूसरे लोगों ने भी इसी प्रकार उनसे कविता लिखवायी है और प्रतियोगितामें भाग लिया है, उन्हें भी पुरस्कार मिले हैं।

अठारह वर्ष के होते-होते वे दोस्तपुर, सुलतानपुर आदि स्थानों में कविता सुनाने लगे थे जिनपर उन्हें पुरस्कार मिलता भी था। उस समय की ज्यादातर कविताओं का विषय प्रकृति ही रही। 1941 तक कवि के रूप में उनकी ख्याति फैलने लगी थी, त्रिलोचन स्वयं कहते हैं - "मैं ने नये तेवर कवितायें बरहण (गोरखपुर) में सुनाई जहाँ सराहना हुई 1941 ई के करीब। मेरी कविताओं की प्रशंसा समूह में इससे पहले नहीं होती थी"[2]। इसके पहले ही त्रिलोचन ने आशुकवि के रूप में ख्याति प्राप्त की थी [3]।

शास्त्रीजी का विवाह बारह वर्ष की उम्र में जयमूर्तिजी के साथ हुआ। अपढ़ होने पर भी वह दृढ-चरित्र और सात्विक स्वभाव की है। त्रिलोचनजी के जीवन में पत्नी की प्रेरणा बनी रहती है। शास्त्री जी की मामूली बातों में भी वह ध्यान देती है। कभी - कभी त्रिलोचनजी

---

1. "प्रेरणा कविता की स्वतः स्फूर्ति कहना चाहिए" - त्रिलोचन : बातचीत त्रिलोचन और शंभु बादल की - साक्षात्कार - जून-जुलाई 1984 -पृष्ठ 124.
2. त्रिलोचन और शंभुबादल की बातचीत से -- साक्षात्कार - जून - जुलाई - 1984 - पृष्ठ 124.
3. वही - पृष्ठ 134.

लापरवाही से घर से निकलते हैं और बड़ी देरी से घर लौट आते हैं। कभी - कभी दो एक दिन के बाद ही वे लौट आते हैं। पत्नी सहिष्णुता से मामला निपटा लेती है और उनपर आवश्यक नियंत्रण लगा देती है। बुरे लोगों के संसर्ग से उन्हें रोक भी लेती है। शमशेरजी इस संबंध में कहते हैं "भई, वह घबराते किसी से नहीं, सिवाय सच्ची बात अपनी शास्त्राणीजी के। और दरअसल वही इनको ठीक ठीक समझती भी हैं" [1]। त्रिलोचन इस बात से वाकिफ हैं कि उनकी पत्नी बिना किसी कारण के बिगडती नहीं है। उन्हें यह भी मालूम है कि पत्नी उन्हें सही बात का पता देती है, इसलिए उसका क्रोधित होना अकारण नहीं है।

त्रिलोचनजी अपनी पत्नी का बडा ख्याल रखते हैं और अपनी कविता में स्वयं इसे स्वीकृति भी दी है - - -

"मेरी दुर्बलता को हर कर
नयी शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कर्मक्षेत्र में बढूँ संभलकर
तब से मैं अविरत बढता हूँ
बल देता है प्यारा तुम्हारा" [2]।

अपनी कविताओं में नायिका के रूप में उन्होंने पत्नी की परिकल्पना की है [3]। अनपढ़ होने के कारण वह शास्त्रीजी के लेखन से परिचित न थी।

---

1. "मेरे कुछ आधुनिक कवि" - स्थापना - 7 - पृष्ठ 95. शमशेर.
2. "धरती" - त्रिलोचन - 1977 - पृष्ठ 11.
3. व्यक्तिगत साक्षात्कार से - अक्तूबर - 1986.

वह सिर्फ यह देखती थी कि वे कागज़ पर पूरा लिखते हैं या विस्तृत हाशिया छोडकर लिखते हैं। शास्त्रीजी जब कविता लिखते तो भी इसपर ध्यान रखते थे कि हाशिये पर भी कुछ न कुछ लिखें ताकि पत्नी यह समझे कि कविता तो नहीं लिखी जा रही है [1]। त्रिलोचन के कविता - लेखन के प्रति उनकी पत्नी की उतनी तत्परता नहीं थी।

कभी - कभी त्रिलोचन इस बात पर दुखी होते हैं कि धनाभाव के कारण वे अपनी पत्नी की आशाओं - अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर पाते। कवि ने स्वयं इसपर कविता लिखी - - -

> "बिदा किया तब कहा कि यह जाना वह लाना,
> ग्वैंडे आया, और हाथ दोनों हैं खाली,
> सजी खूब थी हाट, मगर मुश्किल था पाना
> पैसों बिना" [2] - - -

उनके व्यक्तित्व में घरेलू होने का यह जो पक्ष है, वह उनकी सहजता का एक अच्छा उदाहरण है। एक असामान्य कवि की सामान्यता का परिचय ही हमें इसमें से मिल जाता है।

जीवन - निर्वाह के लिये त्रिलोचन को बडी कठिन मेहनत करनी पडी। जीविकोपार्जन के लिये जितना संघर्ष उनको करना पडा उतना शायद ही कोई आधुनिक हिन्दी कवि को करनापडा हो। केदारनाथ सिंह के अनुसार त्रिलोचन मानव-संघर्ष के कवि हैं [3]। मानव संघर्ष का अनुभव-पूत ज्ञान उनकी कविता में जितना भी प्रकट होता है उतना ही उन्होंने स्वयं अनुभव किया है।

---

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार.
2. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन - 1981 - पृष्ठ 42.
3. त्रिलोचन प्रतिनिधि कवितायें भूमिका - पृष्ठ 6 - केदारनाथ सिंह - 1985.

पिताजी की मृत्यु के बाद खेती - बारी में ध्यान देनेवाला घर में कोई भी न था। घुमक्कडी और छन्द - निर्माण में त्रिलोचन की रुचि थी। उन्होंने घरेलू धंधा छोड दिया। कहीं नौकरी की खोज करना सहज ही था। नौकरी की खोज में वे चले, जगह - जगह घूमे। कई नौकरियाँ कीं। किसी भी नौकरी में ज़्यादा समय तक टिके नहीं। काशी, इलाहाबाद, रांची, भोपाल, गुजरात आदि स्थानों में उन्होंने नौकरी की। प्रूफरीडिंग से लेकर सहसंपादन के काम तक, रिक्शावाले के काम से लेकर भीख मांगने तक का काम उन्होंने किया [1]। आज, जनवार्ता, समाज, प्रदीप, चित्ररेखा, हंस, कहानी आदि पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में सह - संपादन का काम शास्त्रीजी ने किया था। 1936 में "चित्ररेखा", 1939 - 41 में "कहानी", 1940 में "हंस" में काम करके यह दिखा दिया कि संपादन कला क्या है [2]। काशी में नौकरी की खोज में चलते चलते उन्हें चने खाकर दिन गुजारना पडा [3]। अंत में "हंस" में प्रूफरीडिंग का काम मिला।

1952 - 53 में गणेशराय नेशनल इंटर कॉलेज, जौनपुर में अंग्रेज़ी के प्रवक्ता के रूप में शास्त्रीजी ने काम किया था [4]। 1970 - 72 में दिल्ली में विदेशी छात्रों को हिन्दी - संस्कृत - उर्दू की शिक्षा देने का काम किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू - विभाग में द्वैभाषिक कोश परियोजना में भी वे प्रवृत्त रहे [5]।

---

1. "भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल" - "उसजनपद का कवि हूँ" 1981 - त्रिलोचन - पृष्ठ 13.
2. स्थापना - 6 - पृष्ठ 83. "शास्त्रीजी मेरी नज़रों में" विश्वनाथ मुखर्जी .
3. व्यक्तिगत साक्षात्कार.
4. परिप्रश्न - अश्विनी - 1985 - पृष्ठ 49 - त्रिलचेन.
5. वही - पृष्ठ 49.

अपने अभावग्रस्त एवं संघर्षपूर्ण जीवन के बारे में त्रिलोचन ने यों संकेत किया है -

"भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल
जिसको समझे था है तो है यह फौलादी,
ठेस-सी लगी मुझे, क्योंकि यह मन था आदी
नहीं, झेल जाता श्रद्धा की चोट अचंचल"[1]

चरित्रगत विशिष्टतायें

कठोर जीवन-सत्य का, क्रूर जीवन-परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उन्होंने कुछ मूल्यों को ऊँचा उठाया है। त्रिलोचन के जीवन की सबसे बड़ी खूबी यहाँ लक्षित होती है। अपने जीवन-मूल्यों को ऊँचा उठाने के प्रयास में उन्हें कष्ट सहना पड़ा, पर उनका हृदय नहीं टूटा। उनके ही शब्दों में -

- - - दुनिया में जिसको
अच्छा नहीं समझते हैं करते हैं, छूछा
पेट काम नहीं करेगा "मुझे आपसे
ऐसी आशा न थी" आप ही कहें, क्या करूँ
खाली पेट भरूँ, कुछ काम करूँ कि चुप मरूँ
क्या अच्छा है जीवन जीवन है प्रताप से,
स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचनों में उतरा था,
यह मनुष्य था, इतने पर भी नहीं मरा था"[2]

उनकी जिजीविषा अजेय है, उनके जीवन में आशा है, विकट परिस्थितियों से जूझने का आत्मबल है।

1. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन - 1981 - पृष्ठ 13.
2. वही.

पेट पालने के लिये किसी का तलुआ चाटना शास्त्रीजी के लिये असंभव है। अपने कार्यालय में पाँच मिनट देरी से पहुँचे तो तुरन्त ही छुट्टी का आवेदन पत्र देकर कहीं चले जाते हैं और कहीं खुले स्थान पर लेटे - लेटे सस्वर काव्य - पाठ करते हैं [1]।

20 मई 1950 की बात है। "आज" के कार्यालय में काम करने के लिये त्रिलोचनजी गये। उनके ही शब्दों में, "यथासमय कार्यालय गया ; माधव ने मुझे दो लेख लिखने के लिए कहा ; मैंने कहा एक तो लिख सकता हूँ, पर एक अंक में दो लेख लिखना मेरे बूते की बात नहीं है। श्री. शंकरशुक्ल ने कहा कि बाध्य करें तब क्या करेंगे। मैं ने कहा, काम छोड दूँगा, बाध्य वे लोग उसी को करेंगे जिसे बाध्य समझेंगे" [2]। सरल प्रकृति के भीतर एक दृढ़चित्तवाला आदमी भी है जो सिर्फ दूसरे के झंडों पर चलनेवाला नहीं है बल्कि अपने विचारों पर बढनेवाला और इन आस्थाओं के लिए जीनेवाला भी है।

उन दिनों की बात है जब शास्त्रीजी का बडा बेटा कॉलेज में लेक्चरर हो गया था और शास्त्री अपनी पत्नी और छोटे बेटे के साथ उसी के घर रहते थे। एक दिन विश्वनाथ मुखर्जी के यहाँ आए और बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि बडे बेटे ने उनसे कुछ कडवी बात कह दी थी। उसी सिलसिले में मुखर्जी कहते हैं - "अभाव दरिद्रता को जीवन का शृंगार बनानेवाले कवि की आत्मा इस पीडा को सहन नहीं कर सकी। चुपचाप पत्नी और छोटे पुत्र को लेकर चले आए"। [3]

---

1. स्थापना - 6 - पृष्ठ 82 - शास्त्रीजी मेरी नज़रों में - विश्वनाथ मुखर्जी .
2. साक्षात्कार - नवंबर - दिसंबर - 1985 - पृष्ठ 52. त्रिलोचन की डायरी - 20 मई 1950.
3. स्थापना - 6 - पृष्ठ 82 - शास्त्रीजी मेरी नज़रों में - विश्वनाथ मुखर्जी

यह तो अवश्य है कि त्रिलोचन ने संघर्षपूर्ण जीवन जिया, लेकिन उनकी कविता में निराशा, आवेग, और क्रान्ति की अतिशयता नहीं है। सहजता, सरलता और आवेगहीनता एवं संयम ही उसकी मुद्रायें हैं। जीवन में भी यह देखा जा सकता है। क्रान्ति की ज्वालामुखी को उन्होंने कहीं अन्दर छिपाकर रखा है। बाहर से वे शान्त और गंभीर लगते हैं। दयनीय जीवन की मुद्रा "दीनता" उनके लिये अपरिचित वस्तु है।

कविता में जीवनानुराग की जीवन्तता है। आगे बढने की ललक और अनियंत्रित इच्छा है। सरलता और सहजता उनके जीवन के मुख्य अंग हैं जो कविता की भी मुख्य भंगिमा है।

विचारदर्शन

विचारदृष्टि की हैसियत से त्रिलोचन शास्त्री मार्क्सवादी - लेनिनवादी हैं।[1] वे वामपंथी विचार धारा के कायल हैं। लेकिन कभी भी वे पार्टी के सदस्य न रहे। भारतीय साम्यवादी दल के कार्यक्रमों और गतिविधियों में तत्पर थे। इतना ही नहीं, भारतीय क्रान्तिकारियों के प्रति भी वे तत्पर रहे। लेकिन 1942 के भारत - छोडो आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया था और गिरफ्तार भी किये गये थे। मगर इसके नाम पर स्वतंत्रता - संग्रामियों की पेंशन के लिये आवेदन पत्र नहीं भरा था [2]।

त्रिलोचनजी भले ही मार्क्सवादी - लेनिनवादी हैं, मगर यह मानते हैं कि मनुष्य सिद्धांत के लिये नहीं, सिद्धांत मनुष्य के लिये है। मनुष्य को केन्द्र में रखकर सिद्धांत - निरूपण और निर्धारण करना है।

---

1. साक्षात्कार - जून - जुलाई - 1984 - पृष्ठ 128.
   बातचीत त्रिलोचन और शम्भूबादल की .

2. व्यक्तिगत साक्षात्कार.

उनके अनुसार दो-एक आदमी को मारने से सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता [1]। इसके लिये जनता में सामाजिक अवबोध की सृष्टि करना आवश्यक है। उनको साक्षर बनाना अनिवार्य है। जनता को क्रान्ति के लिये तैयार करना है तो उनके बीच रहना ज़रूरी है। उनके साथ गिरफ्तार होना है और उनके साथ मरना भी अनिवार्य है। उनके अनुसार क्रान्ति ऐय्याशी नहीं है।

त्रिलोचन सामाजिक प्रतिबद्धता को माननेवाले रचनाकार हैं। समाजकी जीवन - प्रक्रिया पर दृष्टि डालनेवाले रचनाकार समाज की हर आवाज़ को सुनता है और अपनी रचनाओं में उसे शब्द देते हैं। समाज के आर्थिक द्वन्द्व, नर-नारी-संबंध, जातिगत स्थिति आदि के संबंध में अपनी चिन्तन - प्रक्रिया और अनुभव के आधार पर निरूपण करते हैं। समाज की स्थिति को ज्यों का त्यों बनाये रखने की इच्छा रखनेवाले त्रिलोचन - जैसे रचनाकारों को बुरी नज़र से देखते हैं, और उनकी रचनाओं की उपेक्षा - सी करते हैं। सामाजिक स्थिति की दुहाई देनेवाले रचनाकारों का अनुमोदन भी होता है। इन परिस्थितियों में ऐसे "रचनाकार ही उभर सकते हैं जब उसमें सामाजिक सत्य के प्रति आग्रह और अपनी रचना के प्रति आत्मविश्वास हो" [2]। त्रिलोचन ऐसे रचनाकारों में से एक हैं जो नीति, धर्म, समाज, राजनीति, कर्तव्य, औचित्य और परंपरा को सामाजिक सत्य के आधार पर निरूपण करते हैं और इसी वजह से विरोध के पात्र बन जाते हैं। वे मानते हैं - "वे लेखक जो समाज में उठनेवाले प्रश्नों को सुनते हैं और जीवन के वेग-बल के साथ रचना में रखते हैं - - - रचना के विकास में अवश्य योगदान करते हैं [3]।

---

1. साक्षात्कार - जून - जुलाई - 1984 - पृष्ठ 128 त्रिलोचन "बातचीत त्रिलोचन और शंभुबादल की".
2. "कल्पना" - अगस्त - सितंबर - 1969 - पृष्ठ 56. "सामाजिक दायित्व"-त्रिलोचन शास्त्री.
3. वही - पृष्ठ 57.

साहित्यक मान्यतायें

वामपंथी विचार-धारा के पक्षधर होते हुए भी त्रिलोचन मानते हैं कि "संपूर्ण जीवन ही कविता का विषय है जिसके लिये सीमित दृष्टि और सीमित जीवन का अंकन विविधता एवं संपूर्णता के लिये घातक है "[1]। उदाहरण के लिए, नर-नारी प्रेम जीवन का एक अंग ही है जिसका अंकन रचनाकार के लिये परम आवश्यक है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि कोई रचनाकार या कवि सिर्फ प्रेम या शृंगार को अपनी कविता का माध्यम बनाये, उसे स्वस्थ कोटि का कवि मानने को शास्त्रीजी तैयार नहीं हैं।

कविता में प्रगतिवादी दृष्टि का समर्थक होते हुए भी वे मानते हैं कि प्रगतिवाद को कविता का आधार बनाना ही चाहिए, लेकिन वह अन्तर्भुक्त हो, आरोपित दृष्टि न हो [2]। कविता को शोषण और परतंत्रता का विरोधी होना भी उनके अनुसार अनिवार्य है और कवि को मानव जीवन के ऐतिहासिक अभिशापों के विरुद्ध मुक्ति का संघर्ष जारी रखना चाहिए।

कवि की भाषा के संबंध में उनकी मान्यता है कि उसे "सरल और बोधगम्य होना चाहिए ताकि कवि का अभिप्रेत दूसरों तक पहुँच सकें [3]।

---

1. जागृति - मई - 1983 - पृष्ठ 9. त्रिलोचन कवि से साक्षात्कार डॉ. रत्नलाल शर्मा का.
2. वही
3. वही

उनके अनुसार कविता जीवन के साथ गहनता और अन्तरंगता में जुड़ी रहती है। जीवन-संबद्धता को नकारकर कविता में रूपात्मक प्रयोग की गुंजाइश का वे विरोध करते हैं। त्रिलोचन खुले वातावरण के विद्यार्थी रहे हैं। बाहरी घटनाओं की अपेक्षा जीवन में चुपचाप घटित होनेवाली घटनायें ही उन्हें ज़्यादा प्रभावित करती हैं। यथार्थ परक जीवन की आत्मपरक अभिव्यंजना ही उनकी कला का वैशिष्ट्य है। "त्रिलोचन की कला औरों की कला से भिन्न है। उनकी कला में यथार्थपरकता, आत्मपरकता तक पहुँचकर भी, वहाँ विलुप्त नहीं हो जाती" [1]। फिर भी कुछ बाहरी घटनाओं का जो प्रभाव उन पर पड़ा जिस को वे स्वीकार करते हैं। 1934 का भूकंप जिससे मुज़फ्फरपुर में बड़ी बरबादी हुई थी, क्वेटा के भूकंप ने भी उन्हें प्रभावित किया था। बंगाल का अकाल अपने समय की सबसे खतरनाक घटना थी जो 1943 में हुई थी। इसका गहरा असर उनपर पड़ा था [2]। वे मानते हैं कि प्रस्तुत अकाल का मुख्य कारण पूँजीपतियों की मुनाफ़ाखोरी था, शराब के विष से हज़ारों लोग मरते हैं, फिर भी दूकानदार को दंडित नहीं किया जाता, इसपर त्रिलोचन जी बहुत ही क्षुब्ध रहे।

<u>प्रगतिशील आन्दोलन का प्रभाव</u>

बनारस की साहित्यक और राजनीतिक भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। सरस्वती प्रेस और "हँस", "आज" आदि पत्रिकायें वहाँ के साहित्यक विकास और प्रगति के लिये प्रयत्नशील रहीं। जब से त्रिलोचन शास्त्री

---

1. विचारबोध - केदारनाथ अग्रवाल - 1980 - पृष्ठ 159.
2. साक्षात्कार - जून - जुलाई - 1984 - पृष्ठ 124. त्रिलोचन "बातचीत त्रिलोचन और शंभू बादल की"

बनारस में नौकरी की खोज में और संस्कृत के अध्ययन के लिये आये और उपर्युक्त संस्थाओं में काम करने लगे, तबसे उनपर वहाँ की साहित्यक गतिविधियों का प्रभाव पड़ने लगा।

1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का आयोजन हुआ तो बनारस की भूमिका बहुत ही गौरवान्वित रही। प्रेमचन्द प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष थे। उनके द्वारा प्रगतिशील आन्दोलन में बनारस का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो रहा था। बनारस के युवा लेखक जो प्रेमचन्द के संपर्क में थे, सब प्रगतिशील आन्दोलन में शामिल हुए। प्रेमचन्द के नेतृत्व में युवक साहित्यकार देश के राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों को दृष्टि में रखकर जन संघर्षों को आधार बनाकर लिखने में प्रवृत्त होने लगे [1]।

बनारस में कई प्रकार के साहित्यकार लेखन-कार्य में निरत थे। छायावादी और किसान - मज़दूर के पक्ष में लिखनेवाले सब एक ही जगह इकट्ठे होते थे और रचनायें प्रस्तुत करते और बहस में भाग लेते थे। उस समय बनारस में प्रसाद-परिषद् भी थी जो शुद्ध साहित्य के पक्ष में कार्य करती थी। प्रगतिशील लेखक संघ में अधिकतर युवा लेखक थे, उनमें मार्क्सवादी गाँधीवादी और समाजवादी थे। आगे चलकर गैर-मार्क्सवादी संगठन से अलग हुए।

उस समय "आज" और "हंस" बनारस की दो प्रमुख पत्रिकायें थीं। "आज" राजनीतिक मासिक पत्रिका थी। "हंस" प्रगतिशील आन्दोलन को प्रोत्साहन दे रही थी। शिवदानसिंह चौहान सरस्वती प्रेस में काम करते थे और वे प्रगतिशील लेखक संघ के महत्वपूर्ण लोगों में एक थे। 1940 में वे "हंस" के संपादक होकर आए। उन्होंने "विशाल-भारत"

---

1. आलोचना - अप्रैल - जून - 1986 - पृष्ठ 72.
   त्रिलोचन शास्त्री से वीरेन्द्रमोहन की बातचीत

में प्रगतिशील साहित्य के बारे में एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया था। "हंस" को उन्होंने अन्तर्प्रान्तीय साहित्य का मुखपत्र घोषित किया [1]।

इसप्रकार बनारस प्रगतिशील आन्दोलन के आरंभ से ही साहित्यक, राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। वहीं रहकर "हंस" और "आज" से संबद्ध रहकर, प्रगतिशील आन्दोलन एवं प्रगतिशील लेखक संघ से जुटकर त्रिलोचन का काव्य-व्यक्तित्व विकसित हुआ। बनारस को साहित्यक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने उनके कवि-व्यक्तित्व को रूप दिया। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - "मैं प्रारंभ से ही प्रगतिशील लेखक संघ की बनारस इकाई का सदस्य रहा। मैंने "हंस", "आज" तथा दूसरी संस्थाओं में काम किया। महीने में एक गोष्ठी तो संगठन की ज़रूर होती थी, कभी-कभी दो हो जाती थी। दौड-धूप मैं ही कर सकता था। जोडने का काम मैं करता था। मैं लेखक के रूप में भी सक्रिय रहा और संगठन में आनेवाले लोगों से बराबर संपर्क रखता था। मैं गोष्ठियों में बराबर अपनी रचनाओं का पाठ करता था। प्रगतिवाद से संबंधित लेख भी छापे। बहुत से आर.एस.एस. के लोग मेरे संपर्क में आए और "प्रोग्रसीव हुए" - [2]।

त्रिलोचन की रचना-प्रक्रिया

त्रिलोचन रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से उन कवियों में से नहीं हैं जो बैठे-बैठे कविता को बरबस लाते हैं और लिपिबद्ध करके छोड़ते हैं।

---

1. आलोचना - अप्रैल - जून - 1986 - पृष्ठ 73. त्रिलोचन शास्त्री से वीरेन्द्र मोहन की बातचीत से
2. आलोचना - 77 - पृष्ठ 75. त्रिलोचन

स्वयं कवि इस संबंध में यों कहते हैं – "मैं लिखने के लिये नहीं बैठता, कविता चलते-फिरते सोच लेता हूँ। जब यह बन जाती है तो कहीं भी बैठकर लिख लेता हूँ [1]। अन्यत्र कविता के स्वयंस्फूर्त होने की चर्चा स्वयं त्रिलोचन ने की है। इस सिलसिले में त्रिलोचन को रचना-प्रक्रिया से संबंधित विष्णु चन्द्र शर्मा की राय भी ध्यातव्य लगती है। त्रिलोचन की 3 जनवरी 1951 की डायरी का प्रसंग उठाते हुए शर्माजी बताते हैं कि उनको रचना की मानसिकता अजब और असामान्य है। 3 जनवरी 1951 के दिन डायरी में यों लिखित है – "सबेरे उठा तो नशे का दौर था। ज़रा देर को डगमगाती हुई स्मृति उठती थी और फिर बेकाबू गिर पडती थी। नहाने गया। बाद को नामवर ने बताया कि उनसे विलक्षण बातें करता रहा जैसे मैं जानता हूँ आप नामवरसिंह हैं ---- पिछली रात नशे के जोम में अजब-अजब सपना सा अथवा चित्र देखता रहा। चित्रमय थी पूर्णतया पिछली रात। कभी लगता, मैं मर गया हूँ और लोग कंधों पर लिए जा रहे हैं, कभी देवताओं की मण्डली में और कभी ऐतिहासिक महापुरुषों से मिलता जुलता ये वे बातें करता, सारे दिन की बस दो ही तो बातें मुझे याद है [2]। प्रस्तुत डायरी के पृष्ठों के आधार पर विष्णुचन्द्र शर्मा कहते हैं – "त्रिलोचन की डायरी का यह एक दिन, वास्तव में त्रिलोचन की कविता को मानसिकता का एक आधार है" [3]। कविता रचना के दौरान त्रिलोचन बिलकुल असामान्य और विलक्षण अवस्थामें पहुँच जाते हैं और रचना के उस विशेष क्षण के समाप्त होते ही वे सामान्य अवस्था में लौट आते हैं – इसका प्रमाण पेश

---

1. साक्षात्कार जून – जुलाई – 1984 – पृष्ठ 125.
   त्रिलोचन और शंभू बादल की बातचीत   त्रिलोचन .
2. स्थापना – 6 – जुलाई – 1970 – पृष्ठ 53-54.
   त्रिलोचन की डायरी के कुछ पन्ने .
3. "धरती" – 6 – पृष्ठ 45 . कवि त्रिलोचन की प्रयोजनशीलता
   किसान चेतना की कविता या क्रान्ति – विष्णुचन्द्रशर्मा

करते हुए शर्माजी बताते हैं - "त्रिलोचन कविता रीतिवाद के कवि की तरह अभ्यास के तौर पर नहीं लिखते हैं। 1950 से मैं ने त्रिलोचन को देखा है - कविता लिखने का एक दौर - नशे के दौर-सा आता है, उस दौर में वह नशे के जोर में साथ रहते हुए भी अजब अजब से लगने लगते हैं। ज़रा देर को अपने "वर्तमान" से "गुम" हो जाते। कविता लिखकर वह फिर वापस "वर्तमान" में लौट आते। वापस लौटते समय "स्मृति" का वह सपना-सा या चित्र, उनके भीतर उठता-गिरता रहता है। कविता रचने की प्रक्रिया उन्हें कुछ देर को बेकाबू अपने ही भीतर बना देती है" [1]।

अतः त्रिलोचन के सृजन की मानसिकता के दो स्पष्ट पक्ष सामने आते हैं। त्रिलोचन का कवि पूर्णतः अपने में विलीन होता है, पुनः उस विलीन अवस्था में से वे उभर आते हैं और ठोस वर्तमान में आ जाते हैं। यह क्षण रचना क्रम के आभ्यन्तरीकरण का है तथा उसकी अभिव्यक्ति का भी। साधना की सिद्धि अवस्था की प्रतीति इसमें से प्राप्त होती है। "कवि का अर्थ और धर्म त्रिलोचन के निकट भी वही है, जो वैदिक ऋषियों ने समझा था। सृष्टा। सृष्टि कवि का धर्म। और यह धर्म एक तपस्या" [2]।

जीवन की सामान्य गतिविधियों के प्रति अगंभीर दीखनेवाले त्रिलोचन के लिये कविता की रचना एकदम गंभीर, उदात्त और साधनातुल्य है।

---

1. "धरती" - 6 - पृष्ठ 45. कवित्रिलोचन की प्रयोजनशीलता किसान चेतना की कविता या क्रान्ति - विष्णुचन्द्र शर्मा
2. स्थापना - 7 - सितंबर - 1970 - पृष्ठ 90. मेरे कुछ आधुनिक कवि - शमशेर बहादुर सिंह

त्रिलोचन की कविता-यात्रा

अवध की, कविताओं के लिये उपजाऊ मिट्टी, चिरानीपट्टी की रमणीय प्रकृति, चौकड़ी भरते हिरणों, पंख फैलाकर नाचनेवाले मोरों की भूमि, अपने प्रियजनों के नाम त्रिलोचन से पत्र लिखवाने वाली लड़कियाँ और युवतियाँ, वहाँ की लोक-कथायें और सहज-सरल लोक जीवन, लय-तालयुक्त परिवेश है। इन सबने त्रिलोचन के कवित्व का बीज-रूप उगाया था। बचपन से लेकर छन्द निर्माण की प्रवृत्ति उनमें आ गई थी। इसलिये उनके कवि-व्यक्तित्व में ग्राम-प्रान्तर की पूरी स्वच्छन्दता समा गई थी। इसका उत्तरोत्तर विकास और समस्त संभावनायें उनकी कविताओं में देखने को मिलती हैं।

काशी में आकर त्रिलोचन का कवि रूप में कायाकल्प ही हुआ होगा। जीविकोपार्जन ही मुख्य लक्ष्य था। पर उन्होंने हमेशा अपनी आँखें और कान खोल रखे थे। इतना ही नहीं, वहाँ का साहित्यक, राजनीतिक परिवेश इतना समृद्ध और प्रभावशाली रहा कि शास्त्रीजी का कवि-व्यक्तित्व इससे बढ़ पाया और कविता-रचना की धारा ही फूट निकली। "वे (त्रिलोचन) इसी काशी की सृष्टि हैं। अच्छा हुआ जो वे चिरानीपट्टी से चलकर इलाहाबाद नहीं गये। वहाँ जाते तो वे अधिक-से-अधिक शमशेर हुए होते। या शमशेर जैसे। आधुनिक कवि। प्रयोगशील कवि। प्रगतिशील भी। काशी में त्रिलोचन सुखी न थे। - - - लेकिन उनके मन में जैसे एक और काशी थी। वही उन्हें अपनी ज़मीन से जोड़े रही। काशी त्रिलोचन के लिये वैसे ही थी जैसे गाँधीजी के लिये भारत का गाँव।- - - यही गाँव गाँधीजी की ताकत था। - - -

कविता की दुनिया में त्रिलोचन के लिए काशी का बहुत कुछ यही महत्व है" [1]।

त्रिलोचनजी ने 1940 - 80 के बीच में बहुत कुछ लिखा है, मगर प्रकाशन हेतु दिक्कतों के कारण हो या धनाभाव के कारण से, बहुत-सी रचनायें प्रकाश में आने से रह गयी हैं। त्रिलोचन के अनुसार "बहुत से खंडकाव्य मित्रों के पास पडे हैं, जिनके पते भी नहीं जानता, इसके अतिरिक्त दो सौ कहानियाँ लिखी हैं, ये पत्र-पत्रिकाओं में छपी हैं, कहानीकार के रूप में मेरी चर्चा होती थी, मेरे पास पाँच नाटक भी लिखे पडे हैं - - - पाँच एकांकी भी लिखे पडे हैं। "नगईमहरा" का एक ही अध्याय "ताप के ताए हुए दिन" में प्रकाशित हुआ हैं - - - यह कविता कुल पाँच अध्यायों में है। चार अध्याय अभी कच्चे रूप में अनफिनिश्ड् पडे हैं। मैंने बाल-साहित्य भी काफ़ी लिखा है" [2]।

शास्त्रीजी की पहली प्रकशित रचना "धरती" है जो 1945 में छपगयी, मगर इसका रचनाकाल बताया नहीं गया है। जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार, "1935-43 तक इसकी रचना हुई और कवि की आयु 18-26 तक रही होगी। रचनाकाल सर्वथा असंदिग्ध नहीं" [3] "गुलाब और बुलबुल उनकी दूसरी प्रकाशित रचना है जो 1956 में छप गयी और तीसरी रचना "दिगन्त" जिसका प्रकाशन - वर्ष 1957 है, दोनों का रचनाकाल 55 - 56 है, लेकिन "दिगन्त" "गुलाब और बुलबुल के कुछ ही महीने पूर्व लिखी गयी थी, कवि की आयु 38 - 39 रही होगी।

---

1. आलोचना - जुलाई - सितंबर - 1987 - पृष्ठ 95 .
   संपादकीय-एक नया काव्यशास्त्र त्रिलोचन के लिये - नामवरसिंह
2. स्मारिका - महत्व त्रिलोचन - 5-6 जून - 1982 इन्दौर - पृष्ठ 7
   त्रिलोचन जीसे दिविक रमेश की बातचीत कुछ अंश
3. त्रिलोचन की कविता यात्रा - जीवन प्रकाश जोशी - 1983 - पृष्ठ 8 .

"शब्द" 1980 में छपगयी जिसका रचनाकाल 1960 जनवरी से अप्रैल तक है जब कि कवि की आयु 45 वर्ष की रही थी। "ताप के तापे हुए दिन", "उस जनपद का कवि हूँ", "अरघान," "तुम्हें सौंपता हूँ", अनकहनी भी कुछ कहनी है, "फूल नाम है एक" आदि रचनाओं का प्रकाशन क्रमशः 1980, 1981, 1983, 1985, 1985 और 1986 में हुआ। इनमें संकलित अधिकांश कविताओं का रचनाकाल - 1950-1960 के बीच का समय माना जा सकता है। त्रिलोचन का एक कहानी-संग्रह "देशकाल" 1986 में निकला है और एक काव्य-संग्रह "सबका- अपना आकाश" 1987 में प्रकाशित हुआ है।

त्रिलोचन की अधिकतर रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर जीवन काल के लंबे अन्तराल के बाद छप जाने के कारण प्रत्येक रचना के रचनाकाल का ठीकठीक पता नहीं चल रहा है। जब से कवि पुनः चर्चित होने लगे तब से प्रकाशक आगे बढे और रचनायें छपने लगीं जो भी मिलीं, छप गईं। शास्त्रीजी स्वयं कहते हैं -"मैंने अपनी कविताओं की कोई फाइल छपने पर नहीं बनाई, जिन पत्रों में कवितायें छपीं, वे बहुधा बन्द हो चुके हैं। किसी के पास किसी पत्र की पूरी फाइल नहीं मिलती"[1]।

इससे स्पष्ट है कि कालक्रम के अनुसार त्रिलोचन की काव्य-यात्रा के आयाम के विविध सोपानों को निश्चित करना कठिन है। फिर भी कहा जा सकता है कि 1940 से लेकर 1980 तक उन्होंने जो भी लिखा उनमें से कुछ रचनायें अब पुस्तकाकार में हमारे सामने आयी हैं, आगे भी रचनायें आ रही हैं। कुछ और रचनाओं के आने की संभावना है।

---

1. "तुम्हें सौंपता हूँ" - "प्रस्थान" में से - पृष्ठ ।
   त्रिलोचन - 8-6-1984 ॰

त्रिलोचन की कविताओं का आस्वादन जैसे कविता की समग्रता में ही किया जा सकता है वैसे करीब - करीब 50 वर्ष के अन्तराल को उनकी सभी रचनाओं का रचना-काल माना जा सकता है। कवि के व्यक्ति-जीवन के विविध आरोह-अवरोह के आधार पर उससे निसृत, विकसित कवि जीवन का मूल्यांकन किया जा सकता है। उनकी किसी भी रचना को किसी समय-विशेष की उपज न मानकर काल बोध की समग्रता में लिया जाना चाहिये।

कालिदास, तुलसी, कबीर, निराला की जातीय संस्कृति की परंपरा में त्रिलोचन शास्त्री भी एक मज़बूत कड़ी है। अतः उनकी कविताओं के अध्ययन के लिए गहन आस्वादन - क्षमता अपेक्षित है।

अध्याय तीन

त्रिलोचन के काव्य में प्रगतिशील चेतना

अध्याय तीन

त्रिलोचन के काव्य में प्रगतिशील चेतना

त्रिलोचन की कविताओं में प्रगतिशीलता की अपनी विशेष पहचान है क्यों कि उनकी कविता के केन्द्र में आज का मनुष्य है। साथ ही नई जागृति से उत्पन्न उत्साह उनकी कविताओं की ऊर्जा है। उनकी प्रारंभिक कविताएँ प्रगतिशील रही हैं। परवर्ती कविताओं में प्रगतिशीलता को दृष्टि से मूलभूत अंतर दृष्टिगत न होते हुए भी व्यापक बनाने का सृजनात्मक उपक्रम उनमें देखा जा सकता है।

त्रिलोचन की पहली प्रकाशित कृति "धरती" है जो 1945 में छप गयी। उस में ज़्यादातर कवितायें उद्बोधनात्मक हैं। कुछ कवितायें

मार्क्सवादी प्रचारात्मक स्वरूप धारण करती भी हैं।[1] ये प्रगतिवादी दौर की रचनायें हैं। इनमें प्रगतिवादी दौर की प्रवृत्तियों से बढकर, तद्युगीन मानसिकता से बढ़कर, त्रिलोचन के तनावों की भी अभिव्यक्ति भी हुई है जिसका मुख्य हेतु उनका अपना जीवन ही है। त्रिलोचन का जीवन संघर्षपूर्ण था। इसलिये उन्होंने अपने जीवन से कवितायें गढ़ी हैं जो किसी भी दृष्टि से आरोपित न होकर भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति रही। "त्रिलोचन की कविताओं में उभरनेवाला अभाव, वैषम्य, संघर्ष उनके जीवनानुभव से फूटा है।"[2] स्वानुभूत जीवन - संघर्ष की तीव्रता से उनकी कविता फूट निकली है। इस प्रसंग में मुक्तिबोध का कथन दृष्टव्य है। "त्रिलोचन की प्रगतिशीलता अट्टहास-पूर्ण आन्तरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आई, वरन् कवि के अपने जीवन संघर्ष से मँज-घिसकर तैयार हुई है।"[3]

"मुझमें जीवन की लय जागी
मैं धरती का हूँ अनुरागी
जड़ी भूत करती थी मुझको
वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी"[4]

(मुझे जगत-जीवन का प्रेमी)

प्रगतिशीलता उनका जीवन-दर्शन है। जड-जीवन को प्रगति की ऊर्जा और स्फूर्ति देकर चेतन बनाने के प्रति वे कटिबद्ध दीखते हैं। सामाजिक लक्ष्य के प्रति वे ईमानदार हैं और उनमें गहरा आत्मविश्वास भी है। वे समय-समय पर आत्मालोचन भी करते हैं कि अपनी प्रगतिशीलता में कोई कमी तो नहीं आई है -

---

1. "धरती" की कुछ कविताओं में ज़रूर साम्यवादी उथला - उधारू स्वर है।" "त्रिलोचन की कविता - यात्रा"- डा. जीवन प्रकाश जोशी - 1983, पृष्ठ 11.
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - द्वितीय खंड - चतुर्दश भाग - डा. रामदरश मिश्र - 1951, पृष्ठ 84.
3. मुक्तिबोध रचनावली - 5(सं. - नेमिचन्द्र जैन)- 1980, पृष्ठ 375.
4. "धरती"- पृष्ठ 11.

"पथ पर धूल उड़ा करती है
वह भी आखिर कुछ करती है
पर मैं - मेरे मन, तुम बोलो - क्या करता हूँ
क्या मेरा जीवन जीवन है"[1]

(कभी कभी सोचा करता हूँ)

त्रिलोचन की सामाजिक प्रतिबद्धता कवि की नैतिक भावना से उत्पन्न है। "कवि में नैतिक भावना प्रबल है, नैतिक भावना से वे अधिक मानवीय हो गये हैं, मानवीय गुण के कारण कवि अधिक समाजवादी हो गये हैं।"[2] इसी नैतिक भावना के कारण समाजवादी समाज की सृष्टि के लिये वे अपने को कभी कभी उत्साहित करते हैं और अपने प्रति आक्रोश भी करते हैं -

"कोई काम नहीं कर पाया
कभी किसी के काम न आया
जगती से अन्न - जल - पवन लेता रहता हूँ
क्या मेरा जीवन जीवन है"[3]

(कभी कभी सोचा करता हूँ)

प्रगतिवादी दौर की कविताओं के अध्ययन से त्रिलोचन की सामाजिक प्रतिबद्धता की पहचान होती है। उनकी प्रगतिशील चेतना के संबंध में श्री. रामेश्वरशर्मा का यह कथन धातव्य है "त्रिलोचन के काव्य की चेतना सही माने में भारतीय जाति की चेतना है, आरोपित क्रान्ति की लफ़्फ़ाज़ी नहीं। वह यथार्थवादी है, हवा में पेंग नहीं भरता।"[4]

---

1. "धरती" - पृष्ठ 54.
2. मुक्तिबोध रचनावली - 5 - मुक्तिबोध - 1980, पृष्ठ 376.
3. "धरती" - पृष्ठ 54.
4. "राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - रामेश्वरशर्मा - 1953, पृष्ठ 124.

हिन्दी कविता में अनेक दौर और नये नये परिवर्तन आते रहे हैं। फिर भी हिन्दी कविता में प्रगतिशील चेतना का उत्तरोत्तर विकास ही हुआ है। त्रिलोचन जैसे प्रारंभिक प्रगतिवादी कवियों ने इस चेतना को अपने जीवन दर्शन का एक अभिन्न अंग बना दिया है। त्रिलोचन को विशिष्ट कवि-दृष्टि में मनुष्य की जो खास पहचान है उसकी अन्तर्धारा प्रगति चेतना से ही वेगवान है।

सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष त्रिलोचन की कविता की प्रगतिशील चेतना को निरूपित कर रहा है। उनकी दृष्टि में वर्तमान सामाजिक ढाँचा सर्वथा दोषयुक्त है। उसमें परिवर्तन अपेक्षित है। अपेक्षित परिवर्तनों की अभिलाषा उनकी कविता में प्रकट होती है। त्रिलोचन परिवर्तन की अतुल और अप्रतिरोध्य शक्ति पर विश्वास रखते हैं।

"परिवर्तन की शक्ति अतुल है
उसे न बाँध सका है कोई"

(सोच-समझ कर चलना होगा)

उसकी गति को पहचानने और उसके द्वारा अपने मन के विश्व को स्थापित करने का वे आह्वान करते हैं।

"अब तक जो होता आया है
उसमें जन-सम्मान नहीं है
उसमें मानव को मानव के
सुख-दुख का कुछ ध्यान नहीं है"[1]

(सोच-समझ कर चलना होगा)

त्रिलोचन का कवि प्रस्तुत सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तुष्ट है। यह वही व्यवस्था है जो घोर व्यक्तिवाद और पूँजीवाद की जननी है। इस व्यवस्था में मनुष्य का रूप काफी विकृत ही रहता है। इस सामाजिक प्रारूप में पडकर छटपटानेवाले शोषित मानव के जागरण के लिये प्रेरित करते हुए मुक्ति की कामना का संकेत वे अक्सर देते रहते हैं।

"अब कुछ ऐसी हवा चली है
जिससे सुप्त जगत् जागा है
जिससे कम्पित जीर्ण जगत् ने
आज मरण का वर माँगा है"[1]

(सोच-समझ कर चलना होगा)

पूँजीवाद कवि की दृष्टि में मानव-प्रगति के मार्ग में अवरोध है। पूँजीवादी वातावरण जब तक रहेगा तबतक मनुष्य जीवन विकास प्राप्त नहीं कर सकता। पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य का कोई महत्व नहीं है -

"इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है
मूल्य गिर गया है अब मनुष्य का
सिन्धु में बिन्दु का जो स्थान है
वह भी स्थान नहीं है मनुष्य का"[2]

(इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं

मनुष्य की मूल्यहीनता के कारणस्वरूप पूँजीवाद का अन्त करने का सन्देश भी वे देते हैं -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 14.
2. वही - पृष्ठ 98.

"पूँजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का
जीवन का, जन का, समाज का, कला का
बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता
ज्ञान-विज्ञान से किसी प्रकार
कोई कल्याण नहीं हो सकता"[1]

(इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है)

अधिकार-लिप्सा अधिकार के केन्द्रीकरण में परिणत होती है। वह एकाधिकार ही है। सहभागीत्व की संकल्पना को तहस नहस करते हुए पूँजीवाद की यह अमानवीय प्रवृत्ति विकसित होती है। अधिकार का यह एकाधिपत्य सबको, जीवन की सभी दिशाओं को, अपने अधीन में कर देता है। पूँजीवादी सत्ता का चरित्र ऐसा ही होता है -

"एकाधिकार के पंजे में
जीवन के सारे व्यापार
धीरे धीरे अब
समाते चले जा रहे हैं -

अधिकाधिक संख्या में लोग इधर आये दिन
सर्वहारा होते चले जा रहे हैं
और पूँजी खींच खींच करके सब दुनिया की
मुट्ठी भर पूँजीपति पहले से अधिक मोटे
होते चले जा रहे हैं"[2]

(एकाधिकार के पंजे में)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 98. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 97

एक विकराल स्थिति को त्रिलोचन ने सीधे व्यक्त किया है। यह एक सचाई है जिसका सामना जीवन की हर दिशा में सामान्य जनता को करना पडता है। इसमें आह्वान नहीं है बल्कि सच्चाई का सीधा एहसास है।

देश की दुर्दशा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व यह धारणा प्रचलित रही कि गुलामी ही देशी जीवन की सभी विसंगतियों का मूल कारण है। लेकिन स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी देश की दुर्दशा बनी रहती है, इसे देखकर त्रिलोचन अशान्त हो जाते हैं। देश के आज़ाद होने पर भी लोगों की भूख मिटी नहीं, इसपर कवि की प्रतिक्रिया इसप्रकार है -

"हम स्वतंत्र कहाँ अगर खाने को भी मोहताज हैं
एक जठरानल में समझो सब का काल आ ही गया"[1]

इस स्वतंत्र देश में ऐसे भी लोग हैं जिनका कोई ठौर-ठिकाना तक नहीं। उनकी दुर्दशा पर भी कवि की दृष्टि पडी है -

"वे भी जीते हैं जिन्हें ठौर ठिकाना भी नहीं,
राह चलते हैं कहीं पाँव टिकाना भी नहीं"[2]

जो लोग भूख से पीडित हैं वे कला के प्रति उदास रहेंगे, उन्हें संगीत सुनानेवाले कवि से आत्मोपलंभ के रूप में त्रिलोचन का कथन है -

"गीत संगीत उन्हें किस लिए सुनाते हो,
जिन को दो जून कभी मिलता है खाना भी नहीं"[3]

देश की दुर्दशा पर दुखी और असन्तुष्ट कवि अपना तीक्ष्ण रोष प्रकट करते हैं -

---

1. "गुलाब और बुलबुल" - पृष्ठ 98
2. वही - पृष्ठ 73
3. वही

"आपत्काल स्वदेश और जन को जैसा मिला है अभी
वैसा और कभी न था. समय ने क्या-क्या दिखाया नहीं
सारा देश विवर्ण है, विकल है, अत्यंत उद्विग्न है,
लांछा से हतदर्प है, व्यथित है, विक्षुब्ध है, श्रांत है ."[1]

(कवि शमशेर से)

देश में गरीबी सर्वत्र व्याप्त है। इसके दुष्परिणामों के शिकार बने देशवासियों को अपनी योग्यता के अनुसार तरक्की करना असंभव हो गया है। वे समाज में पिछडे रहते हैं। अकिंचनता से उत्पन्न इस विसंगति की ओर कवि दृष्टिपात करते हैं -

"अभी भिखरिया होगा बस बारह-तेरह का
समझ बूझ में कोई देखे बड़ा धनी है
गुण ही गुण दिखते हैं ऐसी सहज बनी है,
बाल चेतना उसकी फूल अनोखा महका

मानो अपनी टहनी पर, सब आसपास की
हरता हुआ अकिंचनता यह तो किसान के
घर का एक दिया है जिसको इस जहान के
किसी एक घर के कोने में कुछ उजास की

रेखाएँ अंकित कर बुझ जाना है अब भी
नहीं समय आया है जब सब बढ़नेवाले
प्रोत्साहन पायें, समाज को गढ़नेवाले
स्वार्थों में डूबे हैं देश जगेगा जब भी."[2]

(भिखरिया)

---

1. चैती - पृष्ठ 28 .
2. दिगन्त - पृष्ठ 24 .

मानव जीवन अभाव और अकिंचनता से इतना ग्रस्त है कि सब पेट की चिन्ता में अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों को भुला बैठे हैं। इस अवस्था पर व्यंग्य के द्वारा त्रिलोचन अपना असन्तोष प्रकट करते हैं -

"यह कबंध युग है - सिर सब का पेट में धँसा
है,
महाराज पेट के सभी मानुष चाकर हैं,
दर्शन, ज्ञान, कला, कौशल, विज्ञान उन्हीं की
टहल बजाया करते हैं." [1]

सामाजिक दुस्थितियों का वर्णन

त्रिलोचन सामाजिकता के कवि हैं। वे सामान्य मनुष्य के भी कवि हैं। इसलिये त्रिलोचन की कविता हमेशा साधारण मनुष्यों के आसपास ही रही है। समाज की पतित अवस्था के प्रति असन्तोष प्रकट करना त्रिलोचन अपना कर्तव्य समझते हैं। वर्तमान समाज की अवस्था विसंगतिपूर्ण है। इसलिये वे उसे उसी रूप में प्रस्तुत कर अपना असन्तोष प्रकट करते हैं -

"ध्वनिग्राहक हूँ मैं. समाज में उठनेवाली
ध्वनियाँ पकड़ लिया करता हूँ,
अगर न हो हरियाली
कहाँ दिखा सकता हूँ ? फिर आँखों पर मेरी
चश्मा हरा नहीं है, यह नवीन ऐयारी
मुझे पसन्द नहीं है." [2]

(ध्वनिग्राहक)

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 103.
2. दिगन्त पृष्ठ 22.

आज सामाजिक जीवन में अच्छाई और ईमानदारी का मूल्य गिर गया है। बेईमानी और बुराई का बोलबाला समाज में व्याप्त है, इससे असन्तुष्ट कवि कहते हैं -

"अच्छाई इन दिनों बुराई के घर पानी
भरती है. क्या ठाट बुराई ने बाँधे हैं,
बड़े बड़े अड़ियल भी हार गये, काँधे हैं
उसके जुए और चलते हैं। जो कुछ ठानी
वही कराया. कहीं किसी ने भौंहें तानी
उसको निबटाया,

अच्छाई के बिगड़े दिन हैं, और बुराई
राजपाट करती है. अब तो रानी चेरी,
चेरी रानी है. सच के आसन पर बैठा
झूठ पुजाता है. केवल हर ओर खुराई
दीख रही है। कभी दिनों की ऐसी फेरी
नहीं हुई थी। जन-मन में भय ही भय पैठा."[1]

झूठ ने हमारे समाज के ऊपर ऐसा एक आवरण डाल दिया है कि किसी को सच्चाई का पता तक नहीं चल रहा है। इस कारण से आज जीवन दिखावटीपन का एक खुला रंगमच सा हो गया है। त्रिलोचन आधुनिक नारी के इस दृष्टिकोण पर भी व्यंग्य करते हैं -

"सुंदर आँखें, विलुलित वेणी और चलावा -
आगे ही देखते हुए, अपनी ही धुन में
बढ़ते जाना, आवश्यक होने पर उन में
मुड़ कर बगल देखने की रुचि पथ की आवा-

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 36.

जाही में, मरजाद बचाना और दिखावा
भी निबाहना देख परख कर, अपने गुन में
और निखरना,

यह भारत की कन्याओं का कठिन काम है"[1]

उनके छोटी – बडी घटनाओं के आधार पर भी त्रिलोचन ने कवितायें लिखी हैं। उनके लिये कोई भी विषय कविता के लिये सार्थक है क्यों कि उनकी दृष्टि उस मनुष्य पर पडती है जो हमारे समाज की दुस्थिति में तडप रहा है। एक वृद्धा की मृत्यु को लेकर लिखी हुई कविता में उसका एक ऐसा पक्ष है जिसको प्रायः अनदेखा किया जाता है।

"बुढ़िया जब मर गई उसे ले जा कर फेंका
अंधे कुएँ में चमारों ने, थोड़ी लकड़ी
नहीं किसी ने दी उस को
हो गए महीनों,
सुना कि बुढ़िया है अब तक जैसी की तैसी
पड़ी कुएँ में. जा कर आँखों देखा. दोनों
की दुर्दशा दिखाई दी
निर्विकारता शव की कहीं देख यदि पाते
धर्मधुरंधर तो संतों का संत बनाते."[2]

दीन-हीनों के प्रति वर्तमान व्यवस्था के रवैये के प्रति कवि की प्रतिक्रिया की तीव्रता का पता प्रस्तुत कविता से मिल जाता है।

---

1. शब्द – पृष्ठ 43.
2. उस जनपद का कवि हूँ – पृष्ठ 96.

पूँजीवादी सभ्यता ने समाज को कनस्यूमर समाज के रूप में परिवर्तित किया हैं। लोगों को बहकाते हुए, ललचाते हुए अपने चँगुल में फँसाना महाजनी सभ्यता का चरित्र है। नैतिक गिरावट का यह प्रसंग भी त्रिलोचन की कविता का विषय है -

"कुछ तुम ने भी सुना है त्रिलोचन की उक्ति है
औरों को खा के जीते हैं जो उन में हम नहीं"[1]

उन जनद्रोहियों में वे व्यापारी भी हैं जो लाभ उठाकर लोगों का सत्यानाश करने पर तुले हुए हैं -

"वे लाभ उठा रहे हैं तो गम क्यों हो किसी को
आखिर उन्होंने कार बार भी बना दिया"[2]

सामाज को लूटनेवाले व्यापारियों का एक और नमूना लेकर त्रिलोचनजी अपने व्यंग्य और रोष का विषय बनाते हैं -"

"झूरी बोला कि बाढ़ क्या आई
लीलने अन्न को सुरसा आई
अब की श्रीनाथ तिवारी का घर
पक्का वन जाने की सुविधा आई"[3]

समाज की इस नैतिक अवनति के प्रति समाज के तथाकथित ठेकेदार आँख मूँदे हुए हैं। जानकारी होने के बावजूद वे नासमझ बने हुए हैं। अपने दायित्वों से कतरानेवाले लोगों के बारे में त्रिलोचन ने कविता लिखी है -

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 118.
2. वही - पृष्ठ 122.
3. वही - पृष्ठ 138.

"विश्व ने हो हमें दिया है क्या
काम अपना कभी किया है क्या
उस के कल्याण में उलझें क्यों हमीं
हम ने ठेका कोई लिया है क्या"[1]

समाज को अवनति का विस्तार इस ढंग का हो गया है कि स्वार्थ और धनलोभ ने मनुष्य और मनुष्य को भी अलग किया है तथा प्रकृति को भी मनुष्य से अलग किया है । जंगलों पेड़ों को काटकर धन कमानेवाले व्यवसायी लोग भी अपने ढंग से मानव जाति का नाश करते रहते हैं। आज वनों को सुन्दर नाम रखकर सम्मानित किया जाता है। लेकिन वन का नाश होता रहता है, केवल वन का नाम बचा है -

"वैसे हम बनराज कहे जाते हैं, बन का
नाम बचा है.
अब काज बूत अपना ईंधन का
नहीं रहा. टहनी टहनी पर अब जन जन का
नाम लिखा है."[2]

आजकल अनुकरण की प्रवृत्ति समाज में इतनी फैल गयी है कि स्वयंस्फूर्त भावनाओं की एकदम कमी हो गयी है। इसको कवि ने अपने व्यंग्य का विषय बनाया है -

"अनुकृति, अनुकृति, अनुकृति स्वस्थ कृतित्व हमारा
अनुकृति में खोया है
कुलकन्याओं की आँखों में आज इशारा
अभिनेत्री की आँखों का है. नव किशोर भी
अभिनेताओं के चेले हैं. नेताओं के
कदम सिखाए चलते हैं."[3]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 143.
2. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 98.
3. वही - पृष्ठ 112.

बार-बार प्रहार करने पर भी "शिष्टता" के नाम पर सहनशील रहनेवालों पर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं -

"बन्धु प्रशंसा की है मैंने सदा गधे की
कितनी सहनशील होता है,

और गधा यह मारें पीटें और सतायें
जितना जी चाहे,
क्या जाने विरोध, कहते हैं इसे शिष्टता"[1]

समाज में चाहे कितनी भी बुराई और बेईमानी हो जाय, उसके प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करना इस प्रकार के "शिष्ट" लोगों के लिये मुश्किल है। यह प्रतिक्रिया - हीनता ही कवि के व्यंग्य का विषय है।

समाज में ऐसे भी लोग हैं जो शिष्टता और नैतिकता का परदा डालकर उसकी आड में नैतिकता के विरुद्ध आचरण करते हैं। त्रिलोचन इस सामाजिक विसंगति के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं -

"परदे की जय बोलो,
परदे में ही नैतिकता का परदा खोलो
कौन देखता है, सुख लूटो आखिर मरना
तो है ही, इससे परदे पर परदा रखना
उत्तम है"[2]

अमीरों का आदर हमेशा से होता रहा है, भलेही कुछ आदर्शवान व्यक्तियों ने धन से बढकर मनुष्य को महत्ता दी हो। लेकिन आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि अमीरी ही सब कुछ है। समाज के मूल्य भी उसके अनुसार बदलने लगे हैं। आज समाज अर्थोपजीवी हो गया है। इस प्रसंग में त्रिलोचन की कुछ कवितायें प्राप्त होती हैं -

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 62.
2. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 18.

"रामनाथ मेहरोत्रा "वसुधा" के सहकारी
संपादक हैं,
कुछ ऐसे ही
रामनाथ के भागे जगे. देखा सहकारी
आधा नर तो आधा नारी है
लेकिन दुनिया पैसे ही
से तुलती है, कौन कहे चाँदी है जिसकी
सीधी करनी पड़ीं मूर्तियाँ किसकी किसकी"[1]

समाज के धनी लोग वेश्याओं पर हज़ारों रुपये खर्च करते हैं। खिलाने पिलाने के लिये भी काफ़ी पैसा खर्च करते हैं, पर कवि - कलाकारों पर खर्च करने में कंजूसी का परिचय देते हैं। महाकवि लाचार होकर उनके सामने सिर झुकाते हैं -

"पुत्र शाह के हुआ, महाकवि गये बुलाए
कहा गया
. सेठजी तो वेश्यायें
बुला रहे हैं, बीस हज़ार का बजट है
घर की सब महिलायें भाँड मंडली पर निछावर
बीस हज़ार करेंगी
कवि सम्मेलन कैसा होगा, कहिए, कहिए
मौन किस लिए है - पैसे का - यही मामला
कुछ गडबड है, फिर भी, सौ सौ का कम होगा,
कहा महाकवि ने झुककर, यह अच्छा होगा".[2]

अमीरी और गरीबी के बीच का फासला बडा ही रहा है। हमारे समाज में इन दो तबकों के बीच की दूरी कम नहीं हुई है।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 34.
2. वही - पृष्ठ 41.

"पद्मविभूषण जो हँसे हँसते रहे
हम जो लहरों में फँसे फँसते रहे
बाघ बूढ़ा व' कड़ा सोने का
लोग दलदल में फँसे फँसते रहे"[1]

ग्रामीणता के कवि त्रिलोचन अपने गाँवों के पतित जीवन पर दुखी और असन्तुष्ट हैं। गाँववाले निरक्षर, अंधविश्वासी हैं। साथ ही साथ आपसी द्वेष और क्षुद्र स्वार्थ के कारण एक दूसरे से कटे हुए रहते हैं। उनमें एकता का अभाव भी है। त्रिलोचन की कविताओं में ऐसे भी प्रसंग मिल जाते हैं -

"हारे खीझे मन से मैंने कभी कहा था,
अगर जन्म लेने में मैं लाचार न होता
मुझे चिरानीपट्टी से कुछ प्यार न होता,
द्वेष आपसी
नहीं घटा है, दौजारेसी बढी पाप सी
है, दिन पर दिन, पूरब-पश्चिम, दक्खिन-उत्तर
छोटे छोटे खेत, बाढ़ मेडों की, अपनी
अपनी चिन्ता, मेल-जेल से काम नहीं,
काट कपट ठाकुरों की बढा
जानेवाला खेवट, क्षुद्र स्वार्थ की झपनी"[2]

सामाजिक जीवन की अलगाव-प्रवृत्ति से खिन्न कवि लोगों को चेतावनी देते हुए कहते हैं -

"भिन्न भिन्न विश्वास विश्व को भिन्न करेगा
किसी न किसी प्रकार। एक विश्वास न होगा
जन जन का विश्वास, कदापि विकास न होगा"[3]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 137.
2. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 68.
3. फूल नाम है एक - पृष्ठ 83.

अलगाव की यह प्रवृत्ति मनुष्य वंश का नाश करादेगी -

"अणु से अणु है यह पृथिवी। पृथ्वी का वासा

देश देश में अलगाहट के भाव जगाता
जीता है। पशुओं चिडियों की अच्छी खासी
कई जातियाँ ख़त्म कर चुका। सत्यानासी
बन कर बढ़ता है,"[1]

त्रिलोचन अन्तत: आस्था के कवि हैं। मनुष्य और उसकी प्रगति में जो निष्ठा है उसको उन्होंने सब कहीं व्यक्त किया है। लेकिन प्रगति का पथ उन्हें प्राय: धूमिल ही दिखाई पडा है। इसलिए उनका कवि मन विद्रोही हो उठता है।

अकर्मण्यता के प्रति क्रोध

जीवन की प्रगति के मार्ग में रोडा अटकानेवाले पूँजीवाद की कुटिल चालों को समझे बिना अकर्मण्यता के गर्त में पडे हुए हिन्दुस्तानियों को बचाया नहीं जा सकता। हिन्दुस्तानियों की अकर्मण्यता का यथार्थ चित्रण त्रिलोचन यों करते हैं -

"हाथ पर हाथ धरे हिन्दुस्तान की जनता बैठी है
कभी कभी सोचती है देखो, राम या अल्लाह
किसके पल्ले बाँधते हैं हम सब को
हिन्दुस्तान ऐसा है
बस जैसा तैसा है।[2]

(आजकल लड़ाई का जमाना है)

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 102.
2. धरती - पृष्ठ 95.

सामान्य व्यंग्य कविता के स्तर से यह कविता इसलिये अलग है कि इसमें हमारी सामाजिक मानसिकता का एक जीवंत संकेत है। कवि का रोष अप्रकट रहकर भी प्रकट है।

महँगाई पर औसत हिन्दुस्तानी दुखी हो जाता है। लेकिन वह अकर्मण्य, भाग्यवादी जन सोचता नहीं है कि महँगाई का क्या कारण है। महँगाई की विषमता के पीछे पूँजीवादी चाल रहती है। इसे अपने भाग्य की बात समझनेवाले हिन्दुस्तानी अंधविश्वासियों की मूर्खता का चित्र त्रिलोच "भोरई केवट" के द्वारा खींचते हैं। भाग्यवादी, गँवार केवट अकर्मण्य मूर्ख हिन्दुस्तानियों का प्रतिनिधि है -

"ऐसा जान पड़ा जैसे भोरई निरुपाय और असहाय
आकण्ठ दुःख के अभाव के समुद्र में पड़ा हुआ
उसकी विकट लहरों के थपेड़े सह रहा था

इस अकारण पीड़ा का भोरई उपचार कौन सा करता
वह तो इसे पूर्व जन्म का प्रसाद कहता था
राष्ट्रों के स्वार्थ और कूटनीति,
पूँजीपतियों की चालें
वह समझे तो कैसे"[1]

(भोरई केवट के घर)

हमारे इतिहास में ऐसे हज़ारों नासमझ भोरई केवटों का योगदान है। नासमझी का फायदा उठाना आसान भी होता है। त्रिलोचन की यह कविता एक ऐतिहासिक सचाई की ओर इशारा करती है।

---

1. धरती - पृष्ठ 96.

नारी समाज के प्रति नया दृष्टिकोण

त्रिलोचन नारीसमाज के प्रति उदार हैं। वे नारी के उत्पीडन के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। नारी को पुरुष की सहयोगी और जीवन संगी ही वे मानते हैं। प्रगतिशील कविता की एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में नारी समाज के प्रति यह उदार दृष्टि मान्य भी है। त्रिलोचन कहते हैं -

"आज नारी सँभल के चलना है
घर में अब मत लुको निकल आओ

साथ निकलेंगे आज नर नारी
लेंगे काँटों का ताज नर नारी
दोनों संगी हैं और सहचर हैं
अब रचेंगे समाज नर नारी"[1]

त्रिलोचन अपनी कविता में स्त्रियों पर विशेष ध्यान देते दिखाई पडते हैं। अतवरिया, चम्पा, सोना, सुकनी आदि पात्र उनकी कविता में विशेष स्थान लिए हुए हैं। त्रिलोचन की "कविता में सबसे अधिक खेतिहर मज़दूर आते हैं और उन खेतिहर मज़दूरों में भी स्त्रियों की जीवन-दशा पर उनका विशेष ध्यान जाता है।"[2] ग्रामीण नारियों को उनके सहज वातावरण उनकी सहज सुन्दरता के साथ चित्रित किया है। यह सहजता उनकी उदारता के कारण अधिक स्पृहणीय भी है।

त्रिलोचन के विरोध, क्रोध और व्यंग्यात्मक उक्तियों में एक अन्वेषण है - एक साधारण मनुष्य का। क्योंकि यही वह साधारण मनुष्य है जिसपर किसी भी प्रकार की दुस्थिति का प्रहार पडता है। त्रिलोचन की कविताओं में चेतावनी के स्वर के होते हुए भी मानवीय आस्था की निजता का स्वर भी

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 138.
2. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 23 - मैनेजर पांडेय.

सर्वत्र विद्यमान है । त्रिलोचन की प्रगतिशीलता का सही सन्दर्भ इसी मानवीय आस्था से जुड़ा हुआ है। वह वायवीय नहीं है, ठोस है। वह काल्पनिक नहीं है, वास्तविक है।

राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण

राजनीति जब मनुष्य के खिलाफ़ रची गई सत्ता की साजिश हो जाती है तब वह अराजकतावादी - साम्राज्यवाद हो जाती है जिसमें से सत्ता का स्वर सुना जा सकता है और सामान्य व्यक्ति को कोई स्थान प्राप्त नहीं होता। यह भी त्रिलोचन के लिये काव्य-विषय है। जीवन से सीधे ढंग से टकराते समय, हमारी राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए कवि की प्रतिक्रिया सार्थक ही है। देश की राजनीतिक स्थिति पर त्रिलोचन जी असन्तुष्ट हैं। इसपर वे पूरी तीक्ष्णता से वार नहीं करते। करारे व्यंग्य के द्वारा वे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं -

"आप देखेंगे सिर धुनेंगे अब
सोच कर कोई पथ चुनेंगे अब
वे समाजवाद के नशे में हैं
आप की बात क्या सुनेंगे अब"[1]

राजनीति की विडंबनाओं पर भी कवि की दृष्टि पडती है -

"जब तक राजनीति है तब तक शस्त्र रहेंगे
और शांति की वार्ता भी चलती जाएगी,
देश देश के कर्ता कोई बात कहेंगे,
देश देश की जनता उस को दुहराएगी.

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 145.

लड़ने वाले या रण का संचालन करने
वाले कहा करेंगे हमें शांति ही प्रिय है,
कोई नहीं कहेगा भूले भी हम मरने
और मारने को हैं, - यों ही रण सक्रिय है."[1]

राजनीति का सबसे बडा विरोधाभास यही है कि शान्ति की चर्चा के साथ युद्ध की तैयारियाँ भी चलती रहती हैं और चलती रहेंगी। राजनीतिक नेता खुल्लमखुल्ला यही कहेंगे कि हम युद्ध थोडे ही करेंगे। त्रिलोचन ने इसपर ही तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

वर्तमान राजनीतिक अवस्था का यथार्थ चित्र खींचते हुए त्रिलोचन रामराज्य का सपना देखनेवाले को सचेत करते हैं -

"भीषण कभी अन्न की, बलात्कार की अनुदिन
बढनेवाली गाथायें, हत्यायें, डाके,
चोरी, रिश्वतखोरी, कोई बुरा न ताके
रामराज्य है
ये जनता के प्रतिनिधि हैं
भूखी, अपमानित, जड जनता के
ये खद्दरधारी प्रतिनिधि हैं, दीन हीन हैं
ज़रा और इनका घर भर दो". . क्यों कि तुम्हारा
दुख दर्द तो नया नहीं है,"[2]

लोकतंत्र की अर्थशून्यता

लोकतंत्र में चुनाव जनता के हाथ में सबसे बडा हथियार माना जाता है। राजनीतिक अधिकारियों की गतिविधियों को इसके द्वारा जनता नियंत्रित

---

1. अरधान - पृष्ठ 67.
2. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 37.

कर सकती है। लेकिन जब लोकतंत्र बिगड जाता है और जनता कमज़ोर पड जाती है तब चुनाव केवल खेल-तमाशे का कारण बन जाता है। हमारे लोकतंत्र ने चुनाव को याने जनता के अधिकार को इस कदर नुमाइश बना दी है। कृत्रिम ढंग से आँसू बहाकर बिना सहानुभूति के किसान मज़दूर का नाम लेकर "पुराने गले" से नया आर्द्र स्वर निकालकर चुनाव के दिन नेता लोग आते हैं और लोकतंत्र के मूल तत्व को ही हास्यास्पद बनाते हैं -

आज नहीं कुछ दिन पहले किसकी बिसात थी
इससे बातें करता, समय नहीं है, होता

बना बनाया उत्तर, और काम पड़ने पर
बोला करती थीं उसकी ओर से गोलियाँ
बिछ जाती थी ' एक दो नहीं कई टोलियाँ
आज चिरौरी करता है घोड़ा अड़ने पर

ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
नए नए होंगे, ठनकेंगे ढोलक, ताशे, "[1]

वर्तमान शासन व्यवस्था की पतितावस्था

वर्तमान शासन व्यवस्था भी त्रिलोचन के लिये असन्तोष का कारण बन जाती है। शासन की बागडोर हाथ में लेने वाले से लेकर पुलिस के कर्मचारी तक के अधिकारी जनता के शत्रु हैं। वे पूँजीवादी ढंग से दूषित वातावरण फैलाकर निम्न वर्ग की जनता को घुटन प्रदान करते हैं। इस दूषित वातावरण की वास्तविक अवस्था की झाँकी "महाकुंभ" के सॉनेटों द्वारा कवि प्रस्तुत करते हैं। "महाकुंभ के लंकाकांड की - पुलिस सामन्ती, (उपन्यासों और पौराणिक आदर्शों के) राज्यपाल, मुक्त और कुबेर-से

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 52.

अधिकारी, महाजनी सभ्यता के अधिकारी लोग हैं। ये अधिकारी असामाजिक चरित्र हैं। न पुलिस जनता की दोस्त है– न राज्यपाल-कथाकार के रूप में जनवादी साहित्यकार हैं– न कुबेर से अधिकारी जनता की प्रजातांत्रिक भावना से संगी है।"[1]

कुम्भ नगर की अवस्था –

"कहीं कुचाल देख कर हृदय काठ होता था,
कहीं अनीति देख कर मर्म व्यथा होती थी,
कहीं इष्ट की पूजा यथा-तथा होती थी,
कहीं लाभ के लिए लूट सी मची हुई थी,
कहीं ठगी छल बल से नई प्रथा होती थी,"[2]

महाकुंभ के अवसर पर हुए नरमेध से अधिकारी न तो दुखी थे, न वे जीवित मनुष्यों के मित्र। ये नेता वास्तव में उनके दुख का कारण बन जाते थे। जननेता घटना स्थल देखने आये, लेकिन उनकी ठाट-बाट का प्रदर्शन हुआ –

"चमत्कार है, दावत होने पर दुर्घटना
नेताओं को ज्ञात हुई. फिर कारें दौड़ी
दौड़ी इधर से उधर पहुँचीं, यों ही घटना
पड़ता है अवसर पर, सजी सजाई दौड़ी
सड़क दहल सी उठी."[3]

कुंभकांड में पुलिस भी तैनात थी, लेकिन वे जन नेताओं और कुबेर से अधिकारियों की शान बढ़ाने में लगी थी। इनसे जनता को मुसीबत ही होती थी।

---

1. "धरती" – अंक – 6 – पृष्ठ 64.
   "कवि त्रिलोचन की प्रयोजन शीलता"– विष्णुचन्द्र शर्मा
2. अरघान – पृष्ठ 41.
3. वही – पृष्ठ 59.

"पुलिस कहाँ थी, नेताओं के पीछे पीछे
व्यस्त भाव से चलती थी, यह शान बढ़ाने
की कुछ नई कला थी." [1]

राज्यपाल से लेकर निचले दर्जे के पुलिस के अधिकारी तक के लोग अपनी शान बढ़ाने का काम साहित्यकार एवं बुद्धिजीवियों से लेते थे। वे अपने जनसेवक होने का दावा करते तो हैं, साथ ही साथ उसका प्रचार कार्य भी करा लेते हैं -

"लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही,

उन के भाषण संस्कृति पर." "कोई तो स्याही
जा कर मुँह पर मल देता." "ये भूमिभार हैं..." [2]

भूमि के भारस्वरूप वर्तमान शासन के ये अधिकारी वास्तव में जनता के दुख का कारण बन जाते हैं। उनसे असन्तुष्ट कवि कहते हैं -

"इंद्र वरुण कुबेर से अधिकारी छाए थे,
शिविर सजे थे, धूलि कहाँ उन को लगती थी,

जनता में कब होगा जनता का अधिकारी,
कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी." [3]

इन सॉनेटों में शासन का पूरा कुचक्र त्रिलोचन के शब्दों के माध्यम से स्पष्ट होता है। शासन तंत्र का यह कुचक्र सामान्य नहीं है। यह हमारे समाज में व्याप्त अराजकता का आडंबरपूर्ण मंचीकरण है।

---

1. अरघान - पृष्ठ 60.
2. वही - पृष्ठ 61.
3. वही - पृष्ठ 62.

राजनीतिक अवनति

देश के राजनीतिक क्षेत्र की पतितावस्था या अवनति पर टीका-टिप्पणी करनेवाली व्यंग्य-भरी कविताओं की कमी नहीं है। व्यंग्य प्रगतिशील कविता की विशेष प्रवृत्ति भी है। त्रिलोचन की व्यंग्य प्रधान कविताओं में राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियाँ संकेतित होती हैं। लेकिन उल्लेखनीय बात यही है कि "त्रिलोचन की स्पष्ट पक्षधरता हर क्षण प्रकट नहीं होती और वे गुस्सा करने के अवसर पर गुस्सा पी जाते हैं।"[1] एक तरह से वे भारतीय किसान के जीवन के साथ तादात्म्य प्राप्त कर पाते हैं। वे राजनीतिक कविता के खतरों से बचकर काव्य रचना करते हैं। नामवरसिंह के अनुसार - "अच्छी राजनीतिक कविता बहुत कठिन कला है, क्यों कि राजनीतिक काव्य रचना के स्पष्ट खतरे हैं। एक खतरा तो "क्लीशे" और "जार्गन" का ही है। इसलिये राजनीतिक भाषा के विरोध या विडंबनापूर्ण प्रयोग द्वारा ही अच्छी राजनीतिक कविता की रचना संभव है। इसके अला तो वही रास्ता बचा रहता है जो त्रिलोचन ने अपनाया। रोज़मर्रा की राजनीति पर टिप्पणी करने के बजाय जीवन में गहरे पैठी हुई राजनीति आलोचनात्मक अंकन।"[2] स्पष्ट राजनीतिक अंकन के अभाव में त्रिलोचन क प्रगतिशील मानने में विरोध करनेवाले भी हैं। लेकिन वास्तविकता यही त्रिलोचन राजनीति से विमुख नहीं हैं। उनके ही शब्दों में - "जहाँ तर और राजनीति के संबंध का सवाल है, मैं मानता हूँ कि राजनीति वि सार्थक कविता नहीं लिखी जा सकती खास तौर से आज के सन्दर्भ में भी नहीं।"[3] राजनीतिक विसंगतियों की प्रतिक्रिया तो उन्हें होत

---

1. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 99.
   (एक नया काव्य शास्त्र त्रिलोचन के लिये)- नामवरसिंह).
2. वही - पृष्ठ वही. (संपादकीय - नामवरसिंह).
3. वही - पृष्ठ 12.
   (त्रिलोचन से बातचीत केदारनाथ सिंह की) से -

लेकिन "उनकी संवेदना पर जो प्रभाव पड़ते हैं, उसी को अपनी कविता में दर्ज करते हैं।" उनकी कविताओं में "व्यंग्य का स्वर तकरीबन छेड़छाड़ करने सा या कहें चिकोटी काटने - सा होता है" - "आलोचक का दर्जा-मानो शेर जंगली सन्नाटे में गर्जा।" व्यंग्य के पीछे किसी तरह के दंभ का एहसास यहाँ नहीं है।"[1] त्रिलोचन के अनुसार "राजनीति कविता में कविता की तरह आये, यह मुझे ज़्यादा अच्छा लगता है मेरी कविताओं में यदि राजनीति की छानबीन करनी हो तो उन्हें क्रियाओं में खोजा जाना चाहिए, संज्ञा पदों में नहीं।"[2] वे समसामाजिक राजनीति पर प्रत्यक्ष टीका-टिप्पणी नहीं करते। पर उनका पूरा ज़ोर राजनीतिक असंगति पर ही रहता है।

सभा में आँख मूँदकर नेता लोग कहा करते हैं कि राजनीतिक जीवन में कोई समस्या नहीं है, जनता सुखी और स्वस्थ हैं। लेकिन वास्तविक स्थिति इसके विपरीत होगी। यही हमारे राजनीतिक जीवन की सबसे यथार्थ विसंगति है। इसपर फब्तियाँ कसते हुए त्रिलोचन कहते हैं -

"सभा में आँख मूँदी नित्य का दुख दर्द गायब था
कहा नेता ने अब संसार सुंदर होता जाता है

लेकिन शांति की स्थापना के लिये नेता लोग लोगों को लड़ाई और अशान्ति की ओर ढकेलते देखा जाता है -

"सिकंदर ग़ज़नवी तैमूर तो केवल लुटेरे थे
इधर अब शांति की इच्छा से संगर होता जाता है"[3]

लुटेरों का नारा ही लड़ाई और लूट-मार है, लेकिन यहाँ हमारी राजनीति में नेता लोग शांति की रक्षा में खड़े होने का दावा करते हैं। लेकिन शांति के नाम पर लड़ाई करते-करवाते हैं।

---

1. आलोचना - अप्रैल - जून - 1981, पृष्ठ 75.
   राजेश जोशी

2. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 12.
   त्रिलोचन त्रिलोचन से बातचीत केदारनाथ सिंह - से -

3. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 102.

राजनीति में विचित्र बातें हुआ करती हैं। कल के कैदी आज के नेता बन जाते हैं और नेताओं के लिये आदरणीय हो जाते हैं । राजनीति ऐसे ही लोगों की मदद से चलती हैं। वर्तमान राजनीति में यह मामूली बात हो जाती है -

"कल के क़ैदी की शान तो देखो
आज उस का विधान तो देखो
क़ैद फाँसी का जो विरोधी था
उस के घर इन का मान तो देखो"[1]

राजनीतिक क्षेत्र की और एक विडंबना है कि जहाँ जहाँ पुलीस गोली चलाती है, वहाँ वहाँ विपक्ष की ओर से अदालती जाँच की माँग भी हुआ करती है और संबद्ध पुलीस अफसर की बदली की आज्ञा भी फ़ौरन निकलती है। बस इसी से बात समाप्त हो जाती है। प्राय: यह न देखा, न सुना गया कि कहीं किसी अफ़सर को सज़ा भी दी गयी। इस पतितावस्था पर त्रिलोचन व्यंग्य करते हैं -

"वह जो इंदौर में चली गोली
जाँच उस की अदालती हो ली
बदली कर दी वहाँ जो अफ़सर थे
न्याय की क्या नई प्रथा खोली"[2]

चुनाव के दिन राजनीतिक नेताओं के लिए परीक्षा के दिन है। उन्हें अपने को जनता के हितैषी, बन्धु और समर्थक के रूप में दिखाना होगा। वे जनता से दूर, ऊबे हुए और निर्मम रहने के आदी हैं, लेकिन चुनाव के दिन उन्हें जनता के प्रेमी होने का अभिनय करना पडता है। यह बात भी राजनीतिक क्षेत्र की पतितावस्था की ओर संकेत करती है - त्रिलोचन इसे यों स्पष्टकरते हैं -

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 144.
2. वही.

"इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
आँखों पर कि बह चले आँसू, और साथ ही
नाम किसान मजूर का लिया,
स्वर नया जगाया

उसी पुराने गले से, चकित थे तब श्रोता
कैसे शेर बन गया बिल्ली कौन बात थी
क्योंकि – ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
नए नए होंगे, ठनकेंगे ढोलक, ताशे."[1]

आज हर देश अपनी रक्षा के लिये आणविक छत्तरा बना डालते हैं जिसकी छाया में खडे होकर अन्य देशों की ओर रामबाण भेजकर उनका नाश करे। संसार के सभी देश ऐसा करते हैं, हम भी करें। अपने प्राणों की रक्षा में मनुष्य क्या क्या करते हैं,

"सैनिक बूट विशाल एक हम भी बनवा लें,
जितना यह आकाश बड़ा है,
खाई से ही त्रास मिटेगा, हम खनवा लें,
.चाहे खो जाएँ,
सुरुचि, शील, सौजन्य-वितान नए तनवा लें
जिस से अपने प्राण न धरती से उड़ जाएँ."[2]

राजनीतिक नेताओं की दुधारा नीति व्यापक रूप से चर्चित विषय है। वे एक ओर शांति की चर्चा छेडते हैं, दूसरी ओर हिंसात्मकनीति का प्रयोग भी करते हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत में भी हाल रहा। विदेश में पंचशील और विश्वशांति के अग्रदूत बनकर रहनेवाले देश के अन्दर कडाई की नीति को

---

1. ताप के ताए हुए दिन – पृष्ठ 52.
2. शब्द – पृष्ठ 63.

आनाते थे, इस नीति की विरोध-भावना पर व्यंग्य कसते हुए त्रिलोचन कहते है -

"निरहू ने, भाई, जब से घरबार सँभाला
तब से सब कुछ बदल गया है, उन्हें लड़ाई
अच्छी लगती नहीं, शांति का गरम मसाला
बाँट रहे हैं मुफ्त सभी को.
घर के अंदर तो ज़रा कड़ाई
करनी पड़ती है, क्या कहिए, नौजवान तो -
गरम ख़ून होता है, उनको गड़ी गड़ाई
को उघाड़ना अच्छा लगता है, ज़बान तो
चलती है कैंची सी,.
थोड़ी गोली वोली
खा कर तनिक पटा जाते हैं, संविधान तो
इसे नहीं अच्छा कहता है, लेकिन बोली
करनी में अंतर होता है, "[1]

राजनीतिक क्षेत्र में नेता लोग जिसे उन्नति कहकर दुहाई देते हैं और प्रचार करते हैं वास्तव में उन्नति नहीं है। साधारण लोगों को शासन के मधुर फलों का अनुभव बिलकुल नहीं प्राप्त होता।

"स्वदेश की आज अवस्था
इतनी उन्नत है, सुखमय है, दुख कहीं नहीं,
शेष अवैधानिकता है. छींको या खाँसो
सब नियमानुसार हो, यदि विपरीत किया तो
दंड भोगना होगा. कोई मरा जिया तो
सब क़ानून मुताबिक़ हो,
इस को उन्नति कहते हैं,
जीवन नहीं. और अधिकार सभी रहते हैं. "[2]

उदाहरण के लिए,

मुझ को प्यास लगी है,
लेकिन पैसा पास नहीं है, ले कर पानी
कंठ सींच लूँ. अगर कहीं ऐसी नादानी
कर बैठूँ कि कुएँ तालाबों में हिलगी है
जानवरों की भीड़, उसी के साथ ही कहीं
मैं भी पी लूँ, तो निश्चित है मुझे व्यवस्था
तुरत जेल देगी, "[1]

प्रजातंत्र में राष्ट्रपति का स्थान सर्वोच्च है। वे ही प्रजातंत्र और जन-हित का प्रतीक माने-जाते हैं। लेकिन आज की पतितावस्था में राष्ट्रपति जनता के सुख-दुख का कोई ख्याल नहीं रखते। 1953 में"कुंभमेला" के अवसर पर भीड-भाड में सैंकडों लोग दब कर मरे थे, यह दृश्य देखने के लिये आये हुए राष्ट्रपति का चित्र त्रिलोचन इसप्रकार खींचते हैं -

"जहाँ राष्ट्र के पेड़ अनेकानेक गिरे थे
आज वहीं से कार राष्ट्रपति की निकली थी,

भीड़ भाड़ में अतुल त्वरा गति की निकली थी,

कानों में संगीत भरा था, वहाँ कराहें
कैसे जातीं.
.दुनिया है, लोग मरा करते हैं,
भला राष्ट्रपति सुना करे किस किस की आहें"
ऐसा हो राष्ट्रपति कि जीमे, फिर डकार ले,
"दुर्घटना से मुझे दुःख है" यह सकार ले. "[2]

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 83.

2. अरघान - पृष्ठ 58.

कुंभकांड में सैंकडों लोगों की मृत्यु होने पर भी इसका पता जननेताओं को तब लगा जब दावत हो रही थी। हमारे जननेता और मंत्री लोग जनता के दुख से न तो दुखी हैं और न जनता के संकट के समय भी अपने सुख को छोडने को तैयार हैं।

"चमत्कार है, दावत होने पर दुर्घटना
नेताओं को ज्ञात हुई. फिर कारें दौड़ी
दौड़ी इधर से उधर पहुँचीं, यों ही खटना
पड़ता है अवसर पर, सजी सजाई चौड़ी
सड़क दहल सी उठी,
बन गई सड़क पल में बंदर को पौड़ी
जननेता आसीन दिखे,
अज्ञ कहाँ सर्वज्ञ कहाँ हैं ये जननेता,
कुंभकांड कहता है, लेखा लेता देता." [1]

(कुंभकांड में जननेता)

शांति के संबंध में शब्दों का खेल चलता रहता है। सरकार के समर्थक इसकी सराहना करते हैं, जबकि देश में अशांति के कई कारण मौजूद हैं –

"शब्दों का खेल
बड़ा मनोरंजक होता है

देखता हूँ
बेरोजगारों को
असहाय हाथ बगल में दबाये
पाँव-पाँव चलते
और चुप-चाप
कहीं पड़ जाते

---

1. अरघान – पृष्ठ 59.

शांति यहाँ कितनी है
अशांतियों को शांति से छिपाते हैं
शांति में शक्ति है
देश आगे बढ़ रहा है
और लोग कैसे हैं
पीछे पड़ रहे हैं"[1]

शासन का भार संभालनेवाले राजनीतिक अधिकारी यह मुद्रा धारण करते हैं कि गंभीर समस्याओं के समाधान के लिये वे कोई भी कसर उठा नहीं रखते, इतनी दौड़-धूप करते हैं कि वास्तव में ये अधिकारी बहुतेरा कार्य ऐसे करते हैं जो मामूली दर्जे के हैं –

"न पूछो, अजी बड़ों की बात बड़ी है,

फूल धूल से रच देने की शर्त कड़ी है,
लोग समझते नहीं – सवारी कहाँ अड़ी है,
बड़े बड़े मसले हैं, यह करना, वह करना,
सुप्त समुद्री चट्टानों से नाव लड़ी है –
गाँधी-टोपी, राजकाज को सिर पर धरना
सरल नहीं है।"[2]

राजनीतिक पार्टियाँ अपनी चालों से जनता को फुसलाती हैं। वे अपनी टोपी या झंडे की महिमा का गान गाकर लोगों पर अपनी धाक जमाते हैं।

"धौली, काली, लाल टोपियों की मर्यादा
का गुण गान वायु मंडल को चीर रहा है
नित्य निरंतर सब कहते हैं अभी कहा है
अंश मात्र . जिसने भोगा

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ – पृष्ठ 57.
2. वही – पृष्ठ 61.

है, वह गूँगी जनता है जिसे जवाहर,
जय प्रकाश, गोलवलकर फुसलाया करते हैं
स्वर्ग तुम्हें दिखलायेंगे हम
तुम धारण कर लो, तब तो अपना
किया कुछ नहीं होगा, सच भी होगा सपना"[1]

भारत के राजनीतिक नेता लोग एक ओर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और दूसरी ओर अपने परार्थी होने का दावा करते हैं।

"हम भारत के हैं, भारत है देश हमारा,
भारत का सम्मान हमारी जीवन भाषा
है। वैयक्तिक अभ्युत्थानों की अभिलाषा
देशोत्थान के लिए है।"[2]

राजनीतिक क्षेत्र में अपना रोब जमाने वाले सिद्धांत - विशेषज्ञों में भी ऐसे लोग हैं जो अपनी योग्यता का ढिंढोरा तो पीटते हैं। मगर वे मानवता और संस्कृति का ह्रास करनेवाले होते हैं। वे साम्यवाद के विशेषज्ञ भी हैं जो मानवीयता को भुला चुके हैं।

"देसी और बिदेसी लादी ढोते ढोते
जिनकी पीठ कट गई थी वे गधे शान से
घोड़े कहलाते फिरते हैं। आन बान से
कहते हैं कि इंद्र के घोड़े जैसे होते
हैं वैसे ही हम हैं।"[3]

राजनीति ने समाज के जितने पहलुओं को अनैतिक कर दिया है, उन सब पर त्रिलोचन ने कविता लिखी है। सभी कविताओं में उनकी खोज उस मनुष्य की है जो लगातार छटपटाता रहता है।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 36.
2. फूल नाम है एक - पृष्ठ 19.
3. वही - पृष्ठ 21.

धर्मांधता के प्रति विरोध

त्रिलोचन सभी क्षेत्रों की रूढ़ियों का तीव्रता से विरोध करते हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र की हर रूढ़ि पर उनकी कर्कश दृष्टि है।

"तुम बढ़ो जिस तरह दीप्त ज्वाल
कर दग्ध रूढ़ि का अन्तराल
साम्राज्यवाद
सामन्तवाद
औ' व्यक्तिवाद
जो बाँध रहे गति जीवन की कर उन्हें नष्ट
तुम सामाजिक स्वातन्त्र्य-साम्य को करो स्पष्ट
होवें स्वतन्त्र नारी - नर
हो सामंजस्य अमलतर
मैं गान विजय के गाऊँ
जन जन की शक्ति जगाऊँ"[1]

तुम बढो विजय के पथ पर

धर्मांधता के घने दुर्गों पर प्रहार करते हुए त्रिलोचन कहते हैं -

"करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर,
कवि हूँ, नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा
उन गानों में अपने विजय-गान पायेगा
जिनको मैंने गाया है"[2]

पश्यन्ती

---

1. "धरती" - पृष्ठ 16.
2. दिगन्त - पृष्ठ 15.

धार्मिक रूढ़ियों में उलझकर नया मनुष्य अपना जीवन गँवाना नहीं चाहता। जीवन के विकास के लिये इन रूढ़ियों से मुक्ति पाना ज़रूरी है। त्रिलोचन अपनी कवित्व-शक्ति का प्रयोग इस के लिए करते हैं।

धार्मिक क्षेत्र के अंधविश्वास से भारतीय समाज शापग्रस्त हो गया है। अंधे भक्तों का चित्रण त्रिलोचन प्रस्तुत करते हैं –

"जो बेचारे
अपना दुखड़ा ले आते हैं, बजने वाले

जग में तुम उनके होते हो अथवा हारे
मन को और मसल देते हो चुप्पी मारे-
क्या क्या अर्थ लगाते होंगे भजने वाले

अपने अपने आराधन में आने वाली
असफलताओं का, तुमको तो पता न होगा
रंच मात्र भी, फिर भी तुमको अंतर्यामी
कहकह कर गा जाते होंगे, गाने वाली
भीड़ भाड़ में-क्या क्या कैसे कैसे भोगा
भोग रहे हैं,"[1]

अंधभक्ति प्राचीन काल से मनुष्य की दुर्बलता रही है। वे पाषाण-मूर्ति के सामने आकर अपना दुखड़ा रोते हैं और आगामी दुख को रोकने की भी प्रार्थना करते हैं। कवि इस बात पर व्यंग्य करते हैं, जो मूर्ति स्वयं जिस बात से अनजान है उसकी प्राप्ति के लिये उसे अन्तर्यामी कहकर लोग गाते-पूजते हैं। अपने सम्मुख खड़े भाइयों को देखे बिना अदृश्य भगवान के गुण गानेवाले भक्तों पर कटाक्ष करते हुए त्रिलोचन धर्मांधता पर तीखा व्यंग्य करते हैं –

---

1. शब्द – पृष्ठ 17.

"पागल है तू, उन देवों के गुण गाता है
जिन को अपनी आँखों तू ने कभी न देखा।
खींच नहीं सकता है जब तू सच्ची रेखा
चित्र बनाएगा क्या।
कहाँ रंग पक्का है जिस पर तू कच्चे से
भाग रहा है उन्हें भेंट जो आगे आए"[1]

आज ईश्वर पूँजीपतियों के हाथ में व्यापार-वस्तु बन गया है। इतना ही नहीं, ईश्वर पूँजीपतियों के हाथों मारा भी गया है और उससे लाभ उठाने का काम भी ये लोग करते हैं -

"मृत्यु हो चुकी है ईश्वर की, नया आदमी
अब इच्छानुसार करता है काम.
ठाटबाट का महल है ढहा
सामंती युग का. स्वाभाविक मौत न पाई
ईश्वर ने, पूँजीपतियों ने, सामंतों ने,
उसे मार डाला उस की खा गए कमाई,
देश देश में जो संचित थी. विषदंतों ने,
पूँजीवादी साँप के, जहर को फैलाया
वह समाज के रग रग में हड़कंप मचाता
हुआ आज भी काम कर रहा है, बन पाया
नहीं किसी से कुछ, रोगी कराहता जाता"[2]

ईश्वर से लाभ उठानेवाले पूँजीवादी चाल को समझे बिना अंध भक्त उसके पीछे पडे हैं। महाकुंभ में साधु-संतों का पाखंड भी त्रिलोचन के कटाक्ष केलिए विषय बना है। धर्मांध, इन साधु संतों की कुटिल चाल थोडे ही समझते हैं। वे

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 42.
2. अरघान - पृष्ठ 64.

इन पाखंडियों की चरण - धूलि सिर पर धारण करते हैं। उनकी गाँजे या सुलफे से उत्पन्न बेहोशी को ये निरीह भक्त ध्यानावस्था समझकर उनके अनुग्रह का वरदान माँगते हैं, ऐसे वैरागियों के प्रति त्रिलोचन एक दम असहिष्णु है -

"बैरागी रागी हैं और माल खाते हैं
मूढ़ विधाता का है यह छोटा सा खेला

साधु-संत सोते हैं सुखी पाँव फैलाए
कितने ही लखपती पास उन के आते हैं
चरणधूलि लेते हैं, वही स्वर्ग से आए.

बमभोले शंकर गाँजे का, सुलफे का दम
लिया गुरू ने, लवर उठी, फिर बोले, बम बम." [1]

तीर्थराज प्रयाग में महाकुंभ के अवसर पर उमंग से भरे, अपनी लाचारी भूलकर भी लोग भजन-गान में लग जाते हैं। पंडे लोग इसे भक्ति की विजय मानते हैं। लेकिन कवि अंधभक्तों के समानांतर अभावग्रस्त और अपमानित जीवन बिताने वाले दीन-हीनों को दिखाकर, दोनों के बीच की विरोध भावना को प्रस्तुत कर उस विडंबना की ओर संकेत कर रहे हैं -

"पंडा रामप्रसाद ने कहा, धर्म जगा है,
धर्म विरोधी देखें, धर्म नहीं डूबा है,

धर्म कर्म का बढ़ने वाला मंसूबा है
संगम,
उमंग से भरे दीनों

---

1. अरघान - पृष्ठ 47.

के दल पर दल आते हैं. अवमानित, हीनों
के जीवन प्रसून खिलते हैं. सब नर नारी
भूले हुए चले आते हैं, पथ पर बीनों
को छेड़ कर गा रहे हैं, बिसरी लाचारी."[1]

धर्मांध भक्तों के अज्ञान एवं अंधता से लाभ-उठानेवाले ढोंगी, पेटू सन्यासियों की भोजनप्रियता और भक्ति की बात कर उसे छिपाने और भक्तों पर अपनी धाक जमाने की उनकी प्रवृति के प्रति भी त्रिलोचन ने व्यंग्य किया है।

"एक हजार आठ स्वामी...जी ने डकार ली,
हाथ पेट पर फेरा. बोले, "अधिक खा गया.
मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु का ध्यान आ गया,
भूल गया मैं. उन लोगों ने तो उतार ली

मर्यादा इस पुण्य-भूमि की, जिन लोगों ने
कहा कि रोटी ही सब कुछ है. यदि यह रोटी
सब कुछ होती, मुनि त्रिकालदर्शी यह छोटी
बात कहीं कह जाते

प्रणत हो गया भक्त, कहा, "स्वामीजी, भोजन
रुचि का हुआ न होगा. हम वैसा आयोजन
कहाँ कर सके." "अजी माल था. तुष्ट हूँ यहाँ."

हँसी-हिलोरों से फिर तो वह काया मोटी
हिलने लगी तोंद में सिहरी संचित रोटी."[2]

(रोटी)

---

1. अरघान - पृष्ठ 52.
2. दिगन्त - पृष्ठ 19.

काशी में गन्दगी इकट्ठा मिल जाती है। वहाँ देश के कोने कोने से भक्त लोग आते है, और अपने "गन्दे" पापों को छोड जाते हैं। म्युनसिपालिटी वाले इसे साफ कर नहीं पाते, क्यों कि उन्हें भी "नैष्कर्म्य सिद्धि है, मेम्बर जेबें भरते हैं और मंचों पर बक बक करते नहीं थकते। धर्म-कर्म और भक्ति से लाभ उठानेवाले इन धर्मिक केन्द्रों में बहुतेरा मिलते हैं। उनके बारे में कवि का कथन है -

"काशीपुरी पवित्र हैं इसलिए यहाँ पर
दुनिया की गन्दगी इकट्ठा मिल जाती है
ओर-छोर से लोग छोडने पाप वहाँ पर
पहुँचें, काशी दशा वहाँ की दिखलाती है
म्युनसिपालिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड करें तो क्या क्या
करें, हुई नैष्कर्म्य सिद्धि है अनायास ही
मेम्बेरें जेबें भरते हैं, इसमें भी क्या क्या
कष्ट उठाने पडते हैं -[1]

धार्मिक रूढ़ियों एवं अमानवीय धर्मान्धता का विरोध हर युग के प्रगतिशील कवियों नें किया है। त्रिलोचन ने अपने सामने के दृश्यों को उसकी नंगई के साथ चित्रित भर नहीं किया बल्कि उसके प्रति तीखा विरोध भी प्रकड किया है । त्रिलोचन की खोज, तब भी उस नए मनुष्य की है, जो इन से मुक्त हो कर मानवीयता का गान गायेगा।

सर्वहारा वर्ग का जागरण

त्रिलोचन सर्वहारा वर्ग के संघर्ष, दुख और अभाव के ही कवि नहीं, बल्कि वे उसके स्वाभिमान के भी प्रवक्ता हैं। उन्हें उभारकर जागरण के वेग को वे बढाना चाहते हैं। वे उनके दुख के तम में जीवन-ज्योति को जलाना

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 73.

चाहते हैं। "वे (त्रिलोचन) किसान जीवन की करुण -कहानी नहीं कहते, उसके स्वाभिमान की रक्षा को महत्व देते हैं। उनका किसान अभाव में जीता है, लेकिन अभाव से दबता नहीं।"[1] अभाव के बीच में भी सचेतनता का एक अंश वे बनाये रखते हैं।

त्रिलोचन मानव को महिमा से मंडित कर के देखते हैं। उसे अपने जीवन का कर्ता - धर्ता एवं विपुल शक्तियों का निधान समझते हैं। उसे अपमानित जीवन बिताते देखकर वे दुखी होते हैं। कवि मानव को जीवन-मंथन कर अमृत भोगने का आह्वान करते हैं -

"जीवित मानव-महिमा तुम से
तुम मानव-जीवन के धर्ता
तुम मानव-जीवन के कर्ता
तुम मानव-जीवन के हर्ता
विपुल शक्तियों के निधान तुम
अपमानित जीते धरती पर
अपना शक्ति-प्रकाश दिखा दो
क्षय कर अत्याचार अनय का
श्रमिक, कृषक भोगो वह अमृत
जो फल है जीवन-मन्थन का"[2]

त्रिलोचन इस तथ्य पर आश्वस्त हैं कि आज मानव-महिमा को दुनिया ने अपनाया है। मनुष्य को स्वयं अपने गौरव का बोध जग गया है -

"सत्य, आज मानव-महिमा को
दुनिया ने अपनाया है
अब तो जन जन के मन मन में
अपना गौरव छाया है"[3]

---

1. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 22.
"जीवन की लय में मुक्ति का राग" - मैनेजर पांडेय
2. "धरती" - पृष्ठ 15.
3. वही - पृष्ठ 23.

पहले की अपेक्षा मानव-महिमा के पक्ष में दुनिया का रुख बदला-सा दिखाई पड़ता है। इस ओर कवि संकेत करते हैं -

"आज शक्ति सबको जागी है
नया पन्थ जो पाया है
अब तो जन जन के मन मन में
अपना गौरव छाया है"[1]

नया पथ प्रशस्त होने से मानव स्वयं अपना गौरव समझ गया है। इस प्रकार मानव-महिमा बढ़ गयी है।

सर्वहारावर्ग के प्रति सहानुभूति

सर्वहारावर्ग के प्रति त्रिलोचन की सहानुभूति वायवी नहीं है। उनकी सहानुभूति आत्मीयता की नींव पर विकसित है। इसमें कवि के अपने अनुभवों का विशाल संसार है, अपने सहभागीत्व का सजीव स्पन्दन है। इसलिये कवि अपने को उसका एक अभिन्न अंग भी मानता है।

"मैं भी उस समाज का जन हूँ
उस समाज के साथ साथ ही -
मुझको भी उत्साह मिला है"[2]

सुनी-सुनाई बात और भोगी हुई अवस्था में जो अन्तर है वह विशेष उल्लेखनीय है। त्रिलोचन की कविता प्रायः ऐसी ही एक तादात्म्य अवस्था का एहसास कराती रहती है। सर्वहारा के प्रति सहानुभूति के कारण वे उन लोगों की भर्त्सना तीव्रता से करते हैं जो अपने लाभ के लिये सर्वहारा का शोषण करते हैं।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 22.
2. वही - पृष्ठ 29.

"कुछ बरसों के क्षणभंगुर जीवन को सुखी बनाने के ही
लिए लोग औरों के सुख को बल से हरण किया करते हैं,
जीवन अमर अगर होता तो पता नहीं फिर क्या क्या होता,
क्या क्या गुल खिलते दुनिया में।"[1]

इसी सर्वहारा के प्रति संवेदना के कारण ही त्रिलोचन मनुष्य-मनुष्य में समत्व की आवश्यकता पर ज़ोर देते है। प्रकृति में समता के दर्शन करनेवाले कवि मनुष्य जीवन में भी इसकी परिकल्पना करते हुए सर्वहारा की उन्नति में अपनी रुचि का प्रदर्शन करते हैं। प्रकृति में वायु ही उत्तम उदाहरण है जो समता का सन्देश देती है -

"जो समानता यह वायु सर्वदा दिखलाती है
जीवन के पावन अधिकारों की सदा सजग
सब के लिए एक दृष्टि से रक्षा करती है
क्या मनुष्य उस समानता को अंगीकार कर
पूर्ण चेतन, पूर्ण जीवित, उत्तरदायित्वपूर्ण
कभी हो सकेगा इस विश्व में समान प्रिय
सभी के लिए नितान्त आवश्यक"[2]

(घर बाहर देश में विदेश में)

शोषित सर्वहारा के प्रति सहानुभूति से प्रेरित त्रिलोचन क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल देते हैं। दीन-हीन, शोषित सर्वहारा संगठन की शक्ति से क्रान्ति के लिये कटिबद्ध होने पर ही स्थिति में सुधार हो सकता है, कवि इस ओर इशारा करते हैं -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 75.
2. वही - पृष्ठ 125.

"दुनिया को बदलने से ही दिन बदलेंगे सब के
पथ दूसरा नहीं है कोई कुछ किया करे"[1]

कवि स्वयं स्पष्ट करते हैं कि अपनी कविता के केन्द्र में यही सर्वहारा है जो निपट निरक्षर होकर भी जीवन के लिये स्वाभिमान के साथ लड रहे हैं। उन्हीं के प्रति उनकी सहानुभूति है –

"जीवन के लिए लगाकर अपनी बाज़ी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राज़ी
कभी नहीं हो सकते हैं.
जो हैं निपट निरक्षर लेकिन जिनकी
प्राणों की ललकार जानती कभी न रुकना."[2]

(कस्मै देवाय)

सच्ची प्रगतिशीलता इसी निष्ठा में निहित है। त्रिलोचन के लिये यह एक बहिरंग घोषणा मात्र नहीं है बल्कि आन्तरिक अनिवार्यता भी है।

मनुष्य की प्रगति में विश्वास

मनुष्य की प्रगति में विश्वास त्रिलोचन की प्रगतिशीलता का अभिन्न अंग है। मनुष्य की प्रगति में उनकी आस्था अटल है। इसी आस्था से वे लड रहे हैं। नये समाज की आशा अभिलाषाओं को वे शब्द दे रहे हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में भी इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

"भस्मावृत लूकी सा
मैं इस अन्धकार में
पड़ा हुआ हूँ
अपनी चेतनता की ज्वाला में
परिसीमित"[3]

(भस्मावृत लूकी सा)

---

1. गुलाब और बुलबुल – पृष्ठ 100.
2. दिगन्त – पृष्ठ 23.
3. "धरती" – पृष्ट 90.

"जैसे अन्धकार के गढ़ पर
ये प्रकाश के तीर छूटते
देख देख कर
मुझे ज्योति की, जीवन की अनिवार्य विजय का
दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है"[1]

"अन्धकार में देख रहा हूँ
जीवन की बनती रेखाएँ
आयें बाधाएँ सब आयें
पर न मिटेंगी किसी काल में
ये बनने वाली रेखाएँ"[2]

(भस्मावृत लूको सा)

मनुष्य की प्रगति में विश्वास रखनेवाले कवि प्रकृति पर उसकी विजय की गाथा भी गाते हैं। नदी उद्गम-काल से ही मनुष्य के लिये चुनौती थी। उसे तैरकर पार करना, नाव से पार करना, फिर बाँध से उसे बाँधना मनुष्य की प्रगति के विविध आयाम रहे हैं। अब मनुष्य नदी को कामधेनु जैसे दुह रहा है, विकास-प्रक्रिया में इसका इस्तेमाल कर रहा है -

"नदी ने कहा था मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है"[3]

(नदी कामधेनु)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 90.
2. वही - पृष्ठ 91.
3. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 13.

प्रकृति शक्तियों पर विजय मनुष्य की प्रगति का साहसपूर्ण आयाम माना जाता है। "नदी को कामधेनु में परिवर्तित कर देना मनुष्य के लंबे संघर्ष की उपलब्धि है" - [1]

जीवन धारा की अजस्रता और निरंतरता पर कवि का विश्वास यों प्रकट होता है -

"जीवन जब तक शेष रहेगा तब तक धारा
इसी तरह निर्बाध बहेगी, जीत-हार का
अभिनय भी दिन रात रहेगा, घृणा-प्यार का
रंग हृदय पर छाप छोड़ कर पथ पर न्यारा
रूप रचेगा," [2]

नवनिर्माण की आकांक्षा

प्रगतिशील चेतना गतिशील जीवन दृष्टि का परिणाम है। उसमें सक्रिय चिन्तन के लिये पर्याप्त स्थान है। निराशा, हताशा के स्थान पर स्फूर्ति और जागरण के लिये स्थान मिलता है। नवनिर्माण के स्वरांकुर फूटते रहते हैं। नवनिर्माण की आकांक्षा से प्रेरित जनमानसिकता आज पुराने ढाँचे को तहस-नहस करके आगे बढने लगी है और नए समाज की सृष्टि की आकांक्षा रखती है। पुरातन का नाश और निर्माण की प्रक्रिया उस का अभिन्न अंग है और यह भी साथ साथ चलता है -

"जन-समाज आगे बढ़ता है
नयी सृष्टि की धुन ले कर
बढ़ने का साहस ले कर
और विजय की धृति ले कर

---

1. आलोचना - 56-57, पृष्ठ 69.
जब देखा तब जीवन देखा - राजेश जोशी

2. शब्द - पृष्ठ 71.

अकुतोभय बाधा-निर्विकार
जग-जीवन-नौका खे कर
जन जन को ममता दे कर
जन जन को नव बल दे कर
सबने आज मिला स्वर अपना
गीत साम्य का गाया है"[1]

परिवर्तन और नवनिर्माण का सन्देश देते हुए कवि जनता की जागृति को बढ़ाते हैं -

"उनको बहुत जल्द दफ़नाओ
नवयुग के जन आगे आओ
नव निर्माण करो तुम जग का,
जीवन का, समाज का, मन का"[2]

पुरातन दकियानुसी विचार धारा से दुखी मानवता को कवि जागृत करते हैं -

"बहुत पुरातन की छाया में
मानवता ने दुख पाया है
बरगद की छाया के भीतर
नहीं अन्य तरु बढ़ पाया है"[3]

इसप्रकार त्रिलोचन श्रमिक जीवन की शक्ति को जगाते हैं और साथ ही साथ उसकी जडता पर प्रहार करके उसे सावधान करते हुए जागरण की गति को तीव्र कर देते है। "त्रिलोचन की दृष्टि किसान जीवन की समग्रता को देखती है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 22.
2. वही - पृष्ठ 14.
3. वही - पृष्ठ 27.

वह उस जीवन की शक्ति के स्रोतों की खोज करती है तो जड़ता की जड़ों पर प्रहार भी करती है।"[1] त्रिलोचन के सामने गन्तव्य बहुत ही स्पष्ट है। वे तटस्थ और निष्क्रिय दर्शन का पक्षधर नहीं हैं। नवनिर्माण के लिये जन को प्रेरित करने पर वे इसी स्पष्ट दृष्टि से काम लेते हैं। मुक्तिबोध ने इस तथ्य की ओर इशारा किया है - "सारी कविताओं में कवि का गहरा आत्म विश्वास और सामाजिक लक्ष्य के प्रति ईमानदारी प्रकट होती है, यह मात्र ईमानदारी नहीं, प्रत्युत उसका जीवन दर्शन है।"[2]

संसार भर में व्याप्त परिवर्तन का गति-वेग और मानव महिमा के प्रति सजगता के उत्तरदायी तथ्य रूस की साम्यवादी सरकार और उस देश में स्थापित समाजवादी सामाजिक व्यवस्था ही है। इस सत्य के प्रति सजग कवि त्रिलोचन अपने देश और जन की मुक्ति भी इस आधार पर कराना चाहते हैं। वे रूस और चीन में स्थापित समाज-व्यवस्था के गायक हैं। अपने प्राणों की बलि देकर साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करने का वे आह्वान करते हैं -

"चीन महान चीन, मैं तुझ को नमस्कार करता हूँ
पराधीन भारतवासी मैं नमस्कार करता हूँ

स्वतन्त्रता का मोल प्राण है, प्राण चढ़ाने पर मिलती है,
सहज नहीं है यह स्वतन्त्रता, नहीं हाट में यह मिलती है;"[3]

चीन, महान चीन

---

1. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 23.
मैनेजर पांडेय.
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - संपादक नेमिचन्द्र जैन - 1980, पृष्ठ 375.
3. "धरती" - पृष्ठ 76.

समाजवादी व्यवस्था के अवरोधक गुलामी का अन्त करने में चीन का उदाहरण कवि की दृष्टि में प्रेरणाप्रद है। चीन के महान नेता माओ-त्से-तुंग साम्यवादी शासन - व्यवस्था की स्थापना के लिये कष्ट पर कष्ट सहने को तैयार हो गये। उनकी प्रशंसा करते हुए त्रिलोचन मुक्ति - संग्राम में माओ की बहादुरी और कष्ट-सहिष्णुता से पाठ पढने का सन्देश सर्वहारा को देते हैं -

"जाग्रत् ज्वालामुखी द्वार का था जहाँ डटे
खड़े रहे तुम, खड़े रहे तुम, खड़े रहे तुम
झंझावातों के झोंकों से उड़े, कुछ हटे,
पुनः लक्ष्य पर पहुँचे अच्युत, अड़े रहे तुम,
हानि, हानि पर हानि निरन्तर, कड़े रहे तुम," [1]

(माओ-त्से-तुंग)

साम्राज्यवादी शक्ति से लडनेवाले ग्रीक के धीरोदात्त वीरों की रोमांचकारी गाथा सुनाकर त्रिलोचन अपने देश की प्रगतिशील शक्तियों को स्फूर्ति प्रदान करते हैं -

"ग्रीस देश के जीवन का यह खून बहा है
खून हमें ललकार रहा है
हमको सदा पुकार रहा है
स्वतन्त्रता के लिए
रक्त दो" [2]

(शैतान और इनसान)

चीन की जनता की विजय भारतीय दलितों की विजय है। दलितों की इस संगठित शक्ति पर कवि का दृढ विश्वास है जो अपनी कविता द्वारा वे प्रकट

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 60.
2. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 163.

करते हैं। यह संगठित शक्ति ही समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की पहली शर्त है -

> "हिंदचीन की जय दोनों दलितों की जय है।
> इस जय में स्वतंत्रता नए गान गाती है
> निर्भय, मानव पंक्ति आज तैयार खड़ी है
> लाली फैल चली है संमुख सूर्योदय है।"[1]

"उन्हें उस जनता पर विश्वास है जो परिवर्तन में क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह करेगी, उन्हें देश की जनता के चरित्र की पहचान है।"[2]

हिन्दचीन की जय में भी मनुष्य प्रगति की आशामयी भाषा पढ़ने में कवि सक्षम हैं,

> "नई प्रतिज्ञा मानव भाषा दुहराती है
> आशा भीतर बाहर चारों ओर लड़ी है।"[3]

प्रगतिगामी देशों, व्यक्तियों तथा गाथाओं का गायन इसलिये त्रिलोचन ने प्रस्तुत किया है कि वे अपनी व्यवस्था में इसप्रकार के बुनियादी परिवर्तन के पक्षधर हैं। उनकी कविताओं में मात्र सत्ता विरोध ही बिंबित नहीं है। नव निर्माण की आकांक्षा उनकी कविताओं की आन्तरिक ऊर्जा है। इसे वे अपने परिवेश में पाना चाहते हैं। आशा की लहरें त्रिलोचन की कविताओं में बराबर स्पन्दित रहती हैं।

आधुनिक समाज में छटपटाता व्यक्ति

त्रिलोचन आधुनिक समाज की विसंगतियों से अत्यंत असन्तुष्ट हैं। सामाजिक जीवन के सभी अंगों से संबद्ध विसंगतियों के प्रति कवि ने अपनी सशक्त प्रतिक्रिया प्रकट की है। उनकी कवितायें इसके लिए साक्षी हैं। इस

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 43.
2. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 37.
   जीवन के प्रवाह में कविता - स्वप्निल श्रीवास्तव.
3. फूल नाम है एक - पृष्ठ 43.

सन्दर्भ में उनकी आत्मपरक कवितायें उल्लेखनीय हैं। त्रिलोचन ने अनेक आत्मपरक कवितायें लिखी हैं। उनकी आत्मपरक कवितायें निरी व्यक्तिपरक नहीं हैं। प्रस्तुत कवितायें व्यक्ति जीवन से संबद्ध होते हुए भी आधुनिक समाज की विसंगतियों के मध्य छटपटाते व्यक्ति की गाथा है। "त्रिलोचन की व्यक्ति परक कवितायें किसी स्तर पर आत्मग्रस्त कवितायें नहीं है और यह उनकी गहरी यथार्थ दृष्टि और कलात्मक क्षमता का सबसे बड़ा प्रमाण है"[1]

त्रिलोचन जीवन की समग्रता और संघर्षों की तीव्रता के दर्शक नहीं हैं, अनुभवी हैं और उसके हिस्सेदार भी है, "वे अपनी आत्मपरक कविताओं में "त्रिलोचन का प्रयोग प्रायः अन्यपुरुष में करते हैं और इस तरह बड़ी कुशलता से अपने "आत्म" से एक कलात्मक दूरी प्राप्त करते हैं"[2] उनके अपने अनुभव सामाजिक जीवन के विविध विसंगतिपूर्ण अंगों से प्राप्त हैं। इसलिए उनकी कवितायें आत्मपरक होकर भी इसी जनपद के जीवन से संबद्ध हैं और इनमें सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति हुई है। अपने प्रति निर्मम और आलोचकीय दृष्टि कलात्मक कुशलता का परिचायक भी है। स्वयं त्रिलोचन ने कहा है - "इसमें सन्देह नहीं कि इन तीनों में (सॉनेट) त्रिलोचन नामक का उपयोग है, किन्तु इस नाम के माध्यम से सामान्य सत्य का विशेषीकरण करने का प्रयास किया गया है।"[3] सामान्य का विशेषीकरण उनकी कविता का केन्द्रीय गुण माना जाता है।

त्रिलोचन अपने दुख को दूसरों के दुख से भिन्न नहीं मानते। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं -

---

1. डा. केदारनाथसिंह - त्रिलोचन की प्रतिनिधि कवितायें - भूमिका - 1985, पृष्ठ 7.
2. वही.
3. त्रिलोचन - "ताप के ताए हुए दिन" - भूमिका से - (कुछ शब्द).

"दर्द साथी मेरा पुराना है
मैं ने उस को निकट से जाना है
उस के नाते ही सारी दुनिया को
मैं ने अपना अभिन्न माना है।"[1]

यही सामाजिकता और अभिन्नता ही त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं का आधार है। उनकी कविता में प्रयुक्त "त्रिलोचन" उनकी कविता में प्रस्तुत नगई महरा, भोरई केवट, सकुनी बुढ़िया, भिखरिया, अतवरिया, जैसे पात्रों में से एक हैं। इस प्रसंग में नामवर सिंह का कथन ध्यातव्य हैं - "कविता के अन्दर स्पष्ट शब्दों में अपनी जितनी चर्चा त्रिलोचन ने की है, मुक्तिबोध तो क्या, किसी अन्य समकालीन कवि ने भी नहीं की। लेकिन इसके साथ - साथ यह भी सच है कि इतना अनाम और निर्वैयक्तिक कवि भी दूसरा नहीं है। वे अपनी कविता के विषय भी हैं और विषयी भी,कुलमिलाकर उनकी कविता का विषय वह जीवन है, वह समाज है जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच कोई आत्यन्तिक अलगाव नहीं है।"[2]

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताएँ यथार्थ से सीधे टकराती हैं। "त्रिलोचनवाली आत्मपरकता कहीं भी यथार्थ से नहीं कटी। यथार्थ भी यहाँ आत्मपरक होकर और भी उत्तेजक, उत्प्रेरक और समर्थशील हुआ है। तभी यहाँ उनकी कविताओं में व्यक्त आत्मपरकता मानवी संबंधों और सहानुभूति की आत्मपरकता हो गयी है और जन और जीवन के यथार्थ का मानवीय मूल्य हो गयी है। त्रिलोचन की प्रगतिशीलता इसी में सन्निहित है।"[3]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 135.
2. आलोचना - 82 - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 98.
   नामवर सिंह
3. केदारनाथ अग्रवाल - विचारबोध - 1980, पृष्ठ 160.

कुछ आत्मपरक कवितायें

जीवन का एक लघुप्रसंग

प्रस्तुत कविता में "मैं" त्रिलोचन हैं। उनकी शिक्षा का काल था। स्कूल जाने का समय हो आया था। उनको दादी, जिनको "बुआ" कहते थे, से "किताबें नई" लेने के लिये पैसा मांग रहा था। "बुआ ने कहा - मास्टर से कह देना पैसे आज नहीं मिले, कल तक मिल जायेंगे।" तब त्रिलोचन को माँ आई और कहने लगी,

पढ़ना अब बन्द करो इसका

"देखते हुए मक्खी लीलते नहीं बनता,
पढ़ लिख कर ही आखिर फलाने विक्षिप्त हुए,
पढ़ते-लिखते ही तीन-चार जने मर गये,
तुमको तो जैसे कहीं पत्ता भी नहीं खड़का,
बूआ ने कहा: इस बच्चे को
मैंने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से,
विद्या को दान कर दिया है,"[1]

इस कविता के तीनों पात्र जनपदीय जीवन को तीन बिन्दुएँ हैं। "एक ओर माँ की रूढि और दूसरी ओर बुआ का उदात्त मानवीय गुण। छे वर्ष के बालक त्रिलोचन के सामने दोहरा संकट था।"[2] त्रिलोचन इसी संघर्ष में पले और बढे। स्वयं कवि का जीवन प्रस्तुत कविता का विषय है। सचमुच त्रिलोचन के लिये मुक्ति का संघर्ष आरोपित नहीं। सर्वहारा वर्ग के सामने शिक्षा के बन्द द्वार देखकर तडपने वाले कवि की मानसिकता की झाँकी प्रस्तुत

---

1. "धरती" - जीवन का लघुप्रसंग - पृष्ठ 82.
2. "धरती" - अंक-6 - विष्णुचन्द्र शर्मा - 1984 पृष्ठ 50.

कविता में मिलती है। सर्वहारा वर्ग का व्यावहारिक, असली तजुर्बा ही यहाँ अभिव्यक्त है। विष्णुचन्द्र शर्मा के अनुसार, प्रस्तुत कविता "भारतीय गाँव के पुराने समाज के अन्दर से पैदा होनेवाले नये समाज के जन्म का आख्यान है। "मैं" वर्तमान सामन्ती व्यवस्था का संकटापन्न चरित्र है - "माँ" सामन्ती समाज की रूढि है - "बुआ" अकूत आशावाद का-किसान मानसिक संस्कृति के भीतर से जन्मे भविष्य की दृष्टि है।"[1]

अभावग्रस्त जीवन का रेखाचित्र

त्रिलोचन के अभाव ग्रस्त जीवन का चित्र काफी मात्रा में उनकी आत्मपरक - रचनाओं में प्राप्त होता है।

"बिस्तरा है न चारपाई है
ज़िंदगी खूब हम ने पाई है"[2]
"अन्न जल की बात है, हम ने त्रिलोचन को सुना,
आजकल काशी में है, कुछ दिन इलाहाबाद था"[3]
"यह नहीं, वह नहीं, अधिक मत पूछ,
ज़िंदगी बन गई हैं रोने की"[4]
"ठाट दुनिया में थे पर वे मुझे सुलभ कब थे
फूल मैं ने न कहीं कोई पड़ा पाया था"[5]
"सुख कोई चीज़ है सुनने को सुना है मैं ने,
मुझ से पृथ्वी ने कहा मैं ने तो जाना भी नहीं"[6]

एक अन्य प्रसंग में त्रिलोचन ने अभावग्रस्तता का जिक्र यों किया है -

1. "धरती" - अंक-6 - विष्णुचन्द्र शर्मा - पृष्ठ 52.
2. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 28.
3. वही - पृष्ठ 24.
4. वही - पृष्ठ 41.
5. वही - पृष्ठ 110.
6. वही - पृष्ठ 73.

"तब मैं हारा-थका नहीं था, लेकिन मेरा
तन भूखा था मन भूखा था.
.पहले खाना
मिला करे तो कठिन नहीं है बात बनाना."[1]

(स्पष्टीकरण)

यह तो सच है कि त्रिलोचन ने अपनी रचनाओं में खुद के नाम का प्रयोग किया और अपनी अभावग्रस्तता का रेखाचित्र खींचा है -

"वही त्रिलोचन है, वह--जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं. कपड़े भी कैसे -- फटे लटे हैं,

कौन कह सकेगा इस का यह जीवन चंदे
पर अवलंबित है"[2]

"चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से
छेदों वाला कुर्ता, रूखे बाल, उपेक्षित
दाढ़ी-मूँछ, सफाई कुछ भी नहीं, अपेक्षित
यह था वह था,
दीनता देह से लिपटी है,"[3]

"भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल
जिस को समझे था है तो है यह फ़ौलादी."[4]

भले ही अपनी अभावग्रस्तता ही इन कविताओं में चित्रित है, अभावग्रस्त समाज की दीन हीन अवस्था का यह सच्चा दस्तावेज़ है।

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 17.
2. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 11.
3. वही - पृष्ठ 12.
4. वही - पृष्ठ 13.

दुख की अभिव्यक्ति

त्रिलोचन ने दुख पर इतना लिखा है कि उन्हें दुख का कवि कहना तक उचित लगता है। लेकिन खूबी की बात यह है कि यह वैयक्तिक दुख नहीं, आध्यात्मिक भी नहीं उन्होंने अपनी कविताओं में "दुख" शब्द का प्रयोग बार बार किया है। यह दुख अपने जीवन संघर्ष से संबद्ध है। यही दुख का स्रोत भी मालूम पड़ता है।

"दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी,
आ के जो बैठ गया मुझ से उठाया न गया"[1]

"तुम जो बचने के लिए भाग रहे हो सब से,
ठौर है कौन जहाँ दुख न यह छाया होगा"[2]

उनके अनुसार दुख हृदय में आकर स्थान लेता है और चले जाने का नाम भी नहीं लेता और जहाँ जाये, वहाँ दुख छाया ही रहता है। दुख ने उन्हें चारों ओर से घेरा है और उसके लिये उन्होंने गाया भी है -

"दर्द ने एक हमीं को दिनानुदिन घेरा,
हम ने गाया है तो बस उस के लिए गाया है"[3]

दुख अभाव की उपज भी है -

"दुख क्या है जो पास पैसा है
ऐसे हाथों में जाम होता है"[4]

त्रिलोचन जी कभी दुख से हारनेवाले नहीं हैं -

"दुख हो, खेद हो, निराशा हो,
जो हैं गायक वे गान गाते हैं"[5]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 22.
2. वही - पृष्ठ 32.
3. वही - पृष्ठ 35.
4. वही - पृष्ठ 63.
5. वही - पृष्ठ 46.

दुख को जैसे-तैसे भुला देने में जीवन का कोई महत्व नहीं है, यही कवि का सिद्धांत है -

"दुख भूल गए, पी गया अपमान भी कितने,
मुझ से न कहो भूल के जीवन असार है"[1]

दिल का दुख, माथे पर हाथ फेरने से दूर नहीं होता, इसकी दवा और है -

"दर्द जी का है, सुना है दवा नहीं इस की
हाथ माथे पै ज़रा फेर दो तो कैसा हो"[2]

भीतर का विषाद ढँक देना मुश्किल है -

"भीतर का विष विषाद घट से छलकेगा ज़रूर
कब तकपलोगे यत्न से शोभा सँवार के"[3]

दुख की कहानी दूसरों को सुनाने और समाज से संबद्ध होकर उसे दूर करने में त्रिलोचन विश्वास रखते हैं -

"आदमी हो तो यहाँ सुनो भी सुनाओ भी
दुख घटाने का त्रिलोचन यही बहाना है"[4]

अट्टहास करके दुख को पराजित करना भी त्रिलोचन की अपनी रीति है -

"अट्टहास कर, अट्टहास कर, अट्टहास में
मन को गड़नेवाले दर्द डूब जाते हैं.
दुःखों का दुरतिक्रम घेरा
अट्टहास ही तोड़ सका है अभियानों में"[5]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 66.
2. वही - पृष्ठ 90.
3. वही - पृष्ठ 101.
4. वही - पृष्ठ 114.
5. दिगन्त - पृष्ठ 37.

कभी कभी दुख से पीडित त्रिलोचन एकाकीपन से ग्रस्त हो जाते हैं और सुख-वंचित-से अपनी अवस्था को खोल देते है -

"दुखों के बाणों से विद्ध हृदय जिस का हो
वह सुख को क्या समझ सकेगा
एकाकीपन दुख का चिर सहचर होता है;"[1]

त्रिलोचन अपने दुख से नहीं, दूसरों के दुख से भी पीडित होकर अपनी संवेदना को प्रकट करते हैं और उनके सहभोगी हो जाते हैं -

"अपना ही दुख मेरा होता तो क्या होता,

पथचारी आँखों के आँसू राह-चलते
मैं चुपके से चुन लेता हूँ जैसे माली
फूल चुना करता है"[2]

त्रिलोचन ने दुख का सूक्ष्म अध्ययन किया है और उसकी प्रकृति का अपना सिद्धांत भी निर्धारित किया है -

"दुख यों कोई चीज़ नहीं है, मन की छाया
है, लेकिन पैरों पर लेटे रहना इसकी
प्रकृति नहीं है, सिर पर चढ जाता है
........बुद्धि बल खो जाता है -
सूझ सिकुड जाती है .शब्दों में
ही हो जाता है पर्यवसित ध्रुव ध्येय जन्म का"[3]

दुख-पीडित व्यक्ति स्वयं बुद्धि के ह्रास होने से समझ-बुझ से वंचित हो जाता है और जीवन का ध्येय ही भूल बैठता है और कुछ शब्दों में ही अपना जीवन-लक्ष्य समाप्त कर बैठता है । कवि अपने दुख के आँसुओं से दूसरों का ताप

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 18.
2. शब्द - पृष्ठ 19.
3. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 30.

ठंडा कर देना चाहते हैं -

"दुख में आँखें भर आयें, झर जायें

वे आँसू जो औरों के तप ताप पर झरे
जीवन के पौधे इसकारण हरे-भरे"[1]

कभी कवि को लगता है, दुख अपने तकसीमित नहीं है, वह मानव-मात्र का अनुभव भी है, फिर उसे उखाड कर दूसरों के सामने रखने से क्या फायदा है -

"भाई, दुख के चक्कर में हर सभी पडे हैं,
कितना कहें, कितना न कहें, अगर हुआ तो
मौन भला है,
साँस साँस में दुख ही दुख है, ऐसे दुख को
चिंता करे कहाँ तक"[2]

मानव-मात्र का दुख ही यहाँ कवि के दुख का कारण है, यहाँ साँस-साँस में दुख है ।

दुख के मंथन से जो जीवन-सत्य खुलता है वही चिरस्थायी है, त्रिलोचन का यही मत है। दुख-निराशा के मंथन से मिली सच्चाई टिकती है -

"दुख-निराशा के मंथन से मिली सचाई
टिकती है, यह उडनेवाली नहीं कचाई"[3]

जीवन संघर्ष से जूझने वाले कवि का हृदय दुख के सामने पराजित नहीं होता, भले ही उसके प्रहार से वे दुखी हैं। प्रहार पर प्रहार सहने पर भी वे "बस" कहनेंवाले नहीं हैं, जीवन का घनीभूत दुख आशा के रविकर-स्पर्श से वर्ण-पुष्पों को विकसित करते हैं -

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 52.
2. वही - पृष्ठ 60.
3. वही - पृष्ठ 101.

"जीवन का दुख-बंध अजीवन के भीतर से
वर्णों में साकार हुआ है"[1]

टूटा हृदय भी नित्य सुरस से भर, मुखर हो जायगा क्योंकि दुख के सामने घुटने टेकना कवि का आदर्श नहीं है,

"कहीं से टूटा भी हृदय अपना नित्य अपना
रहेगा. भूले भी पथ पर इसे छोड़ कर जो
चलेगा, भोगेगा. क्षण क्षण कहानी अवश सी
सुनाएगी गाथा, मुखर मुख होंगे सुरस से"[2]

एकाकीपन की भावना

त्रिलोचन की कुछ आत्मपरक कविताओं में एकाकीपन की भावना दृष्टिगत होती है। यह वास्तव में स्वयं कवि के संघर्ष-भरे जीवन का परिणाम दीखता है जो विसंगतिपूर्ण समाज के बीच में होने से उत्पन्न है। लेकिन ऐसे क्षणों में भी कवि को अपनी समाज-संबद्धता ही मार्ग-दर्शन करती है और जीवन की अर्थवत्ता का बोध करा देती है। इसे आधुनिकतावादियों की घुटन या कुंठा नहीं कही जा सकती। त्रिलोचन के व्यक्ति-जीवन से संबद्ध हो कर भी यह एकाकीपन सामाजिक जीवन की विसंगतियों में छटपटानेवाले व्यक्ति की संघर्ष पूर्ण मानसिकता का प्रमाण है।

कवि जीवन को एकाकीपन के क्षणों में भी मूल्यवान रत्न समझते हैं, चाहे धूल में मिला हो, या फूल में। वह उसका सामूहिक मूल्य समझते हैं, एकाकीपन के क्षणों में भी वे अपने सामूहिक अस्तित्व को महत्वपूर्ण समझते हैं -

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 93.
2. चैती - पृष्ठ 36.

"आज मैं अकेला हूँ
अकेल रहा नहीं जाता

मोल-तोल इसका
अकेले कहा नहीं जाता"[1]

इस सिलसिले में श्री• रामेश्वरशर्मा का प्रस्तुत कथन संगत है - "उसका (त्रिलोचन का) सामूहिकता - प्रेमी मन एकाकीपन की चादर फाड़कर बाहर आ जाना चाहता है, क्यों कि वह जीवन के प्रति एक अत्यंत व्यापक दृष्टि रखता है।"[2] कवि के अनुसार व्यष्टि और समष्टि एक दूसरे से इतने संबद्ध हैं कि एक को छोड़कर दूसरे से सरोकार संभव नहीं -

"जो दुनिया से ऊबा तो अपने से ऊबा,
य' कैसी हवा है, य' कैसा असर है"[3]

इसलिए कवि बंधनों का मोह भी तोड़कर विश्व से संबद्ध होने को कहते हैं -

"बंधनों का मोह जल्दी छोड़ देना चाहिए,
विश्व से संबंध अपना जोड़ देना चाहिए"[4]

मानव जीवन की मुग्धता के प्रति आकृष्ट होकर भी कवि अपने दीन-हीन, निरक्षर और कला से अनभिज्ञ जनपद के प्रति बेचैन हैं और अपनी आतुरता प्रकट करते हुए कहते हैं -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 60.
2. "राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य" रामेश्वर शर्मा - 1953, पृष्ठ 125.
3. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 64.
4. वही - पृष्ठ 72.

"उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है"[1]

इन भूखे-दूखे निरक्षर, कलाहीन लोगों का ध्यान उन्हें इस बेचैनी और अशांति के बीच आश्वासन देता है -

"कुछ हो, तुम हो, ध्यान तुम्हारा, याद तुम्हारी
रहे, और कुछ न हो, रहूँगा मैं आभारी"[2]

जीवन पथ पर निस्सहाय पडे अपने लोगों के प्रति त्रिलोचन अपना लगाव किसी भी मौके पर प्रकट करते हैं। सामाजिक स्थिति में ऊँचे स्तर पर रहनेवालों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं कि तुमको अपना कहने का साहस मेरे मन में नहीं क्यों कि मेरे गन्दे कपडों से तुम्हें नफरत है, तुम घोडा-गाडी का सुख लूटकर तेज़-चलते हो तो मैं पैदल ही चलूँगा -

• "मुझ को जो पिछड़े हैं पथ पर
उन्हें देखना है, - मेरे इतने अपने हैं
जितने तुम हो नहीं. संग उन के तपने हैं
तप जीवन के, जाते देखा करते रथ पर
औरों को चुपचाप, पड़े हैं जहाँ वहाँ हैं,"[3]

धूल-धूसरित जीवन ही कवि का अपना है। वे विलास के प्रेमी नहीं हैं। मिट्टी और धूल से उनका संबंध आरोपित नहीं है। वह उनके -रक्तकणों में समाया हुआ है -

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 17.
2. वही - पृष्ठ 32.
3. वही - पृष्ठ 34.

मैं विलास का
प्रेमी कभी नहीं था, जब देखा तब केवल
जीवन देखा, धूल और मिट्टी से आया
था, रक्त के कणों में यह संबंध समाया
था कुछ ऐसा कि नदी की भी कल कल छल छल
मैं समाज में सुनता था, जिस का था खाना
बिना झिझक बेलाग मुझे उस का था गाना. [1]

दुनियादारी में कवि का पिछडापन

दुनियादारी में अपने पिछडापन के बारे में त्रिलोचन चिन्तित हैं। इसे व्यक्तिगत कमज़ोरी समझना ठीक नहीं है। सांस्कृतिक क्षेत्र की कुछ विसंगतियाँ इसके लिये उत्तरदायी लगती हैं –

अब तक मैंने बहुत उबारा
अपने को, पर अब तो सम्भव नहीं दीखता
और उबरना,
औरों से भी नहीं सीखता
दुनिया का व्यवहार, खेद, मैं नहीं जानता
अधिक शिष्टता।"[2]

(शिकायत)

दुनियादार बनने की कोशिश में कवि सफल लोगों का अनुकरण करने लगे तो भी इसमें वे असफल रहे –

---

1. उस जनपद का कवि हूँ – पृष्ठ 85.
2. तुम्हें सौंपता हूँ – पृष्ठ 59.

"मैंने जब देखा अब इन हाथों से आने
मैं भी कुछ कर सकता हूँ फौरन अपनाया
सफल जनों का ढंग, सुखी का सुख अपनाया
फिर भी न तो फल मिला न सुख, शांति के तप ने
मुझे तपा डाला।"[1]

कवि स्वयं मान लेते हैं कि उन्होंने अपना जीवन बहती लहरों पर वार दिया है। पहली उमंग में, यह भी दुनियादारी की दृष्टि से पराजय का कारण है -

"बहती लहरों को ही मैंने प्यार किया है
फिर भी, क्या जाने क्यों, शायद नादानी हो
यह हिसाबियों के हिसाब से, "[2]

भवसागर तरने के उपाय से अनभिज्ञ होने के कारण कवि उत्कंठित हैं। आदर्शोपासक होने के कारण दुनियादारी की कला में वे कुशल नहीं,

"लेन-देन का सत्य सुनाकर
दुनिया अपने पथ पर चलती है, जो चलते
हैं उसके अनुसार सफलता पा जाते हैं
आदर्शोपासक बेचारे पछताते हैं
कहीं छले जाने पर दुनियावाले छलते
हैं, उनको, जो आसपास हैं, भले भले हैं"[3]

कवि दुनियादारी को छोड़कर ऐसे चक्कर में पड़ा है जिससे समस्यायें उलझ जाती हैं। इसपर दूसरे लोग उनकी शिकायत करते हैं। आत्मालोचन से कवि अपनी दुनिया और उसकी समस्याओं को खोल देते हैं -

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 64.
2. शब्द - पृष्ठ 14.
3. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 21.

यह किस चक्कर में,
उलझे हो तुम, यह भी कोई बात है भला,
कारबार दुनिया का जैसा रहा है, चला
जाता है क्या रस पाओगे, तुम टक्कर में
पत्थर से, सिर ही फूटेगा और भी कई
काम पडे हैं, दुनिया-धंधा, बीबी बच्चे
अगर समस्यायें कातोगो, क्या पाओगे"[1]

दुनियादार से त्रिलोचन को नाकों दम हो गया है कि वह उनकी दुनियावी उपलब्धियों के बारे में प्रश्न करता है। तब कवि अपने अखंड विश्वास के बारे में कहते हैं -

जिधर तुम ने अपना कुटीर छाया है
उस के भीतर बाहर जो असीम आया है
यह भूमंडल और खमंडल और दिशाएँ
जिस की दिव्य ज्योति से भर जाएँ, सज जाएँ
वह अखंड विश्वास सहज ही अपनाया है।"[2]

दुनियावी उपलब्धियाँ कवि के लिये इतनी महत्वपूर्ण नहीं जितने अपने आदर्श। दोनों के बीच की खाई कवि को बेचैनी और संघर्ष का कारण है।

सामाजिक स्थिति में पिछडापन

कवि की हैसियत से त्रिलोचन को ऐसे लोगो से हिलना-मिलना पडता है जो सामाजिक स्थिति में ऊँचे तबके के हैं। इनमें ऐसे सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता भी हैं जो त्रिलोचन का रंग-ढंग, रहन-सहन और चाल-चलन को नीची दृष्टि से

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 54.
2. फूल नाम है एक - पृष्ठ 45.

देखते हैं। कवि का हेल-मेल सामाजिक स्थिति से घटिया समझे जानेवाले लोगों और उनके परिवेश से हुआ करता है। सामाजिक स्थिति की विरोध-भावना का एहसास उनकी कुछ आत्मपरक कविताओं से होता है –

"पहली नज़र बता देती है, सुख ने इसको
दृढ़काया को नहीं रचा है, पहला स्वर ही
कह देता है कि यह सभ्यता का वह स्तर ही
नहीं देख पाया है, भुवन विदित है जिसकी
मर्यादा, ग्राहकता, मृदुता, मोहकपालिश
एक आँच नहीं, सह पाते सभी सभ्यतम प्राणी
एक दंड भी यह केवल दलितों की
नालिश सुनता है, उनकी कहता है, यह धनियों का
कुछ ध्यान भी नहीं करता है, यदि ऐसा
न करे तो तरह दे दे तो इसको पैसा
न घटे, यों कहता है गायक दल बनियों का
जो हो, किन्तु त्रिलोचन जैसा रह आया है
वैसा उसने जान-बूझकर अपनाया है।"[1]

त्रिलोचन की कविता का प्रेरणास्रोत ही समाज के निचले तबके के लोग हैं, सर्वहारा हैं, इसपर असन्तुष्ट समाज के ऊँचे दर्जे के लोगों को प्रतिक्रिया भी उनकी कविता का विषय है।

"मेरी कविता कल मुसहर के यहाँ गई थी
मैं भी उसके साथ गया था

तब मुझसे नाराज़ हुए जो बड़े लोग थे

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है – पृष्ठ 61.

वे समझे मैं समझदार हूँ इसी राह से
चला करूँगा जिस पर सब चलते आए हैं
पर मुझको उसकी कुटिया ने और बुलाया
पाँव दबाकर अबकी उसके यहाँ मैं गया
टीहुर की बातें कानों पी असी साल का
जाड़ा बरसा घाम खा चुकी थी वह वाणी
अब केवल साँसें थीं अब केवल वाणी थी
अब केवल वह कुटिया थी जिसमें बैठा था।"[1]

(प्रेरणा)

जीवन-संघर्ष में अपराजेय मनुष्य

दूषित सामाजिक जीवन की विडंबनाओं एवं विसंगतियों के मध्य छटपटाते हुए भी अपराजेय और अटल रहनेवाले एक फौलादी मनुष्य का मुखर चित्र त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं से उभर उठता है। कवि निर्मम और निर्वैयक्तिक दृष्टि से अपने को सचेत करते हैं -

"अभी तुम्हारी शक्ति शेष है
अभी तुम्हारी साँस शेष है
अभी तुम्हारा कार्य शेष है

अपने में कर्मठता की स्फूर्ति भरते हुए कवि कहते हैं -

अभी रक्त रग रग में चलता
अभी ज्ञान का परिचय मिलता
अभी न मरण-प्रिया निर्बलता
मत अलसाओ"[2]

(तुम्हें पुकार रहा है कोई)

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 96.
2. "धरती" - पृष्ठ 43.

सुप्त कर्मशक्ति को जागृत कर जीवन-संघर्ष में भागीदार होने को अपने प्रति कवि संबोधन करते हैं -

"कोई काम नहीं कर पाया
कभी किसी के काम न आया
जगती से अन्न-जल-पवन लेता रहता हूँ
क्या मेरा जीवन जीवन है"[1]

कवि अपने को मनोबल बढ़ाकर बाधाओं का मुकाबला करने योग्य बनाते हैं -

"तन तो मन का एक यन्त्र है

तुम मन को निर्बल न बनाओ, हारो तो मत उसे हराओ
गिर कर स्वयं उसे न गिराओ
उसे उठाओ सबल बनाओ"[2]

कर्मपथ से अलग होकर विजय की प्रतीक्ष करने से अपने को रोकते हुए कवि -

"अलग हो कर कर्म-पथ से
प्रिय, विजय का नाम मत लो
लौटने का नाम मत लो"[3]

त्रिलोचन उन लोगों का गुण गाते हैं जिन्होंने कर्मक्षेत्र में जीतकर अपनी कर्मधीरता का परिचय दिया है -

---

1. "धरती" - कभी कभी सोचा करता हूँ - पृष्ठ 54.
2. "धरती" - अगर हारकर विचलित होकर - पृष्ठ 105.
3. वही - लौटने का नाम मत लो - पृष्ठ 107.

"जिसका कदम कदम जीवन की जय-यात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ

जिनके अप्रतिहत साहस की क्षण क्षण लिखते रहे कहानी
मैं सगर्व-सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ"[1]

कवि को जीवन की कठिनाइयों का पूरा पता है, उनमें से गुजर कर वे खडे हो गये, उनके सामने सिर झुका देना उनकी रीति नहीं, वे कठिनाइयों को चुनौती देनेवाले हैं -

"मुझे अच्छी तरह मालूम है कठिनाइयाँ क्या हैं,
गिरा, गिर कर उठा, सीखा न मैं ने सिर झुका देना-"[2]

अपने सहयोगी कवियों के प्रति संबोधन करते हुए त्रिलोचन कहते हैं कि विपत्ति के समय भी उन्होंने अपनी आस्था के प्रति दृढता प्रकट की थी।

"मित्रो, मैंने साथ तुम्हारा जब छोड़ा था
तब मैं हारा-थका नहीं था,
. मैं पैदल था,
विश्वासी था
मुझमें जितना बल था

अपनी राह चला. आँखों में रहे निराला,
मानदण्ड मानव के तन के मन के, तो भी
पीस परिस्थितियों ने डाला."[3]

---

1. "धरती" - पृष्ठ 108.
2. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 77.
3. दिगन्त - पृष्ठ 17.

2

कवि त्रिलोचन संघर्षपूर्ण जीवन – पथ पर एक गतिशील, साहसी राही है –

"जब जब दुख की रात घिरी तबतब मैं गाना
खुलकर गाता रहा,
देखकर घोर अँधेरा
दीप स्वरों के पथ पर रखता मैं एकाकी
बढ़ता रहा, रुका कब ? इनकी उनकी आशा
मुझे नहीं थी, विषपायी था, कभी सुधा की
चाह नहीं की,
आघातों–प्रत्याघातों में
नया सत्य आयेगा। हार नहीं मैं जीते
जी मानूँगा. और लडूँगा उत्पातों में"[1]

कवि को ऐसा जीवन मिला है जिसमें संघर्ष और दुख उनका स्वागत करता रहा। विपत्ति के निर्मम आघातों का लगातार सामना करना पड़ा। इस ओर वे संकेत करते हैं। आँसू के दानों से गुँथी दुख की माला पहनाते हुए नियति ने दुनिया में भेजते हुए कवि से कहा था –

"घोर पराजय में भी गान विजय के तू गा"

इस आदेश को कवि ने परिहास नहीं समझा था –

"समझ नहीं थी, तू ने तो परिहास किया था,
मैं ने उस को ज्यों का त्यों सच मान लिया था"[2]

विधि के निर्मम आघातों को सहकर, उसको नीरव कर्ममयी भाषा में उत्तर देने को स्वयं अपनी आत्मा का आह्वान कर रहे हैं कवि –

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 30.
2. उस जनपद का कवि हूँ – पृष्ठ 16.

"यह निर्मम आघात सहो, फिर उठो सँभल कर
आगे बढ़ो,
आँसू आए जो बह कर
उन्हें पोंछ दो. तुम्हें दैव ललकार रहा है,
उत्तर दो, अपनी अदम्यतम तत्परता से
नीरव कर्ममयी भाषा में, इस जीवन में
एक कर्म ही इन श्वासों की सस्वरता से
है अभिन्नतम,
टूटी डाली जिस पर झूला डाला
तुम ने, लेकिन धैर्य धरो,"[1]

कर्म-पथ का चिर यात्री जीवन के एकांत क्षणों में गाता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है, वह वज्रपात के डर से कहीं छिपता नहीं -

"चिर यात्री मैं, ठोकर खा कर नहीं झुका हूँ
क्षण भर को भी. मुझे आज तक झूठी आशा
कहीं नहीं भरमा पाई है, नहीं लुका हूँ
वज्रपात के डर से घर में."[2]

ठाठे मार रहे जीवन-संघर्ष के सागर में सब आधार तजकर कूदनेवाले कवि को लहरें ही लहरें चारों ओर दिखाई देती हैं, ऐसे लाचारी के क्षणों में भी कवि गाते हैं -

"रहे न रहे सहारा, जितना भी हो हारा
तू, बस हाथ पाँव मारे चल, देख किनारा."[3]

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 19.
2. वही - पृष्ठ 29.
3. वही - पृष्ठ 88.

त्रिलोचन के सामने मंजिल स्पष्ट थी, कैसे और किधर से जाना है, इससे अनजान, मगर निर्भयता और आत्मविश्वास उनकी अपनी पूँजी थी –

"चलना ही था मुझे – सड़क, पगडंडी, दर्रे
कौन खोजता,
श्रम पर अधिक बल दिया।
मुझे कहाँ जाना है यह जानता था,
कोई राही निर्भय हो कर
पाँव बढ़ाए, पहुँचेगा ही।"[1]

कोरी सहानुभूति और करुणा से कवि को आश्वासन नहीं मिला। उनपर उन्हें विश्वास भी नहीं था। वे हाथ पसारनेवाले नहीं रहे, वे शिलासंधि में जगनेवाले दूर्वांकुर थे।

"उड़ने वाले पक्षी को तो डाल मिल गई
हरे भरे फल वाले तरु को, मुझे क्या मिला –

कौन शिकायत करे, शिकायत से क्या होगा,
कौन सुनेगा, बहुचर्चित करुणा के सागर
कान भर दिए गए–और, मन भाग रहा है.
औरों के आगे मैंने क्या कितना भोगा
जीवन के क्षण में. रोती ही अच्छी गागर.
शिलासंधि में वह दूर्वांकुर जाग रहा है."[2]

कवि जीवन–संघर्ष में अपराजेय हैं, वे ऐसे लोगों में नहीं, जो आहें भर कर दिन काटते हैं और प्रतिबन्धों से पलायन करनेवाले पलायनवादी भी नहीं। जीवन संघर्ष को कठिन परीक्षाओं में खरा उतरकर अपराजेय बने रहनेवाले हैं –

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ – पृष्ठ 71.
2. शब्द – पृष्ठ 40.

"मैं हूँ उनमें नहीं, काट देते दिन आहें
भरकर जो, कहते हैं जो अच्छा होना था
वह सब कुछ हो चुका
धूप उडानेवाली राहें
अब आगे है, खाई, खंदक, नदियाँ नाले
वन, पहाड दुर्गम आगे आनेवाले हैं,
हाय, हाय क्या करें, होंश आ परवाले हैं
उड जाते, नीचे रह जाते सभी कसाले
कठिन परीक्षायें ले लेकर मित्र चिरंतन

मुझे मनुष्य बना दो, विजित न हो मेरा मन"[1]

त्रिलोचन जीवन पथ के आघातों और उत्पातों के प्रति आभारी हैं क्योंकि उनसे उनकी मिट्टी वज्र-कठोर हो गयी है,

"हँसकर, गाकर और खेलकर पथ जीवन का
अबतक मैंने पार किया है
.दुखों ने कितनी आँखें तरेरी,
लेकिन मेरा कदम किसी दिन कहीं न अटका
घोर घटा हो, वर्षा हो, तूफान, अंधेरी
रात हो अगर चलते चलते भूला भटका
तो इससे मेरे संकल्पों को कुछ झटका
लगा नहीं"[2]

ज़माने का कोडा कवि की नंगी पीठ पर सर्र-सर्र पडता था, फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोडा -

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 42.
2. वही - पृष्ठ 63.

"झेला नंगी पीठ जमाने का वह कोड़ा,
सर्र-सर्र जो पड़ता रहा न रुकना सीखा
जिसने, मैंने कब संचित धीरज छोड़ा
पल भर को भी"[1]

कवि निर्बल और मृत्यु-भय से आक्रान्त जीवन जीना नहीं चाहते, इसलिए वे कहते हैं -

"मुझे यथेच्छ पछाड़ो। अंग अंग को काटो।
यदि मैं निर्बल हूँ तो मेरा यही दण्ड है।

जो मृत्यु को देख कर भागे वही भंड है,
फाड़ कलेजा दो, फिर मेरा लोहू चाटो
लप लप जीभ बढ़ाते।"[2]

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं में, जीवन संघर्ष में छपपटाने के बावजूद हार न माननेवाले, एक अपराजेय साहसी योद्धा का चित्र विद्यमान है। दुर्गम जीवन पथ पर आघातों और प्रतिरोधों का आत्मवीर्य से मुकाबला करनेवाले एक गतिशील राही का चित्र प्रस्तुत कविताओं में ही मुखर है।

त्रिलोचन के आत्मसंघर्ष से युक्त रचनायें उनके अपने जीवन से संबद्ध होते हुए भी वह आधुनिक समाज की तमाम विसंगतियों और जटिलताओं के बीच जीनेवाले व्यक्ति की मुक्ति कामना की कवितायें हैं। उनमें एक ग्रामीण व्यक्ति, मेहनतकश आदमी, आसपास के वातावरण से पूरी तरह से प्रतिकूल होनेवाला, आस्थावान, निर्मम विद्रोही, व्यंग्यकार का परिचय स्वतः प्राप्त होता है। त्रिलोचन की प्रगति चेतना उनकी सामाजिक चेतना का सक्रिय

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 92.
2. फूल नाम है एक - पृष्ठ 70.

स्पन्दन है। इसलिये उसमें जीवन के लघुप्रसंगों से लेकर महत्वपूर्ण प्रसंगों का आकलन है। इस वैविध्य को उन्होंने अपने अनुभव की आग से और अधिक ताप दिया है। अतः वैचारिक उद्घोषों के बावजूद उनकी कविता की प्रगति चेतना एक सरल सीधे व्यक्ति की अभिव्यक्ति हो जाती है। त्रिलोचन की प्रगतिशील कवितायें हमारे आसपास घटित होती हुई घटनाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है।

अध्याय चार

त्रिलोचन की कविता में प्रेम की परिकल्पना

अध्याय चार

त्रिलोचन की कविता में प्रेम की परिकल्पना

प्रेम एक मूल्य है। मूल्यपरक संकल्प के रूप में आँकने पर उसका अर्थविस्तार होता है। प्रेम व्यवहार का महत्व तभी बढ़ता है। व्यक्ति-सन्दर्भ में भी उसका महत्व तथा निजता है। उसकी निजता को संरक्षित रखते हुए सामाजिक आचरण से संबद्ध करना अधिक समीचीन है। जैसे रांगेय राघव ने लिखा है - "प्रेम कभी भी व्यक्तिपरकता में समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि प्रेम का परिणाम इस संसार में सृष्टि का विकास है।

प्रेम अपने सामाजिक स्वरूपों में अभिव्यक्ति पाता है और वह उसके ही साधन का रूप बन जाता है"[1]। प्रेम की समाजसापेक्षता उसकी निजता के प्रतिकूल नहीं है। वह उसके सार्वजनीन और सार्वकालिक होने का अन्तर्भूत नियम है। यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि विभिन्न

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार - डा. रांगेय राघव - 1961, पृष्ठ 16.

युगीन परिस्थितियों में भावों और विकारों के प्रति हमारी मानसिकता अलग हुआ करती है। यह बात प्रेम के लिए भी प्रासंगिक है। अन्य भावों की तुलना में प्रेम में गहनता और सघनता है। वह हमारी नैतिक प्रतिक्रियाओं का प्रबल अंग है। इसलिए वह मूल्य है। हमारी मानसिकता की रचनात्मक अभिव्यक्ति है।

प्रेम कविता का एक मुख्य विषय है। अलग अलग युग में यहाँ तक कि अलग-अलग कवि मनीषियों द्वारा प्रेम के अलग-अलग स्वरूप का निरूपण हुआ है। जहाँ तक हिन्दी कविता में छायावाद का सवाल है प्रेम का एक तरल सौन्दर्य पक्ष प्राप्त होता है जो आध्यात्मिक अनुगूँजों से युक्त भी है। इस तरल प्रेमाभिव्यक्ति के स्थान पर प्रथमतः सामाजिक स्वर प्रगतिवादी युग में गूँज उठा। प्रगतिवादी दौर में समग्र मानव मूल्यों एवं मूल्यपरक संकल्पों का सामाजिक सन्दर्भ ही अधिक विवृत हुआ है।

प्रगतिशील साहित्य में प्रेम के स्वरूप का अध्ययन यहाँ संगत है। प्रायः सभी कवियों ने इस दौर में प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लेकिन वही जीवन का एकमात्र सत्य नहीं है। "प्रगतिशील कविता में प्रणय को जीवन की एक महती शक्ति के रूप में, एक महत्वपूर्ण सत्य के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन उसे एक मात्र सत्य या एकमात्र शक्ति लगभग घोषित नहीं किया गया"[1]। प्रगतिशील कविता में प्रेम को सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भ में देखा-परखा गया है। इसलिए वह व्यक्तिनिष्ठ भावविस्फोट मात्र नहीं है - "प्रगतिशील कविता में प्रेम के सत्य को जीवन के अन्य सत्यों के साथ जोडकर प्रस्तुत किया गया है, एक एकांत सत्य के रूप में नहीं" [2]।

---

1. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ. रणजीत - 1971, पृष्ठ 256.
2. वही - पृष्ठ 257.

जीवन की वास्तविकता को भूलकर प्रगतिशील कवि अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करता। "वह क्षयी रोमांस के प्रति अतिमोह में विलाप करने की जगह यहाँ पर अपने प्रेम को जगत और जीवन का प्रेमी बनाने के संदर्भ में उपयोग करता है" [1]। अतः प्रेम का खुलापन उनमें अनुभव किया जा सकता है। प्रगतिशील कविता की बहुत बड़ी उपलब्धि के रूप में उसकी स्वस्थ प्रणय भावना को रेखांकित किया जाता है। वह इसलिये स्वस्थ है कि उसको व्यक्ति सन्दर्भ और सामाजिक - सन्दर्भ के बीच में देखा गया है जिससे उसमें इतना खुलापन और ताज़गी है। साथ ही जीवन की निकटता का एहसास भी है।

प्रगतिशील कविता में प्रेमाभिव्यक्ति के सबसे स्वस्थ स्वरूप के प्रसंग में त्रिलोचन का नाम लिया जाता है। उनको कविता में प्रेम संकल्प का जो रूप अभिव्यक्त हुआ है उसे अपने में अलग और अनूठा कहा जा सकता है। प्रेम के व्यक्ति - सन्दर्भ में अभिव्यक्त अनुभूतियाँ बहुत ही मधुरोदार, तरल एवं आत्मीय हैं, साथ ही साथ सामाजिक सन्दर्भ में भी सबसे स्वस्थ और उदात्त हैं। जीवन - यथार्थ के परिपार्श्व में विकसित प्रेम व्यक्ति - सन्दर्भ में आकर पूर्णरूप से अन्तरंगता से सरोबार हो जाता है। त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति में न वासना की गंध है , न अलौकिकता या आध्यात्मिकता। इसमें शुद्ध, स्वस्थ, सरल एवं स्वच्छ मानवीय प्रेम का स्वरूप प्राप्त होता है जो स्फूर्तिदायक एवं प्रेरणाप्रद है।

त्रिलोचन के अनुसार मानव-जीवन में प्रेम का विशेष महत्व है - "प्रेम का प्रभाव मानव-जीवन में विशेष है। यह प्रेम समाज स्वीकृत हो तो क्या कहना" [2]। त्रिलोचन प्रेम के समाज स्वीकृत होने में बल देते हैं।

---

1. प्रगतिवादी काव्य डॉ. अजीतसिंह - 1984, पृष्ठ 133.
2. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - "रीतिकाल एक क्षयी युग" से उद्धृत-त्रिलोचन, पृष्ठ 87, 1978.

वे सामाजिक सन्दर्भ में प्रेम की प्रतिष्ठा मानते हैं। उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम को भव्य और उत्तम स्थान देते हैं - "उत्तरदायित्व में प्रेम के उभयपक्षों का सामाजिक लगाव दिखाई देता है, यह लगाव ही प्रेम की अन्योन्यता को सर्वमान्यता और व्यापकता देता है, अर्थात् प्रेमाश्रित जीवन, जीवन भूमि में नाना उतार-चढ़ावों को लेकर विकसित होता है"[1]।

त्रिलोचन की, प्रेम की अपनी अवधारणा में, सामाजिकता और व्यक्ति सापेक्षता का समन्वय है। वे आगे कहते हैं - "जीवन और जगत से निरपेक्ष, मात्र प्रेम ही बड़ी अथवा महान कविता का विषय नहीं हो सकता"[2]। संक्षेप में, उनकी हर रचना में चाहे प्रेमपरक हो या प्रकृति परक समाज सापेक्षता पहली शर्त है।

स्वस्थ प्रेम का चित्रण

त्रिलोचन के काव्य में प्रेम का सबसे स्वस्थ रूप मिलता है। इसे प्रेम के क्षेत्र में चित्रित सबसे निश्छल और प्रेरक रूप कहा जा सकता है। त्रिलोचन ने प्रेम को अपने संकुचित अर्थ में न लेकर, वैयक्तिक सीमा में न बाँधकर, मानव जीवन की व्यापक भूमियों में प्रशस्त आकृतियों में चित्रित किया है। इसलिये उनमें अन्य आधुनिक कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति में लक्षित कुंठा, संत्रास, निराशा तथा कसक लेशमात्र भी नहीं है। "त्रिलोचन की दृष्टि में प्रणय की वास्तविक सार्थकता यही प्रतीत होती है कि वह व्यक्ति के जीवन में राग-रस का संचार करता हुआ, उसे सामाजिक पथ की ओर क्रियाशील बनावे"[3]।

1. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - "रीतिकाल एक क्षयी युग" - त्रिलोचन - पृष्ठ 87, 1978.
2. वही - पृष्ठ वही.
3. प्रगतिशील काव्य - उमेशचन्द्र मिश्र - 1966, पृष्ठ 250.

"मेरी दुर्बलता को हर कर
नयी शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कर्म-क्षेत्र में बढ़ूँ सँभल कर
तब से मैं अविरत बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा"[1]

(मुझे जगत-जीवन का प्रेमी)

त्रिलोचन का प्रेम जीवन में निराशा नहीं भरता मगर जीवन में रुचि और लय भरने में समर्थ है। "त्रिलोचन का प्रेम इतना स्वस्थ और संतुलित है कि वह संसार में आग लगाने की जगह संसार को मोही बनाता है"।[2]

"मुझमें जीवन की लय जागी
मैं धरती का हूँ अनुरागी
जड़ी भूत करती थी मुझको
वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी
मैं निर्भय संघर्ष-निरत हो
बदल रहा संसार तुम्हारा"[3]

(मुझे जगत जीवन का प्रेमी)

त्रिलोचन का यह प्रेम-सिद्धांत कोरा आदर्श मात्र नहीं है। उनका जीवन दर्शन ही है। प्रेम सामाजिक धरातल पर ही कल्याणकारी हो सकता है,

---

1. "धरती" - पृष्ठ 11.
2. प्रगतिशील काव्य - डा. अजितसिंह - 1984, पृष्ठ 133.
3. "धरती" - पृष्ठ 11.

यही उनकी सम्मति है। "वैयक्तिक प्रणय से जीवन के कर्मक्षेत्र में प्रवेश होने की यह प्रेरणा इसी कारण कृत्रिम अथवा अस्वाभाविक नहीं है कि कवि त्रिलोचन ने प्रारंभ से ही प्रणय को इसी रूप में देखा है"।[1]

कौमार्य और निष्कलंक प्रेम

त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति में अद्भुत सच्चाई का स्पर्श है। स्मृतिरूप में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति जब होती है तब ज़्यादा हृदयस्पर्शी हो जाती है। कौमारावस्था में प्रेम का जब उदय होता है, तब मनुष्य की हृदय-तंत्रियाँ झनक उठती हैं और विचित्र अनुभूतियाँ हृदय में घर कर लेती हैं, इसी का यथार्थ चित्रण त्रिलोचन करते हैं। बचपन की ये अनुभूतियाँ तभी ज़्यादा सार्थक और मर्मस्पर्शी होती हैं जब जीवन की प्रौढ़ावस्था में इनकी याद की जाती है।

"तुम्हें याद है, उसी दिन बाबा के पोखर में,
हम तुम दोनों साथ स्नान करने पहुँचे थे"[2]

(तुम्हें याद है)

बाबा के पोखर में स्नान को आए कुमार-कुमारी अकस्मात् मिल जाते हैं और कुछ बातें करने को दिल तरस जाता है। मगर संकोच के कारण बोल नहीं पाते। अकेले में मिलने से दिल ज़्यादा धड़कने लगता है, साथी जो थे पहले ही स्नान कर चले गये थे।

---

1. प्रगतिशील काव्य - उमेशचन्द्र मिश्र - 1966, पृष्ठ 250.
2. "उस जनपद का कवि हूँ" - पृष्ठ 26.

"पहले बोल न बात हुई बाहर या घर में ,
इधर उधर के तीरों पर बैठे सकुचे थे" [1]

प्रेम की इस प्रारंभिक अवस्थामें प्रेमिका से बात करने की उत्कट इच्छा एक ओर, संकोच का दुर्गम प्राचीर-सा दूसरी ओर, बीच में पडे कुमार की अवस्था का अनुमान किया जा सकता है। अपने प्रेम को प्रकट करने के प्रयास में माला बनाकर रख लेता है। लेकिन देने में असमर्थ, बोलने में असमर्थ है तो प्रेमोपहार देने को क्या सोचना

"खिली कुईं थी
तट पर, मैं ने तोड़ तोड़ कर हार बनाए
दस या बारह, रखा, हला पानी में. देखा
इधर उधर" [2]

(तुम्हें याद है)

"मर्द" होकर भी पोखर की आर-पार जाने की उसकी असमर्थता पर चुटकी लेनेवाली प्रेमिका के सामने निरुत्तर हो जानेवाले प्रेमी का चित्र पाठकों के हृदय को आकर्षित कर सकता है।

त्रिलोचन की यह प्रेमाभिव्यक्ति निष्कलंक कौमार्य की वास्तविक प्रेमानुभूति के तौर पर सबका हृदय हर लेती है।

प्रथम अनुराग

त्रिलोचन के प्रेम का स्वाभिमान और मानवता से नाता है और उसमें ऐसा टोना है जिससे दुनिया की राई-रत्ती अलग दिखाई देने लगती है और छाती में नया राग उपजता है कि दुनिया को पत्ती-पत्ती इन्द्रधनुष - सी लहराने लगती है। जब जीवन में प्यार पहले पहल आ

---

1. "उस जनपद का कवि हूँ" - पृष्ठ 26.
2. वही - पृष्ठ 26.

जाता है तब जीवन की कायापलट-सी हो जाती है, इसकी उत्पत्ति को और उससे उत्पन्न गतिविधियों को कली-भौंरे के माध्यम से कवि अभिव्यक्त करते हैं -

"जब भौंरे ने आकर पहले पहले गाया,
कली मौन थी. नहीं जानती थी वह भाषा
इस दुनिया की, कैसी होती है अभिलाषा
इससे भी अनजान पड़ी थी."[1]
(प्यार)

अभिलाषाओं से, दुनिया की भाषा से अनजान जीवन अवस्था में यह जीवन का अतिथि आया है,

"ज्ञान का सहज सलोना
शिशु जिसको दुनिया में प्यार कहा जाता है,
स्वाभिमान - मानवता का पाया जाता है
जिससे नाता"[2]
(प्यार)

प्यार के प्रथम आगमन से जीवन का ताना-बाना ही बदल जाता है -

"जिससे यह सारी दुनिया फिर राई-रत्ती
और दिखाई देने लगती है. क्या जाने
कौन राग छाती में लगता है अकुलाने
इन्द्रधनुष-सी लहराती है पत्ती पत्ती"[3]
(प्यार)

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 9.
2. वही.
3. वही.

इसी के साथ कवि प्यार के बारे में अपना मत भी यों व्यक्त करते हैं –

"बिना बुलाये जो आता है प्यार वही है"[1]

जो प्यार बिना बुलाए आता है वही सच्चा प्यार है।

जीवन की गहराई से ही त्रिलोचन का प्रेम उभर आता है। प्रथमानुराग के आगमन से युवा-हृदयों में उमगती अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में भी कवि का जीवन-अनुराग गुंफित होता है। "प्रेम कवि के जीवन में नई प्रेरणायें लेकर आया है, यहीं से उसकी वैयक्तिक चेतना का विस्तार और परिष्कार होता है"।[2]

प्रेम का उदय

त्रिलोचन के लिये प्रेम दो जीवन-धाराओं का संश्लेषण है, आपसी विलयन है। यह धारा न केवल दो व्यक्तियों तक सीमित है। सारा सौर-मंडल और विपुला पृथ्वी इससे आप्लावित है, प्रेम के उदय और विकास का सुन्दर बिंब वे "प्राणों का गान" कविता में प्रस्तुत करते हैं –

"दर्शन हुए, पुनः दर्शन, फिर मिलकर बोले,
खोला मन का मौन, गान प्राणों का गाया,
एक दूसरे की स्वतन्त्र लहरों को पाया
अपनी अपनी सत्ता में. जैसे पर तोले

"दो कपोत दायें-बायें-स्थित उड़ते उड़ते
चले जा रहे दूर क्षितिज के पार हवा पर
उसी तरह हम प्राणों के प्रवाह पर स्वर भर
लिख देते अपनी कांक्षाएँ."[3] (प्राणों का गान)

1. दिगन्त – पृष्ठ 9.
2. आधुनिक हिन्दी काव्य – डॉ. भगीरथ मिश्र – 1973, पृष्ठ 505.
3. दिगन्त – पृष्ठ 12.

ये दो कपोत संतुलित पदों से चलते और प्राणियों के प्रवेग की मौन परीक्षा करते चलते हैं, साथ- साथ नये स्वप्न भी पलते हैं। ये दो लहरों की जीवन-धारा अपने तक सीमित नहीं, अपने में अलग नहीं, सौर-मंडल और विपुला पृथ्वी से संबद्ध है। यों यह जीवन धारा समस्त जीवन और प्रपंच जीवन को आप्लावित करती भी है। यह जीवन संबद्धता त्रिलोचन की हर अनुभूति का आधार है -

"विपुला पृथ्वी और सौर-मण्डल यह सारा
आप्लावित है , दो लहरों की जीवन-धारा"[1]
(प्राणों का गान)

"दिगन्त का कवि प्रेम और सौन्दर्य का उपासक भी है, लेकिन उनकी हर अनुभूति अपने चारों ओर की मानवता की मंगल कामना से जुडी है"।[2]

बार-बार दर्शन से प्रेमी - प्रेमिकाओं के मन का मौन खुलना, प्राणों का गान गाना, एक दूसरे की लहरों को अपनी अपनी सत्ता में पाना, दो-कपोतों-जैसे उडना, प्राणों के प्रवाह पर अपनी कांक्षाओं को लिखना, पथ के मोड़ों पर मुड़ना, संतुलित पदों से चलना यह बिंब एक अपूर्व छाप पाठकों पर छोड देता है।

प्रेम का तटस्थ स्वरूप

त्रिलोचन प्रेम के आवेग में बहे जाने के पक्ष में नहीं हैं। वे प्रेमिका के प्रति सच्ची प्रेमभावना रखनेवाले हैं। आत्मीयता और सच्चाई उनकी प्रेम-भावना का स्रोत है। लेकिन उनका प्रेम आडंबरहीन है। वे प्रेम की अभिव्यक्ति में अभिनय से काम नहीं लेते। अपने इस आदर्श को वे यों व्यक्त करते हैं - त्रिलोचन का प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है -

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 12.
2. समालोचक - मई - 1958, पृष्ठ 33.
कवि त्रिलोचन शास्त्री - चन्द्रबली सिंह.

"ऐसा मत समझो तुमको मैं नहीं चाहता.
तुम्हें चाहता हूँ अपने प्राणों से बढ़कर
यह अत्युक्ति नहीं है. लेकिन मैं कराहता
कभी नहीं, "[1]

(तुम्हें चाहता हूँ)

वे प्रेम को हृदय-हृदय को बात मानते हैं। प्राचीन काल के विरहियों के समान प्रेम के आँसू बहाकर नदी-नाले भरने में नहीं, यथार्थ प्रेम की अभिव्यक्ति करने में वे विश्वास रखते हैं –

"नित रंगमंच पर ऊँचे चढ़कर
विरही लोगों के, वियोग की कविता पढ़कर
आँसू नहीं ढालता जिससे नदियाँ, नाले,
पोखर, सागर भर जायें. "[2]

(तुम्हें चाहता हूँ)

पहलेवाले अभिनय कुशल प्रेमी अपने प्रेम का प्रभाव प्रेमिका पर जमा देने के लिए जिस कुशलता का प्रयोग करते थे, वह भी त्रिलोचन के प्रेमी के वश का काम नहीं। वह इतना कहता है कि "मैं ममतावाला हूँ", इसीसे प्रेमिका को संतृप्त होना चाहिए। वे अपने प्रेम का यों परिचय देते हैं –

"पहलेवाले
प्रेमी अभिनय-कुशल अवश्य हुआ करते थे,
कवियों की रचनाओं में सैकड़ों हवाले
तुम्हें मिले होंगे वे सब जीते मरते थे
स्वेच्छापूर्वक. उन लोगों का निपट निराला
कौशल मेरे पास कहाँ ? हूँ ममतावाला"[3]

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 14.
2. वही.
3. वही.

यहाँ पर त्रिलोचन अभिनय की कुशलता से अपने प्रेम की सच्चाई की स्थापना करने का प्रयास करनेवाले "पहले वाले" प्रेमियों पर व्यंग्य करते हैं। "स्वेच्छापूर्वक" शब्द से व्यंग्य स्पष्ट हुआ है। "हूँ ममतावाला" के प्रयोग से त्रिलोचन का प्रेमी अपने प्रेम के सहज सरल-सच्चे स्वरूप की अभिव्यक्ति करते हैं। वे कहना यह चाहते हैं कि जो आँसू बहाकर और अभिनय कर प्रेम को प्रकट करना चाहते हैं उनके प्रेम की सच्चाई पर सन्देह करना पड़ता है। "त्रिलोचन के प्रेम का दर्द भी आत्मदाह या क्षय की ओर नहीं ले जाता"।[1] प्रस्तुत निरलेप, तटस्थ प्रेम को देविशंकर अवस्थी "मैटर ऑफ फैक्ट प्रेम" कहते हैं।[2] प्रेम की अनुभूति भी कवि के हृदय की अमूल्य निधि है। लेकिन उसका प्रदर्शन करना वे नहीं चाहते। इसकी पुष्टि करते हुए देवीशंकर अवस्थी कहते हैं - "आज का कवि पुरानी भावुकता से दूर हटता है, पर प्यार और सहानुभूति जैसी भावनायें उसके हृदय की वैसी ही अमूल्य निधियाँ हैं, वह उनका प्रदर्शन नहीं करता तथा तटस्थ भाव से भी देख सकता है"।[3] इससे रचनाकार की अभिव्यक्ति की सशक्तता बढ जाती है।

प्यार पर अस्तित्व खोने की बात करनेवाले लोग भी वास्तव में अपनी इच्छा और अभिलाषा की धारा में बहते रहते हैं। यहाँ पर कवि त्रिलोचन ऐसे प्रेमियों के खोखलेपन की पोल खोल देते हैं -

"प्यार किस चीज़ को कहते हैं लोग
क्या इसी दुनिया में रहते हैं लोग
कभी इच्छा है कभी आशा है
तेज़धारा है और बहते हैं लोग"[4]

---

1. समालोचक - मई 1958, पृष्ठ 27. चंद्रबली सिंह
2. रचना और आलोचना - देवीशंकर अवस्थी पृष्ठ 74.
3. वही.
4. "गुलाब और बुलबुल" - पृष्ठ 131.

अपनी इच्छा की पूर्ति चाहनेवाले ये प्रेमी प्रेम के लिये सबकुछ लुटाने का अभिनय करते हैं। इसप्रकार प्रेम के प्रति तटस्थता और निर्लिप्तता त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति की एक खूबी है।

प्रेम का यथार्थवादी रूप

प्रेमिका की याद करते हुए एक प्रसंग में त्रिलोचन का प्रेमी कहता है –

"मुझे ध्यान तुम्हारा
नहीं इसलिये आया है कि तुम्हारे जैसा
रूप दिखाई नहीं दिया है अथवा वैसा
है स्वभाव ही नहीं किसी में अथवा हारा
पंचबाण से हूँ। इनमें नहीं एक भी
बात सही है मन का ऐसा कुछ खोया है
अब की मैंने, जैसा कभी नहीं खोया है
एकाकीपन बुरा नहीं, झेलते हैं सभी"[1]

(याद तुम्हारी आयी है)

ये पंक्तियाँ प्रेम के यथार्थवादी रूप को स्पष्ट करती हैं। प्रेमिका या प्रेमी के गुणों को बढा-चढाकर आँक देना प्रेम की एक सहज कमज़ोरी मालूम होती है। यहाँ कविने इसपर विजय पायी है और प्रेमिका को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेम हृदय की एक सहज वृत्ति है। उसके नष्ट होने पर या प्रेमिका से वियुक्त रहने पर हृदय को कुछ खोया सा लगता है। बस वही यथार्थ है। यह स्पष्ट करते हुए त्रिलोचन ने उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखी हैं। उनके लिये प्रेम का आधार रूप ~~रूप~~ कामुकता नहीं है।

---

1. "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – पृष्ठ 20.

सामाजिक प्रेम

त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति अन्य प्रगतिशील कवियों की प्रणयपरक कविताओं की तुलना में अपना अलग वैशिष्ट्य रखती है। इसी उपलक्ष्य में रामेश्वरशर्मा ने इसे "सामाजिक प्रेम" कहा है। "त्रिलोचन के काव्य में हिन्दी में पहला सामाजिक प्रेम का चित्रण है जिसमें प्रेम, विलासिता और शारीरिक भूख से परिचालित न होकर साहचर्य तथा श्रम पर आधारित है।[1] त्रिलोचन की कविता में श्रम के बीच में भी प्रेम प्रेरक रहता है -

"आये न बहुत दिन बादल
होता नित घाम भयंकर
हरियाली रही न निर्मल
और लगी फसल मुरझाने
आखिर अपने बल ले कर
मिल कर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी"[2]

(मिलकर वे दोनों प्रानी)

यहाँ श्रम और प्रेम साथ साथ चलते दिखाई पड़ते हैं। सिर के ऊपर कड़ी धूप, हवा भी रुक गई है। दोनों प्रेमी - प्रेमिका दूब के ऊपर पाँव रखकर पानी खींचते है। साँसें चल रही है। कभी कभी कपसीले बादल धूप से उनकी रक्षा कर देते हैं। कभी हल्की पुरवैया आकर उनका पसीना सुखा जाती है और वे हृदय फुलाकर अधिक श्रम करने लगते हैं और कभी कभी बातें करते हैं -

---

1. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य रामेश्वर शर्मा - 1953, पृष्ठ 121.
2. "धरती" पृष्ठ 18.

"पल दो पल नयन मिलाते
चल की परिभाषा करो" [1]

उनके प्रेम के बारे में कवि स्वयं कहते हैं -

"वे श्रम जीवन- पर निर्भर
यह उनका प्यार अनोखा
है उत्पादक, है दृढ़तर" [2]

(मिलाकर वे दोनों प्राणी)

गैर -सामाजिकता को प्रेम को पहली शर्त माननेवाले सिद्धांत का त्रिलोचन अपनी प्रस्तुत प्रेमाभिव्यक्ति से विरोध करते दिखाई पड़ते हैं। "प्रेम और श्रम की यह मिश्रित चेतना हिन्दी काव्य के लिये बिलकुल नई है, हालावादी का काल्पनिक बुलबुल तरु की डाली पर से यौवन का संगीत सुना देती थी, पर त्रिलोचन का प्रेम सहयोग भूमि पर आधारित होकर श्रम की संबद्ध भावना से परिचालित है" [3]

इन प्रेमी-श्रमिकों का जीवन ही विश्राम रहित है, कड़ी मेहनत में भी जीवन में आस्था और उत्साह भरा रहता है, प्रेम ही वह संजीवनी शक्ति है जो उनको स्फूर्ति प्रदान करती है -

"है अचल पवन, साँसें चल
चल रहा पसीना अविरल
चलती है बेड़ी प्रतिपल
विश्राम नहीं है उनको
है आज नहीं उनको कल
मिल कर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी" [4]

(मिलकर वे दोनों प्रानी)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 20.
2. "धरती" - पृष्ठ 20.
3. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - रामेश्वरशर्मा -

जग-हित में तन-मन लगाकर जग जीवन को सींचनेवाले ये प्रेमी-श्रमिक अपनेपन से उन्मन रहते हैं। सामाजिक जीवन की तरक्की और प्रगति ही उनमें अपूर्व उत्साह भर देती है -

"वे सींच रहे जग जीवन
जगहित में उनका तन-मन
वे फिर भी निर्बल - निर्धन
विश्वास न उनको अपना
वे अपने - पन से उन्मन
मिलकर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी"[1]

(मिलकर वे दोनों प्रानी)

श्रम करने पर भी निर्धन, निर्बल होकर भी सामाजिकता, जग-हित साधन ही उन्हें श्रेय और प्रेय है।

ये प्रेमी-श्रमिक तरुछाया में कभी कभी विश्राम करते हैं और आपस में थकान हरकर कर्म-शक्ति को बढा देते हैं। यहाँ प्रेम और श्रम की धारा साथ साथ बहती हुई उनके जीवन एवं लोक हित को सींचती रहती है।

"विश्राम ज़रा करने को
आराम ज़रा करने को
नव कर्मशक्ति भरने को
आये हैं तरु छाया में
अपनी थकान हरने को
मिलकर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी"[2]

(मिलकर वे दोनों प्रानी)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 20.
2. वही.

किसानी प्रेम

त्रिलोचन की कविता किसानी चेतना से सराबोर है। प्रकृति के मुग्ध वातावरण के प्रति कवि की मानसिकता भी इसी किसानी चेतना से युक्त है -

"ऋतु शरद और
नवमी तिथि है
है कितनी कितनी मधुर रात
मन में बस जाती शीतलता
है अभी नहीं जाड़ा कोई
बस ज़रा ज़रा रोएँ काँपे
तन-मन में भर आया उछाह
हाँ, दिन भी आज अजीब रहा -
रिमझिम रिमझिम पानी बरसा"[1]

(चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है)

इसी किसान चेतना से युक्त प्रेम का चित्रण इन पंक्तियों में जीवन्त हुआ है। खेत और उसके परिवेश, खेतों और उसकी मिट्टी की सुगन्ध, बढ़ते पौधों का लहलहाना और उनके बीच बढ़ता प्रेम सब यहाँ दृश्यमान होता है -

"कुछ सुनती हो,
कुछ गुनती हो -
यह पवन, आज यों बार बार
खींचता तुम्हारा आँचल है
जैसे जब तब छोटा देवर
तुम से हठ करता है जैसे
तुम चलो जिधर वे हरे खेत।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 30.

"वे हरे खेत -
है याद तुम्हें -
मैंने जोता तुमने बोया
धीरे धीरे अंकुर आये
फिर और बढ़े
हमने तुमने मिल कर सींचा
फैली मनमोहन हरियाली
धरती माता का रूप सजा
उन परम सलोने पौदों को
हम दोनों ने मिल बड़ा किया
जिनको नहलाते हैं बादल
जिनको बहलाती है बयार
वे हरे खेत कैसे होंगे
कैसा होगा इस समय ढंग
होंगे सचेत या सोये से
वे हरे खेत"[1]

(चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है)

खेत और उसके परिवेश में बढती खेती के साथ कदम बढानेवाले किसान - दंपति के प्रेम का विकास इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है। अपनी खेती को लहलहाते देखकर खुश होनेवाले किसान, किसानी प्रेम पर आधारित ग्रामशक्ति की विजय से भी आह्लादित होता है। यह प्रेम भी त्रिलोचन की किसान चेतना का अभिन्न अंग है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 31-32.

संघर्षपूर्ण जीवन में प्रेम

त्रिलोचन की प्रेमपरक कविताओं में कुछ ऐसी हैं जो जीवन संघर्ष में पड़कर प्रेमिका से दूर, अकेली मन: स्थिति को चित्रित करती हैं। त्रिलोचन स्वयं नौकरी की खोज में या नौकरी करते हुए घर से बाहर रहते थे। जीवन-संघर्ष ही इस बिछुडन का कारण है। इस स्थिति को प्रकट करनेवाली कवितायें हृदय को छूनेवाली और सच्चाई को अधिक मुखरित करने वाली हैं।

परदेशी मज़दूर अपनी पत्नी के नाम जो सन्देश भेजता है उसका कविता-रूप त्रिलोचन की "सचमुच इधर तुम्हारी याद" में मिलता है। "उसकी कठिन जिन्दगी और मन की दशाओं को जिस कुशलता से प्रकट किया गया है वह केवल त्रिलोचन ही कर सकते हैं। यह उनकी यथार्थवादी कला का एक उदाहरण है"।[1]

जीवन यापन के लिये कड़ी मेहनत करते हुए अपनी प्रियतमा की याद भी कभी-कभी खो जाती है, इस यथार्थ को स्वीकार करते हुए कवि कहते हैं -

"सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ. पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना बराबर चित्त उचटना."[2] (आरर डाल)

इस संघर्ष पूर्ण जीवन में प्रेमिका से दूर रहना तो पड़ता है, तिसपर उसकी याद तक खो जाती है -

---

1. आलोचना - जुलाई-सितंबर, 1987, पृष्ठ 24.
   जीवन की लय में मुक्ति का राग - मैनेजर पांडेय.

2. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 54.

"आए दिन की बात है. वहाँ टोटा टोटा
छोड़ और क्या था. किस दिन क्या बेचा-कीना.
कमी अपार कमी का ही था अपना कोटा,
नित्य कुंआ खोदना तब कहीं पानी पीना"

फिर भी प्रेमिका को धीरज बँधाते हुए प्रेमी -

"धीरज धरो, आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर कुछ कर पाऊँगा"[1]

(आरर डाल)

ये पंक्तियाँ जीवन की परेशानियों से घुटन का अनुभव करनेवाले विवश प्रेमी के प्रेमपूर्ण हृदय को खोल देती हैं। "त्रिलोचन की प्रेम कवितायें हों या प्रकृति परक कवितायें या वैसी कवितायें जिसमें वे रोज़ रोज़ की ज़िन्दगी की परेशानियों का चित्रण करते हैं"[2]।

प्रेमिका से बिछुडे प्रेमी के हाल का एक अन्य प्रसंग देखिये -

"आज मैं कहीं और तुम कहीं। लाचारी है।
मिले कि बिछुड़े। बिछुड़न में फिर फिर मिलने की
इच्छा जगती रही और मन इतना टेकी
रहा कि तड़पा किया। कौन अत्याचारी है
जो मेरे अधिकार हर रहा है, भारी है
जिस के कारण लघु साँसा भी।"[3]

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 54.
2. "समीक्षा" - अक्तूबर-दिसंबर, 1986, पृष्ठ 15.
   अपूर्वानन्द - "फूल नाम है एक" की समीक्षा से
3. "फूल नाम है एक" - पृष्ठ 32.

प्रस्तुत बिछुड़न में परंपरागत विरह का स्वर नहीं है, जीवन की लाचारी से उत्पन्न घुटन है। जीवन की लाचारी से मिलन को असमर्थ प्रेमी अपनी स्थिति का चित्रण करते हुए -

"मुझ से कहा चाँद ने, कैसे आज अकेले
घूम रहे हो। साथ तुम्हारा छूट गया क्या,
पिछले दिन का प्रण अनजाने टूट गया क्या।
तुम दोनों तो साथ साथ जीवन में खेले,
कूदे, बढ़े। इन दिनों क्या कुछ नए झमेले
तुम को घर रहे हैं। सब कुछ फूट गया क्या।
प्राणों का सम्बल वह, कोई लूट गया क्या,
जीवन में तुम ने भी कितने पापड़ बेले" [1]

त्रिलोचन की प्रस्तुत प्रेमाभिव्यक्ति जीवन संघर्ष में पड़े अकेले कवि की नहीं, किसी कारणवश बिछुडे साधारण नर-नारी की अनुभूतियों को शब्द देती है। "इसलिये वह प्रेम भी उस स्थिति का ही एक हिस्सा है जिसमें हमारे यहाँ की जनता जी रही है।"[2]

जिन्दगी की परेशानियों की झलक देने वाली इन प्रेमपरक "कविताओं में भी एक उत्साहपूर्ण सकारात्मक स्वर मिलता है।"[3] उनमें भी आस्था और आशा का स्वर मुखरित है -

"मुझे तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं था
फिर भी मैं ने बात तुम्हारी कभी न काटी,

यद्यपि इस में जीवन का उल्लास नहीं था,
स्वप्नों की सुख छाया का आभास नहीं था,

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 34.
2. "समीक्षा" - अक्तूबर-दिसंबर, 1986 - पृष्ठ 15.
अपवार्नंद - "फल नाम है एक" की समीक्षा से

फिर भी एक अनाम, अबूझा, आकर्षण था,

अपने सपनों की पगली
ममता न दे निकटता तो भी गौरवशाली
बना जायगी प्राणों में बहती है धारा"[1]

जीवन-संघर्ष में अपराजेयता का झंडा ऊँचा उठानेवाले त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति में कभी भी न टूटनेवाली आशा का स्वर प्रतिध्वनित है।

अभावग्रस्तता और प्रेम

स्वयं अभावग्रस्त कवि त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति में जीवन का अभाव असर करता दिखाई देता है। जीवन यापन केलिये अक्सर बाहर रहते समय भी प्रेमी के दिल को अभावों के काँटे गडकर दर्द करते हैं। प्रेमिका से बिदा लेते समय उसने कहा था कि यह लाना, वह लाना। लेकिन खाली हाथों लौटनेवाले प्रेमी की बेबसी की अभिव्यक्ति त्रिलोचन के शब्दों में -

"बिदा किया तब कहा कि यह लाना वह लाना,
ग्वैंड़े आया, और हाथ दोनों हैं खाली,
सजी खूब थी हाट, मगर मुश्किल था पाना
पैसों बिना"[2]

(बिदा किया तब कहा)

[library stamp]

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 46.
2. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 42.

अपनी गरीबी और अभावग्रस्तता की चर्चा कर प्रियतमा के दिल को तोड़ना वे नहीं चाहते -

"जानती हो, मुझ को खुशहाली
जैसे यहाँ वहाँ भी न थी" - क्या यही कह दूँ.
कितनी ठेस लगेगी उस को
ऐसे भी मनुष्य हैं जनो
दुनिया में, जिन को दुर्लभ है कानी कौड़ी.
प्यार उन्हें भी मिलता है, सुख का कोलाहल
उन्हें नहीं सुन पड़ता है,

प्रेयसी को प्रेमोपहार देने में असमर्थ प्रेमी की बेबसी इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है -

"क्या दूँ, क्या दूँ, क्या दूँ, क्या दूँ, क्या दूँ, क्या दूँ
अपनी पहुँच में कहाँ, क्या है, जो मैं ला दूँ"[1]

(बिदा किया तब कहा)

अभावग्रस्त प्रेमी की प्रस्तुत प्रेमाभिव्यक्ति में अनुभूति की सच्चाई और अभाव की तीव्रता दोनों हृदय को छूनेवाली हैं। "त्रिलोचन का यह प्रेम उनकी जीवन स्थितियों से स्वतंत्र नहीं है। इसलिये स्वभावत: जीवन का अभाव प्रेम में भी उन्हें घेरता और परेशान करता रहता है।"[2]

अभावग्रस्त जीवन की परेशानियों के कारण प्रेम का निर्वाह करने में असमर्थ प्रेमी दुखी होकर अपनी असमर्थता बताता है और प्रेमिका से माफी माँगता है -

---

1. "उस जनपद का कवि हूँ"- पृष्ठ 42.
2. "समीक्षा" - जनवरी - मार्च, 1983, पृष्ठ 44.
"उस जनपद का कवि हूँ"- की समीक्षा से - नन्दकिशोर नवल.

"चिर सरल स्नेह, हो जाय चूक, तो नीरव मुझे क्षमा कर दो।

दुर्बल हूँ, यह तो छिपा नहीं,
दुर्भाग्य भरे इस जीवन पर
तुमने कब -कब को कृपा नहीं,
उर के स्पन्दन में एक-एक मुसकान तुम्हारी गूँज रही
उन मुसकानों को एक लहर इन सूनी आँखों में भर दो।

(याचना)

भले ही, प्रेमी के उर में प्रेयसी की मुस्कान ही स्पन्दन के रूप में गूँज रही है, फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण जीवन की परेशानियों से चिर सरल स्नेह में चूक हो सकती है। इसपर वह क्षमाप्रार्थी है -

"प्राणों की पीड़ा में खोया,
चलता हूँ विषम धरातल पर,
जैसे बिलकुल सोया सोया,
स्वप्न के जलद पर इन्द्र-धनुष कल्पना-किरण है पूर रही,
जीवन के शतदल को अपनी आभा में खिलने का वर दो। [1]

(याचना)

विषम परिस्थितियों से जूझनेवाला अभावग्रस्त, दुर्भाग्यग्रस्त प्रेमी प्रेमिका से जीवन के शतदल को अपनी आभा में खिलने का वरदान माँगता है। अभाव में भी "खिलने" का सपना देखना त्रिलोचन की खूबी है।

जीवन का यथार्थ कठोर होता है। उसके सामने कल्पना को हार माननी पडती है। यह नयी बात नहीं है । प्रेम से पूर्ण हृदय का अधिकारी होकर भी त्रिलोचन का प्रेमी कभी-कभी गंभीर उदासी से भर जाता है और अपनी प्रेमिका को संबोधित करता है -

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 88.

"याद तुम्हारी आई है, गंभीर उदासी
पकड़ रही है मुझे, करूँ क्या, लाचारी है
जीवन की कल्पना सत्य से जो हारी है
नया नहीं है" [1]

(याद तुम्हारी आयी है)

यह जीवन-यथार्थ कवि को अपनी प्रेयसी से अलग करता है। शायद यही भाव उनके प्रस्तुत सॉनेट में प्रस्तुत हुआ है -

"हम तुम दोनों आज दूर हैं, बातें भी तो
पास नहीं आ सकते हैं, वैसे कहने को
कुछ भी कह लें, मन समझा लें, पर रहने को
साथ, अजी छोड़ो भी
फिर बाधायें भी तो
एक एक से बढ़कर है" [2]

त्रिलोचन ने दिगन्त की "अतवरिया" कविता में स्पष्ट रूप से इसी तथ्य का उद्घाटन किया है। "बेचारे गरीबों को तो पेट के आगे बार बार हार ही खानी पड़ती है, कवि के अतवरिया को ही देखिए"।[3]

"प्रेम जागता जीवन यों तो दे जाता है,
मगर पेट के आगे वही हार जाता है" [4]

(अतवरिया)

त्रिलोचन द्वारा चित्रित अभावग्रस्त वातावरण में विकसित प्रेम काफ़ी हृदय-स्पर्शी और यथार्थपरक है।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है - पृष्ठ 20.
2. वही - पृष्ठ 74.
3. हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - डा. सुरेन्द्र प्रसाद - 1985, पृष्ठ 119.
4. "दिगन्त" - पृष्ठ 25.

वर्ग-समाज और प्रेम

वर्ग-समाज में समानों के बीच ही प्रेम हो सकता है। वहाँ समानता का आधार अर्थ होता है। त्रिलोचन जिस जनपद के कवि हैं उसमें विद्यमान वर्ग-व्यवस्था और उससे उत्पन्न यातना ही उनके काव्य में अभिव्यक्त हुई है। इस सिलसिले में प्रेम की त्रासदी भी उनकी कुछ कविताओं का विषय रही है। "व्यक्ति के रूप में त्रिलोचन केवल उस यातना को ग्रहण करनेवाले एक माध्यम है - एक अतिसंवेदनशील माध्यम"।[1]

वर्गसमाज में प्रेम की त्रासद अवस्था की झलक उनकी प्रस्तुत पंक्तियों से मिल जाती है -

"मेरे गन्दे
कपड़ों से तुम को नफ़रत है. तो फिर वंदे.
बड़े बनो तुम, मुझ को अपनी दुनिया में रस
मिलता है, तुम गाड़ी - घोड़ों का सुख लूटो,
मैं पैदल ही भला. चला हूँ जैसे अब तक
चला करूँगा.
मुझ को जो पिछड़े हैं पथ पर
उन्हें देखना है, - मेरे इतने अपने हैं
जितने तुम हो नहीं. संग उन के तपने हैं"[2]

(तुमको अपना कहूँ)

---

1. "समीक्षा" - जनवरी-मार्च, 1983, पृष्ठ 13.
"वह कविता क्या जो कोने में बैठ लजाए" - विजेन्द्र नारायण सिंह.
2. "उस जनपद का कवि हूँ" - पृष्ठ 34. त्रिलोचन

वर्ग-समाज में आर्थिक दृष्टि से असमानों के बीच के प्रेम की यही दशा हुआ करती है। प्रेम को इस त्रासदी की ओर उँगली उठाना ही त्रिलोचन का मकसद है। प्रस्तुत कविता से सूचित होता है कि यह प्रेम असफल हो गया है। "मार्क्सवादी कदाचित् इसी अर्थ में बताते हैं कि कविता का स्रोत आर्थिक होता है, जनपद का स्थितिबोध सब कुछ को आक्रान्त कर लेता है"।[1]

त्रिलोचन के प्रेम की यह त्रासदी वर्ग-समाज की प्रस्तुत स्थिति विशेष से संबद्ध है। इसके अलावा, त्रिलोचन ने उपर्युक्त पंक्तियों में अपनी जीवन आस्था पर भी प्रकाश डाला है। वे पैदल चलने के आदी हैं। आगे भी ऐसा चलने का उनका निश्चय अटल है। घोडा गाड़ी की ओर मोह भी उनके मन में नहीं है। उन्हें उन लोगों को भी देखना है जो पथ पर पिछडे रहते हैं और उनके साथ उन्हें भी तपना है। वे लोग ही उनके ज़्यादा अपने हैं। वे लोग जितने प्यारे है उतनी प्रेमिका भी नहीं। त्रिलोचन जी यहाँ पर अपनी - प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए उच्चवर्ग की प्रेमिका और अपने प्रेम के प्रति अपना रवैया भी दर्ज करते हैं। उनके लिए प्रेम से बढकर प्यारे हैं "अपने" लोग।

वर्ग-समाज के प्रेम की स्थिति के प्रति कवि का विद्रोह व्यंग्यात्मक कविता के रूप में अभिव्यक्त हुआ है -

"प्रेम कुछ नहीं है, पैसा है, पैसेवाला
प्रेमी है, उदार है, सुन्दर है, दानी है.
प्रेम हृदय का धन है, कोई पीनेवाला
ही ऐसा कह सकता है, यह नादानी है
ऐसी, जिसका अन्त नहीं है"

---

1. "समीक्षा" - जनवरी-मार्च, 1983, पृष्ठ 14.
"वह कविता क्या जो कोने में बैठ लगाए" - विजेन्दनारायण सिंह.

"अब तो जन-जन ज्ञानी है,
प्रेम पुराना पागलपन है
अबवे बरसातें
आँखों में ही सुख गई हैं, जो कराह थी
लुप्त हो गयी
पल का पैसा मुसकानें लेती है गिन गिन"[1]

(प्रेम कुछ नहीं है)

धन-केन्द्रित समाज में प्रेम की अपनी अर्थवत्ता खो गयी है। प्रेमी-रूप में भी पैसेवाले का आदर होता है, उसी मापदंड से प्रेम का मूल्यांकन होता है। वही प्रेमी उदार, सुन्दर और दानी समझा जाता है जो पैसेवाला होता है। प्रेम हृदय का धन है, ऐसा प्राचीन काल से समझा जाता था। इसपर भी कवि प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं। एक एक मुस्कान के लिये भी पल गिन-गिनकर पैसा देना पडता है। विसंगतियों से पूर्ण वर्ग-समाज में प्रेम का मूल्य भी गिर गया है। इस ओर ध्यान आकर्षित करना मात्र कवि का उद्देश्य मालूम पडता है।

दाम्पत्य प्रेम

त्रिलोचन की प्रेमाभिव्यक्ति में दाम्पत्य प्रेम की अलग पहचान है। उनके द्वारा चित्रित दाम्पत्य प्रेम की मधुरता देखते ही बनती है। वह सात्विकता और उदात्तता की सीमा तक पहुँच गयी है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उदात्तता का दर्शन होता है। "धरती" संकलन की "चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती हैं", "मैं जब कभी बिलकुल अकेला हो जाता हूँ", "जब जिस छन मैं हारा" आदि कविताओं में

---

1. "अनकहनी भी कुछ कहनी है" - पृष्ठ 53. त्रिलोचन.

विशेष रूप से दाम्पत्य प्रेम का उदात्त रूप मिलता है। ऐसा लगता है कि "कवि (त्रिलोचन) के प्रेम में पवित्रता की हल्की गंध है"[1]

"वे हरे खेत
है याद तुम्हें
मैंने जोता तुमने बोया,
धीरे धीरे अंकुर आये"[2]

प्रस्तुत कविता में किसानी प्रेम का चित्र देने के साथ दाम्पत्य प्रेम का रूप भी सजाया है -

निपट ग्रामीण युवती चम्पा अपने संभावित पति के संबंध में क्या विचार रखती है। वह पति को कैसे मानती है। इसीसे जुड़े दाम्पत्य प्रेम की चर्चा शुरू करना उचित लगता है। त्रिलोचन अपने ग्रामीण जीवन से एक प्रतिनिधि युवती के रूप में चम्पा को चुन लेते हैं। अपढ़ और निरक्षर विद्या-विरोधिनी चम्पा लिखने पढ़ने से इनकार करती हुई कहती है कि वह पढ़-लिखकर पति को "सँदेसा" भेजना नहीं चाहती क्यों कि वह पति से अलग रहना ही नहीं चाहती है। पति के संबंध में उसका विचार इस प्रकार प्रकट होता है -

"मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे"[3]

(चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती)

---

1. हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - डा. सुरेन्द्रप्रसाद - 1985, पृष्ठ 117.
2. "धरती" -"चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है" - पृष्ठ 31.
3. "धरती" - पृष्ठ 89. त्रिलोचन

अपने पति से अलग करने वाले कलकत्ता नगर पर वह "बजर गिरे" का शाप देता है। वह पति को कितना चाहती है, इसका पता यों ही चल जाता है। त्रिलोचन के द्वारा चित्रित ग्रामीण नारी के दांपत्य प्रेम की सहजता और निश्छलता यहाँ खुल जाती है

इसी प्रेम का विकसित रूप ही "परदेशी के नाम पत्र" कविता में मिलता है। पत्नी अपने पति को सहज ढंगसे ग्रामीण परिवेश के चित्र के साथ यों सन्देश भेजती है -

"वह जो अमोला तुम ने धरा था द्वार पर,
अब बड़ा हो गया है. खूब घनी
छाया है मौरों की बहार है. सुकाल
ऐसा ही रहा तो फल अच्छे आएँगे.

और वह बछिया कोराती है. यहाँ
जो तुम होते. देखो कब ब्याती
है. रज्जो कहती है बछड़ा ही वह
ब्याएगी,
तुम्हें गाँव की क्या कभी याद नहीं आती है
आती तो आ जाते
मुझ को विश्वास है.
थोड़ा लिखा समझना बहुत,
समझदार के लिए इशारा ही काफी है"[1]

(परदेशी के नाम पत्र)

---

1. "अरघान" - पृष्ठ 74-75. त्रिलोचन

"त्रिलोचन जिस जनपद के कवि हैं, वहाँ के गरीब किसान और खेत मज़दूर आर्थिक तंगी के दिनों में किसी बडे शहर में जाकर मज़दूरी करते हैं। गाँव में पत्नी अकेली रह जाती है। त्रिलोचन ने गाँव में रहनेवाली उसकी पत्नी के मन की गहराई में उतरकर उसकी भावनाओं की थाह लेने की कोशिश की है।"[1]

आश्वासन की दूती

पत्नी कभी कभी पराजय और दुख के क्षणों में आश्वासन देनेवाली दूती बनकर आती है, उसी का रूप त्रिलोचन के द्वारा अभिव्यक्त दाम्पत्य प्रेम का सब से उदात्त, स्वस्थ रूप प्रस्तुत करता है -

"जब जिस छन मैं
हारा, हारा, हारा,
मैंने तुम्हें पुकारा

तुम आये
मुसकाये
पूछा -
कमज़ोरी है

बोला - नहीं, नहीं है
किसने तुमसे कहा कि मुझको कमज़ोरी है

तुम सुन कर
मुसकाये
मुझको रहे देखते
मुझको मिला सहारा"[2]

(जब जिस छन मैं हारा)

---

1. "आलोचना" - जुलाई-सितंबर, 1987, पृष्ठ 23.

त्रिलोचन का दाम्पत्य प्रेम बहुत ही मधुर एवं आत्मीयतापूर्ण है। "पत्नी ही उनके (त्रिलोचन) जीवन की उत्प्रेरिका शक्ति है।"[1]

अपनी प्रियतमा के स्निग्ध-शीतल कर-स्पर्श के लिये लालायित प्रिय का सरदर्द होने का बहाना करना, जिसमें प्रेमोच्छल उन्मुखता विद्यमान है। इसकी निश्छल स्वीकृति त्रिलोचन की प्रस्तुत कविता में मिल जाती है -

"सर दर्द क्या है

मुझे इच्छा थी
तुम्हारे इन हाथों का स्पर्श
कुछ और मिले

और
इन आँखों के
करुण प्रकाश में
नहाता रहूँ

और
साँसों की अधीरता भी
कानों सुनूँ
बिलकुल यही इच्छा थी
सर दर्द क्या है"[2]

(इच्छा)

प्रिय की करुण, सरल-तरल दृष्टि में नहाने की इच्छा, उसकी साँसों की अधीरता, "अपने कानों" से सुनने की कवि की अभिलाषा आदि इस प्रेमानुभूति की सच्चाई और तरलता के उदाहरण है। इस प्रसंग में

---

1. हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - डा. सुरेन्द्र प्रसाद - पृष्ठ 117.
2. चैती - पृष्ठ 15.

डा. भक्तराम शर्मा का कथन स्मरणीय है - त्रिलोचन के प्रसंग में यह उक्ति बिलकुल सही लगता है - "नरेन्द्र शर्मा, त्रिलोचन तथा मदन वात्स्यायन की कुछ कवितायें दाम्पत्य प्रणय की बडी स्वच्छ और सजीव अभिव्यक्ति देती है।"[1]

एकान्त में संगिनी

जब अकेलापन मन में अवसाद एवं बेचैनी भर देता है तब पत्नी की स्मृति ही उसको आश्वासन प्रदान करती है। त्रिलोचन ऐसे क्षणों को भी प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित करते हैं। स्मृति रूप में अभिव्यक्त उनका दाम्पत्य प्रेम अपनी विशेष पहचान रखता है -

"मैं जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ
ध्यान तुम्हारा आता है लय हो जाता हूँ
आँखें मूँदे तुम्हें देखता हूँ
तुम आती हो
पास खड़ी हो कर
मुसकाती कहती हो
कहो कहाँ से आये हो परदेसी
कैसा है घर-बार तुम्हारा
तुम्हें खबर है

दृश्य बदलता है
कि देखता हूँ फिर
मैं बीमार खाट पर लेटा हूँ मन-मारे
सिरहाने बैठी हो तुम माथे पर अपना हाथ पसारे
पूछ रही हो

---

1. "भाषा त्रैमासिक" - दिसंबर, 1982, पृष्ठ 13.
   डा. भक्तराम शर्मा

दृग में चिन्ता, वाणी में विश्वास अटल है
अब कैसी तबियत है

(मैं जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ)

अवसाद, विषाद और अंधकार का घेरा पड़ते समय अपनी प्रेयसी की याद कवि के नयनों में पावस का उन्माद लाती है –

"नदी किनारे सन्ध्या बेला
खोया – सा. मैं कहीं अकेला
रहता हूँ तब हवा साँझ की
दे दे कुछ अवसाद जाती
मुझे तुम्हारी याद आती

बढ़ने लगता और अँधेरा
अन्धकार का पड़ता घेरा
तम को कारा इन नयनों में
पावस का उन्माद लाती
मुझे तुम्हारी याद आती"[1]

(मुझे तुम्हारी याद आती)

"जीवन क्षेत्रों में मिलनेवाली यदा कदा पराजय दुख और वेदना के घनीभूत क्षणों में भी कवि ने अपने प्रणय को प्रेरणा के रूप में ही नहीं ग्रहण किया है, बल्कि उसका आश्रय लेकर मन की सारी वेदना को दूर करने का प्रयत्न किया है।"[2]

---

1. "धरती" – पृष्ठ 118. त्रिलोचन
2. प्रगतिशील काव्य – उमेशचन्द्र मिश्र – पृष्ठ 251.

इसप्रकार दाम्पत्य प्रेम त्रिलोचन के लिये निराशा भरने का साधन नहीं, बल्कि जीवन व धरती के प्रति प्रेम और आस्था भरने का माध्यम है पराजय के क्षणों में उत्साह भरने का साधन । त्रिलोचन की प्रेयसी जीवन संघर्ष का संबल मात्र नहीं, उससे बढ़कर जीवन में आस्था, कर्म की चेतना भरनेवाली प्रेरणादायिनी शक्ति है। "पत्नी का जीवन ही एक संघर्ष का संबल है, प्रिया तो केवल आश्रय है, जिसकी छाँह में नए आन्दोलन का थकान मिटाने की आवश्यकता पड़ती । नई कविता में य उन ही व्यक्ति और समाज के बीच की खाई है।"[1] त्रिलोचन की कविता में प्रस्तुत खाई बनानेवाली प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है। इसके बजाय स्वस्थ दाम्पत्य जीवन का मधुरोदार प्रेरक और निश्छल स्वरूप ही इसमें विद्यमान है।

त्रिलोचन द्वारा परिकल्पित दाम्पत्य प्रेम के कुछ गार्हस्थ्य चित्रों के बारे में श्री रामेश्वर शर्मा यों कहते हैं - "प्रेम के कुछ गार्हस्थ्य चित्र भी कवि ने दिये हैं जिनकी परंपरा हिन्दी में मिट-सी गयी है। शायद नए कवि प्रेम का अर्थ उसकी सामाजिक अस्वीकृति में ही समझने लगे हैं। पर सामाजिक दृष्टि से कभी भी स्वस्थ नहीं कहा जा सकता"[2]। प्रगतिशील कवियों में बहुतेरा प्रेम को प्रकृत रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।[3] लेकिन त्रिलोचन कितने निश्छल पक्वतापूर्ण ढंग से इसका चित्रण करते हैं -

---

1. "आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार" - पृष्ठ 51. रांगेय राघव.
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - पृष्ठ 122. रामेश्वर शर्मा.
3. "आलोचना" - अक्तूबर-दिसंबर, 1985, पृष्ठ 88. "केदार की कवितायें - पूर्वा और अपूर्वा"-अपूर्वानन्द.

"तुम्हें याद   रात अँजोरिया   हम तुम दोनों
नहीं सो सके, रहे घूमते नदी किनारे
मुग्ध देखते प्यारभरी आँखों से प्यारे
भूमि-गगन के रूप-रंग को यों तो टोनों

पर विश्वास नहीं मेरा, पर टोने ही सा
कुछ प्रभाव हम दोनों पर था"[1]

(वह अँजोरिया रात)

"प्यार की यह पकी अनुभूति रससिद्ध कवि के लिये ही संभव है"।[2] त्रिलोचन के द्वारा चित्रित दाम्पत्य प्रेम बहुत ही मधुर एवं आत्मीयता से ओतप्रोत है। उनके लिये पत्नी संगिनी, जीवन की सहगामिनी, आश्वासन की दूती है। संघर्षपूर्ण जीवन में वह संबल मात्र ही नहीं, उससे बढ़कर जीवन-आस्था और कर्म की चेतना भरने वाली प्रेरणादायिनी भी है। पति, पत्नी का ख्याल रखनेवाला ही नहीं, उसे सुखसुविधायें प्रदान करने में असमर्थ, उपहार देने में असफल और कुल मिलाकर प्रेम की अमूल्य निधि पत्नी को समर्पित करने को तरसकर भी परिस्थिति वश उससे अलग रहनेवाला स्नेह - निधि है। दाम्पत्य-प्रेम के चित्रण में त्रिलोचन अपने वैशिष्ट्य के कारण अकेले खड़े दीखते हैं ।

रूप-वर्णन - - - प्रेम का एक अलग सन्दर्भ

प्रेमिका के रूप वर्णन में भी त्रिलोचन की काफ़ी गति है। "धरती" की "प्रिये बड़े ही मनोयोग से" कविता इस दृष्टि से सबका ध्यान आकर्षित करती है। शायद इसी कविता को ध्यान में रखकर चन्द्रबली सिंह ने कहा है - "छायावाद के अंतिम चरण के अनेक अवशेष धरती की कविताओं

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 21.
2. रचना और आलोचना - देवीशंकर अवस्थी - 1979, पृष्ठ 75.

में मौजूद है। अनेक स्थानों पर कवि का प्रेम किशोर वय के आदर्शवादी उच्छ्वास में लिपटा है"।[1] इस प्रसंग में यह तथ्य स्मरणीय है कि "धरती" का रचनाकाल 1935-43 के बीच का समय रहा और कवि की आयु 18-26 के बीच की रही। उस अवस्था में इस प्रकार की कविता की रचना का मोह स्वाभाविक भी है।

"प्रिये बड़े ही मनोयोग से
तुम्हें बना कर, उस शिल्पी ने
दिवस लगाकर, रात लगा कर
तन को, मन को शक्ति लगा कर
इस सोलहवें मधु संवत् तक
और सुधारा, और सँवारा"[2]

(प्रिये बड़े ही मनोयोग से)

प्रिया का रूप-गठन आदर्श की सीमा तक पहुँच गया है। उसका पता इस बात से लगाया जा सकता है कि निर्माण - कुशल शिल्पि ने बड़ी लगन, जतन, चाव, भक्ति भाव से कड़ी निर्माण - प्रक्रिया से रूप-गठन कर दिया है।

"उस शिल्पी ने बड़ी लगन से
बड़े जतन से, बड़े चाव से
बड़ी भक्ति से, बड़े भाव से
प्रिये तुम्हें नख शिख तक तिल तिल
अथक उमंगों से क्षण क्षण में
और सुधारा, और सँवारा

---

1. "समालोचक" - मई 1958, पृष्ठ 26.
   कवि त्रिलोचन शास्त्री - श्री. चन्द्रबली सिंह

2. "धरती" - पृष्ठ 45.

"तुमको अन्धकार में देखा
फिर दिन के प्रकाश में देखा
बिजली चाँद लहर से उसने
तुम को मिला मिला कर देखा
देख देख कर, सोच सोच कर
और सुधारा, और सँवारा"[1]

(प्रिये बड़े ही मनोयोग से)

प्रस्तुत कविता में प्रेमिका का रूपवर्णन आदर्शवादी उच्छ्वास से युक्त होकर भी ठोस और जीवंत है। मगर उनका "यह प्रेम न तो रूप-लिप्सा पर आधारित ही है, ऐन्द्रिकता तथा अतृप्ति ही यहाँ मिलेगी"।[2] नायिका के रूप गठन की सुकुमारता पर ही जोर है। रूप का आदर्श रूप चित्रित करना ही कवि का उद्देश्य रहा। रूप-लिप्सा बिलकुल नहीं झलकती। उसी सौन्दर्य मूर्ति ने जग-जीवन को सुधारा और सँवारा है। याने वह भी लोक मंगलकारिणी कल्याणी रूपिणी है। लेकिन कवि की दृष्टि में स्पष्ट परिवर्तन उनकी परवर्ती रचना में देखा जा सकता है। वहाँ यथार्थ वादी दृष्टि ही सामने आती है -

"मुझे ध्यान तुम्हारा
नहीं इसलिये आया है कि तुम्हारे जैसा
रूप दिखाई नहीं दिया है"[3]

18-26 के बीच की आयु के कवि के लिये सहज सौन्दर्य - सुख की कामना की झलक देनेवाली चंद पंक्तियाँ "अभी कहाँ मुझे शान्ति मिली" कविता में मिलती हैं। इस ढंग की रूप-तृषा की और पंक्तियाँ उनकी अन्य किसी कविता में प्राप्त नहीं होती -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 45.
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - पृष्ठ 121.
रामेश्वर शर्मा
3. [illegible]

"मुझे अभी रूप की तृषा है
अभी रंग चाहिए
अभी मुझे
आँखों का अर्थ जान पड़ता है
अभी कहाँ मुझे शान्ति मिली"[1]

(अभी कहाँ मुझे शान्ति मिली)

इसी सिलसिले में चन्द्रबली सिंह ने कहा है "कवि में यौवन-सुलभ सौन्दर्य-सुख की कामना है। लेकिन वह ऐसा समय था जब "हिन्दी कविता में विचारों और अनुभूतियों में एक नयी हलचल का युग था। स्वयं छायावादी कवि सौन्दर्य की ऐकांतिक उपासना से अलग होकर जीवन के बहुमुखी यथार्थ को अपनाने लगे थे"[2]

इस संक्रान्तिकाल में रूप-तृषा की झलक देनेवाली उपर्युक्त पंक्तियों से उस ढंग की इति करते हुए त्रिलोचन जीवन-यथार्थ से युक्त प्रेमाभिव्यक्ति में लग जाते हैं। शेष कृतियों की सारी कवितायें इसकी साक्षी हैं।

संयोग और वियोग पक्ष

संयोग पक्ष

संयोग - श्रृंगार के चित्रण में भी त्रिलोचन ने उसके उदात्त रूप पर बल दिया है। इसमें कामुकता या वासना की गंध प्राप्त नहीं होती। उसका प्रेमी प्रेमिका का प्यार ही चाहता है। वह उसको आत्मा से चाहता है और हृदय पर अपना अधिकार पाया तो कुछ और पाने की इच्छा भी नहीं रखता -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 53.
2. समालोचक - अंक 4. पृष्ठ 26. कवि त्रिलोचन शास्त्री - चन्द्रबली सिंह.

"हँस के तुम ने क्यों कहा बोलो तुम्हें क्या चाहिए,
तुम हो तो पाना है क्या और तुम को भी लाना है क्या"[1]

"तेरे गगन में मेघ बन के छा गया हूँ मैं,
कितना समीप से समीप आ गया हूँ मैं"[2]

प्रेमी अपने गान के माध्यम से प्रेमिका से संयोग चाहता है -

"तेरी गली में गीत मन के गा गया हूँ मैं,
स्वर की पहुँच में आज तुझे पा गया हूँ मैं"[3]

प्रेमिका की मुस्कान मात्र से प्रेमी सांत्वना पाता है और पाये बिना शांति प्राप्त करने की आशा भी नहीं रखता -

"आप का मौन मुसकरा देना
नित्य मेरे लिए दिलासा है

तुम को पाए बिना कहाँ है शांति
कल्पना मात्र है दुराशा है"[4]

प्रेमिका का प्यार प्रेमी के लिये आत्मा की भूख मिटाने का दिव्य आहार है। इतना सात्विक प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है।

"प्यार सा प्यार दिया है तुम ने
ऐसा उपहार दिया है तुम ने
भूख आत्मा की मिटाने के लिए
दिव्य आहार दिया है तुम ने"[5]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 17. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 80.
3. वही.
4. वही - पृष्ठ 117.
5. वही - पृष्ठ 139.

उपर्युक्त कविताओं से स्पष्ट होता है कि प्रेम के संयोग पक्ष में त्रिलोचन ने प्रेम का स्वस्थ, उदात्त और सात्त्विक रूप का चित्रण किया है। यह उनके स्वस्थ और अविकल प्रेम-भावना का प्रमाण प्रस्तुत करता है। "दिगंत" संकलन की "प्राणों का गान", "वह अंजोरिया रात", "भादों की रात", "निवेदन" आदि कवितायें संयोग श्रृंगार की अनूठी कवितायें हैं। "प्राणों का गान" में प्रेमी-प्रेमिका को दो कपोतों के रूप में रूप-कल्पना कर, उनके साथ-साथ दूर क्षितिज के पार हवा पर उड़ते उड़ते, मोड़ों पर मुड़ते मुड़ते, और प्राणियों के प्रवेग की मौन परीक्षा करते करते, अपनी समीक्षा-शक्ति को बढाते - बढाते, विपुल पृथ्वी और सौरमंडल को भी अपनी जीवन-धारा से आप्लावित करते करते जाने का चित्र खींचकर कवि ने अपनी रचना-चातुरी का परिचय दिया है।

"अँजोरिया रात", "भादों की रात" दोनों में कवि ने स्मृति रूप में प्रेम के संयोग पक्ष का सफल चित्र खींचा है। "निवेदन" कविता में प्रेमिका के संयोग से प्रेमी को अलौकिक आनन्द प्राप्त होने की चर्चा हुई है। प्रेमिका के आगमन से उसके चिर वैरागय के नष्ट होने की बात की गयी है -

"तुम्हें देखता हूँ तो आँखों में सुरूप का
अंजन-सा लग जाता है. ऐसा लगता है
कि मैं तुम्हारे बिना निवासी अन्धकूप का
ही हूँ.
लेकिन डगता है
मेरा चिर वैराग्य तुम्हारे आ जानें से.
किसी अपार्थिव रस से मेरा मन पगता है
और सोचने लगता हूँ, तुमको पाने से
मैं कुछ से कुछ हो जाऊँगा"[1]
(निवेदन)

दिगन्त – पृष्ठ 57 – त्रिलोचन

इस में कवि ने प्रेमिका को अंधता को दूर करने वाली, चिर वैराग्य से विचलित करनेवाली, अलौकिक रस प्रदान करनेवाली, प्रेमी के जीवन का कायाकल्प करने वाली, अकर्मण्यता को दूर करनेवाली और ज्योतिसंचारिणी कहा है।

इस परस्पराश्रित प्रेम के संबंध में वाचस्पति उपाध्याय का कथन स्मरणीय है - "यहीं प्यार का बीज अंकुरित होकर मन में नए रूप आकार ग्रहण करता है। ऐसा स्वस्थ प्रेम जीवन संघर्ष में एक बड़ा संबल है।"[1]

त्रिलोचन के संयोग पक्ष के प्रेम में शारिरिक पक्ष पर कोई ज़ोर नहीं है। मानसिक उत्तेजना और कर्मशक्ति के उभार में वह सहायक भी है।

प्रेम में सखाभाव

प्रेम में सखाभाव त्रिलोचन के संयोग पक्ष की एक महत्वपूर्ण खूबी है। उन्होंने प्रेमी-प्रेमिका को सखा-भाव में भी दिखाया है -

"आओ इस आम के तले
यहाँ घास पर बैठें हम
जी चाही बात कुछ चले
कोई भी और कहीं से
बातों के टुकड़े जोड़ें
संझा की बेला है यह
चुन चुन कर तिनके तोड़ें
चिन्ताओं के समय फले."[2]

(दिन सहज ढले)

---

1. "धरती" - 4-5, पृष्ठ 45. फरवरी 1983
"शब्द-शब्द से व्यंजित जीवन" - वाचस्पति उपाध्याय.
2. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 38. त्रिलोचन

प्रेम में साथीपन का यह भाव वास्तव में अपूर्व और नया लगता है। "पत्नी, प्रकृति और आदमी तीनों को जोडता है प्रेम। पत्नी से प्रेम करते हुए उसे वह गहराई स्वभाव से मिल जाती है जो कभी टूटने न दे - इसी गहराई को वह इतना विस्तार देता है कि समाज और प्रकृति उसके भीतर समा जाते हैं।"[1] त्रिलोचन की प्रेम कल्पना को पढकर प्रस्तुत कथन सही लगता है। उन्होंने वह गहराई प्राप्त की है जिस का प्रमाण है उनकी प्रेमपरक कवितायें।

एक प्रसंग में प्रेमी-प्रेमिका के सामने भोगेच्छा प्रकट करते समय लज्जा बाधा के रूप में खडी हो जाती है और इच्छा स्वयं चुक जाती है। प्रेमी प्राणों पर यह नियंत्रण सहता जाता है -

"तुम को अगर सदेह चाहता हूँ तो कहते
कहते आ कर शब्द लाज से रुक जाते हैं
और निवेदन-भाव अचानक चुक जाते हैं.

संयोग संबंधी प्रस्तुत अभिव्यक्ति में छिछली कामुकता के स्थान पर सेव्य-सेवक भाव-सा मालूम पडता है -

"किसी दिन झुक जाते हैं
उन चरणों पर ध्यान चढ़ा कर धुक जाते हैं
अपने पथ की ओर और अपने में रहते
हैं खो खो कर मान।"

प्रेमी अपने प्राणों का उपहार अर्पण कर रह जायेंगे -

"फिर भी तो उपहार प्राण के दिए जायेंगे.
तुम ने जो अस्तित्व लिया जी को जगा दिया."[2]
(तुम को अगर सदेह चाहता हूँ)

---

1. दरअसल - डा. कमलाप्रसाद - 1981, पृष्ठ 93.
2. शब्द - पृष्ठ 65. त्रिलोचन.

यहाँ भी प्रेम के संयोग पक्ष का उदात्तीकरण किया गया है। डा. जीवनप्रकाश जोशी के अनुसार "त्रिलोचनी कविता में नारी के रूप – प्रेमाकर्षण का भाव-बोध दिनाखस के खालिस इत्रों जैसा गाढ़ा- गाढ़ा है। यौन-यष्टि-काम-कुंठाजन्य ब्याधि का मारा न होकर सोडा-वाटरी आवेश उफानवाला नहीं। उसमें "पौरूष्य" है।"[1]

प्रेम के संयोग पक्ष में भी इतनी सात्विकता भर देना त्रिलोचन की खूबी है। वह वासना पूर्ति कभी नहीं। आदमी के भीतरी जीवन का प्यार ही इसका मूल है।

"शब्द" का एक और सॉनेट प्रेम के संयोग पक्ष के अध्ययन के लिये ज़रूरी लगता है। दो कपोतों के माध्यम से त्रिलोचन स्त्री-पुरुष प्रेम के परस्पराश्रयी संबंध की दृढता, गहराई और तल्लीनता की अभिव्यक्ति करते हैं" –

"दोपहरी है. कूज रहे हैं उधर कपोती
और कपोत अधीर. चोंच से चोंच मिलाते.
चुग्गा ले कर सानुरोध चुपचाप खिलाते
एक दूसरे को,
उपहार-वृत्ति प्राणों में बोती
है जीवन के बीज. सटाते पंख हिलाते
बढ़ते हैं इस ओर और उस ओर, जिलाते
हैं जगती के स्वप्न हैं मन के मोती.
यहँ जिला कर
जी कर जीवन बिता रहे हैं."[2]

(दोपहरी है)

---

1. त्रिलोचन की कविता यात्रा – डा. जीवनप्रकाश जोशी – पृष्ठ 38.
2. शब्द – पृष्ठ 69. त्रिलोचन

ये पक्षी "जीकर जिलाकर जीवन बिता रहे हैं", "एक दूसरे को खिलाने में कभी थकान नहीं है", "इनको चिन्ता कभी किसी को रंच भर नहीं", "किसी डाल को अपना लिया, हुलास कहीं है घडियाँ गिनता", ये ऐसी बिन्दुयें हैं जो मनुष्य जीवन के लिए संगत हैं। यह आदर्श प्रेम-जीवन मनुष्य के लिये कुछ सबक दे देता है।

"प्रेम त्रिलोचन की रचनाओं का मूल तत्व है, फिर चाहे वह मानव प्रेम हो, प्रकृति प्रेम हो या विशुद्ध नारी प्रेम।"[1] त्रिलोचन आँख और कान खोले रखकर अपने मानव-प्रेम सिद्धांत की व्यावहारिक प्रक्रिया देखते रहते हैं। "उनका प्यार तथाकथित गीतकारों की तरह कल्पित सुकुमार किशोरियों तक सीमित नहीं रहता।"[2] पशु-पक्षियों के प्रेमाचरण से मनुष्य कैसे लाभान्वित हो सकता है इस प्रश्न का भी जवाब है - "यथार्थ और आदमी क्या कोई जडवस्तु है जिसका पशु पक्षियों के संवेदनों से कोई संबंध नहीं। प्रकृति के साथ उसका कोई रिश्ता नहीं" [3]

प्रेमिका के दर्शन से उत्पन्न भावों की सहज सरल अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में हुई है -

"देखा है मैं ने तुम्हें आज अभी
सोचा है
देखूँगा फिर क्या कभी
किसी दिन"[4]

(देखूंगा फिर क्या कभी)

---

1. "धरती" 4-5, फरवरी - 1983, पृष्ठ 51.
"त्रिलोचन की कविता:संश्लिष्ट व्यक्तित्व की पहचान" शैलेन्द्र चौहान.
2. इसलिए - अगस्त - 1977.
"त्रिलोचन:एक कवि एक प्रश्नचिन्ह" - भगवानसिंह.
3. "धरती" 4-5 - अंक-2 - पृष्ठ 79. शैलेन्द्र चौहान.
4. अरघान - पृष्ठ 36. त्रिलोचन

इस जीवन की हर गति-विधि पर नियति की काली छाया पड़ी है। इसलिये प्रेमिका से फिर मिलना दुष्कर है। आगे मिलने की संभावना हो न हो, प्रेमी के नयन - साक्षात्कार से ऐसे क्षण पाते हैं कि और किसी के दर्शन से इतने नहीं पाते। कंठ भी प्यास के मारे व्याकुल हो गाते हैं। उषा एक ओर हँसी कि प्राणों में वह बस गयी और इसीसे मन का सारा अवसाद चला गया। संयोग पक्ष के प्रस्तुत वर्णन की खूबी है कि कल्पना - उद्भावनाओं की ऊँची उछालों के बिना भी प्रेमिका के दर्शनों से उत्पन्न मुक्त हर्ष की सुष्ठु रूप से अभिव्यक्ति हुई है -

"ऐसे क्षण
नयन कहाँ पाते हैं
कंठ प्यास से
व्याकुल गाते हैं
उषा एक ही क्षण
के लिए हँसी
प्राणों में जैसे
वह हँसी बसी
मन का अवसाद चला गया सभी."[1]

(देखूंगा फिर क्या कभी)

नायिका के सौन्दर्य का उत्कर्ष और उसकी हँसी के अवसाद हरण की क्षमता इससे स्पष्ट होती है। दर्शन का हर्ष एक और कविता में मुक्त रूप से अभिव्यक्ति पाता है -

---

1. अरधान - पृष्ठ 36. त्रिलोचन

"पहले पहल तुम्हें जब मैंने देखा
सोया था
इससे पहले ही
सबसे पहले
क्यों न तुम्हीं को देखा

अब तक
दृष्टि खोजती क्या थी
कौन रूप क्या रंग
देखने को उड़ती थी
ज्योति-पंख पर
तुम्हीं बताओ
मेरे सुन्दर
अहे चराचर सुन्दरता की सीमा रेखा"[1]
(तुम्हें जब मैं ने देखा)

यहाँ "प्रणय अन्य कवियों की कविताओं से विशिष्ट है, संयोग की भूमिका में मुक्त उल्लास" -[2]

संयोग श्रृंगार में स्थायी भाव का विभावानुभाव संचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति की दशा तक पहुँच जाना प्रगतिशील कविता में ज़रूरी नहीं माना जाता। लेकिन त्रिलोचन की निम्नलिखित कविता में पुरानी परंपरा के श्रृंगार रस-निष्पत्ति के लिये आवश्यक अंगों की पूर्ति हुई - सी दिखाई पडती है -

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 85. त्रिलोचन.
2. "भाषा" -त्रैमासिक - दिसंबर 1982, पृष्ठ 13.
"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रगतिशील कविता में सामाजिक चेतना" - डा. भक्तराम शर्मा .

"पलकें नीचे गिरीं, आँख में कहाँ दिठाई
तब तक आ पाई थी, रोम रोम ही मानो
आँख बन गया, सिहरन से लहराया, दानों
से किस के यह हर्ष भरा था और मिठाई
मन में पाग उठी थी, मेरी और तुम्हारी
दो दुनिया अब एक थी, उधर कोयल बोली,
कहीं पपीहा चीखा, फेरी यों ही डोली
प्राणों की. मन की छवि अपने आप उतारी
हम ने अपनी अपनी आँखों में. यह ऐसे
हुआ कि जान न पड़ा. मगर जब आगे आया
तब मालूम हुआ कि आज ही सब कुछ पाया
एक निमिष में, निमिष बन गया सतयुग जैसे.
चुपके चुपके प्राणों की वह अदलाबदली
भीतर बाहर छाई इंद्रधनुष की बदली."[1]

(पलकें नीचे गिरीं)

प्रेमी-प्रेमिका का मिलन, रोम रोम ही आँख बन जाना, सिहरन से लहराना, कोयल का बोलना, पपीहे का चीखना, याने आलंबन-उद्दीपन, शरीर में सिहरन का अनुभाव, यह ऐसे हुआ कि जान न पडा - विस्मृति और स्तंभ का संचारी भाव सबकुछ पाना एक निमिष में स्थायी भाव का पक जाना - रस निष्पत्ति हो जाना सब यहाँ स्पष्ट रूप से चित्रित है। संयोग श्रृंगार की सफल रस निष्पत्ति की अभिव्यक्ति का यह उत्तम उदाहरण माना जा सकता है।

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 39. त्रिलोचन.

प्रेम का वियोग पक्ष

प्रेम के वियोग पक्ष के चित्रण में भी त्रिलोचन ने अपनी कुशलता दिखाई है। त्रिलोचन की विरह संबंधी कविताओं में भी "गाँव के एक साधारण स्त्री-पुरूष की स्थिति है जिन्हें कई कारणों से लंबे अरसे तक अलग रहना भी पड़ता है। इसलिये यह प्रेम भी उस स्थिति का एक हिस्सा जिसमें हमारे यहाँ की जनता रह रही है।"[1] जिन्दगी की परेशानियों से अलग रहे पति-पत्नी के मिलने की उत्कट इच्छा और मिलने की असमर्थता से उत्पन्न दुख - अवसाद के बीच आशा की किरण भी उनमें विद्यमान है। इन सब जटिल परिस्थितियों के बावजूद प्रेम के सच्चे स्वरूप का उद्घाटन करने में त्रिलोचन सफल हुए हैं। "मानसिक छलना से मुक्त कवि ही प्रेम के सच्चे स्वरूप का उद्घाटन कर सकता है"।[2] त्रिलोचन इसी कोटि के कवि हैं। वे सच्चाई से विरह संबंधी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हैं। कवि ने स्वानुभूत भावों का चित्रण किया है। वे आँसू बहाकर विरहानुभूतियों को अभिव्यक्त नहीं करते -

"क्या हुआ, लोग जो हँसते हैं उन्हें हँसने दो,
प्रेम की पीर में आँसू तो बहाया न करो

लोग समझेंगे तुम्हें प्यार नहीं आता है,
जिस को नज़रों से उठाया है गिराया न करो"[3]

प्यार के नाम पर आँसू गिराना वे पसन्द नहीं करते। "त्रिलोचन वैज्ञानिक युग के कवि हैं, इसलिये पहले के कवियों की तरह वियोग में नदी नाले भरने लायक आँसू नहीं बहाते "।[4] इसका यह मतलब नहीं कि

---

1. "समीक्षा" - दिसंबर - 1986, पृष्ठ 15. अपूर्वानन्द.
2. मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध-परशुराम चतुर्वेदी - 1955, पृष्ठ 23.
3. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 18. त्रिलोचन
4. "स्थापना" - 7 - सितंबर - 1970, पृष्ठ 6
"सामाजिक चेतना के कवि: त्रिलोचन शास्त्री" - खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर.

त्रिलोचन की विरहानुभूति तीव्र नहीं है। उनकी विरहानुभूति का हृदयस्पर्शी और मार्मिक चित्र इन पंक्तियों में मिलता है -

"तुम्हारा ध्यान आता है तो प्रायः चौंक उठता हूँ
कलेजा रोज़ क्या यों ही पसलियों में उछलता है
तुम्हारी बातें सोचीं और अपनी बात भी सोची
इन्हीं दो बिंदुओं के बीच जीवन की विकलता है
विरह ने आज यह क्या कर दिया ऐसा लगा जैसे
पकड़ कर मुट्ठियों में कोई मेरा दिल मसलता है"[1]

"प्यास मरुस्थल में लगे क्यों आख़िर
चाह दुर्लभ की जगे क्यों आख़िर
कष्ट ही कष्ट अगर मिलता हो
प्रेम अंतर में पगे क्यों आख़िर"[2]

प्रेमिका को याद कर प्रेमी का हृदय पसलियों में उछल-उछलकर विह्वलता को प्रकट करता है। यह उसके जीवन की विह्वलता का कारण है। विरह उसे अपनी मुट्ठियों में मसल देता है। प्रेम उसके लिये मरुस्थल की प्यास है। कहीं दूर रहनेवाली प्रेमिका की याद करना मात्र प्रेमी का जीवन बन गया है -

"तुम जो मुझसे दूर कहीं हो सोच रहा हूँ
और सोचना ही यह जीवन है इस पल का"[3]

(दुनिया का सपना)

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 99. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 140.
3. दिगन्त - पृष्ठ 10. त्रिलोचन

जैसे काँटे पैर में गड़कर पैर पकड़ लेते हैं, वैसे प्रेमिका की याद उन्हें पकड़ लेती है। उसी के साथ, वह पहाड़ी प्रदेश उसकी स्मृति में हो आता है जहाँ प्रेमिका रहती है –

"काँटे गड़कर पैर पकड़ लेते हैं जैसे
वैसे ही यह याद तुम्हारी मेरे मन को
पकड़ लिया करती है. जब घर और विजन को
भूल भाल जाता हूँ और न जाने कैसे

आँखों में वह पंथ पहाड़ी आ जाता है.
वह दूधिया उजाला, टेढ़ा चाँद, धुँधलके
शेष बिम्ब पर चमकीला तारा यों झलके
जैसे माथे पर बिन्दी. जब गा जाता है

कोई कलासिद्ध गायक, तब गूँज निरन्तर
स्मृति की लहरों से प्राणों के उन पर्दों पर
उठती है जिनमें स्वर संचित हैं. दर्दों पर
लहर होश की आती है. मिटता है अन्तर.

मन में याद गड़े चाहे पैरों में काँटा,
सुख–दुख दो पलड़ों पर नहीं गया है बाँटा."[1]

(काँटे और याद)

सच्ची विरहानुभूति का एक और प्रसंग "वह अँजोरिया रात" कविता में मार्मिकता से चित्रित हुआ है। "रात अँजोरिया" में उस प्रेमी की विवशता का चित्रण है जिसने प्रेमिका के साथ जिस स्थान पर प्रेमानुभूति का आनन्द लूटा था वहीं अकेले अतीत के धन्य क्षणों को सोचता हुआ वर्तमान के यथार्थ का सामना करने को विविश होता है –

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 20. त्रिलोचन

"यों तो टोनों
पर विश्वास नहीं मेरा, पर टोने ही सा
कुछ प्रभाव हम दोनों पर था. कभी ताकते
भरा चाँद, फिर लहरों को, फिर कभी नापते
अन्तर का आनन्द डगों से, जो यात्री-सा

दोनों का अभिन्न सहचर था.

लेकिन आज सामने प्रस्तुत दृश्य भले ही वही पुराना ही है , लेकिन सूना और अनाकर्षक लगता है -

"इधर-उधर के
खड़े अचंचल पेड़ क्षितिज पर, ऊपर तारे,
चाँद पिघलता लहरों में, रेती --ये सारे
दृश्य आज आँखों में आये, आकर सरके.

वही नदी है, वही रात है, किन्तु अकेला
अब मैं ही हूँ. पहले की सुधियों से खेला."[1]

(वह अँजोरिया रात)

उसी दृश्य को देखते हुए प्रेमी कितना उदास और दुखी है। इन पंक्तियों में विरहानुभूति की तीव्रता और गहराई हृदय को छू जानेवाली है। यहाँ प्रकृति भी विरहानुभूति का हिस्सेदार है।

वियोग में भी संयोग की स्मृति

विरहानुभूति की तीव्रता में भी संयोग की मधुर घड़ियों की याद को मज़बूत बनाये रखने की स्वस्थ भावना प्रेमी के हृदय में घर कर लेती है और वह प्रेमिका का आह्वान करता है कि वह भी उन अतीत की मधुरोदार अनुभूतियों को न बिसराना -

---

"ये दिन न भुला   ना
ओ सनेही

आने को आए
सनेह लगाया
बाती मिलाई
दीया जगाया
बिसर मत जा   ना
ओ सनेही".[1]

(ओ सनेही)

इस स्मृति को ताज़ा रखने में वह आश्वस्त है। आरंभिक रचनाओं में, विरह की असहनीय घड़ियों में भी आँसू बहाने का विरोध करनेवाले कवि को आगे चलकर आँसुओं की बाढ़ में डूब जाने की नौबत आ जाती है। उनका मन सूनेपन में खो जाता है, एक से एक बढ़कर बाधायें प्रिया-मिलन से उन्हें रोक लेती हैं –

"हम तुम दोनों आज दूर है, चाहें भी तो
पास नहीं आ सकते हैं, वैसे कहने को
कुछ भी कह लें, मन समझा लें, पर रहने को
साथ, अजी छोडो भी. अपने मन की भी तो
सुननी ही पडती है, फिर बाधायें भी तो
एक एक से बढकर है. वैसे बहने को
बाढ़ आँसुओं की क्या क्या है. अब सहने को
शेष क्या रहा, आए जो कुछ, आए भी तो".[2]

(हम तुम दोनों आज दूर हैं)

---

1. ताप के ताए हुए दिन – पृष्ठ 33 . त्रिलोचन .
2. अनकहनी भी कुछ कहनी है – पृष्ठ 74 . त्रिलोचन

यह परेशानी मात्र विरह से उत्पन्न नहीं है। जीवन की परेशानियों से भी उत्पन्न है। अस्तित्व - भार से भी वे दबे हैं। जीवन की परेशानियाँ उन्हें प्रिया से मिलने से रोकती हैं । इन परेशानियाँ के बावजूद "कुछ ढंग का लहना" उन्हें स्वीकार है, यों वे प्रेमिका को उपदेश देते हैं।

"हुए तुम दूर हो
क्या हुआ खुश रहो

अलगाया रास्ता
तो कैसा वास्ता
आगे ही आगे
आगे गैल गहो

ये वे सब सपने
कितने दिन अपने
खोते खोते भी
कुछ ढंग का लहो"[1]

(कुछ ढंग का लहो)

बिछुडे रहने पर भी खुश रहने का उपदेश देते हुए वे इसपर आश्वस्त हैं कि यह सब सपने हैं, अचिरस्थायी है, लेकिन इन स्वप्न समान जीवन अवस्थाओं में भी कुछ ढंग का "लहना" है। जीवन से जीवन की बात कहनी है, निराश नहीं होना है। परेशानियों के बीच में भी जीवन को स्वस्थ धरातल पर खडा करना ही त्रिलोचन का जीवन-दर्शन है - "प्रगतिशील

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 32. त्रिलोचन

कविता के नारी और प्रेमसंबंधी मूल्य का काम-कुंठावाद से भिन्न स्वस्थ मानवीय धरातल से संबंध है।"[1] इस दृष्टि से त्रिलोचन स्वस्थ मानवीय धरातल पर अपनी विरहानुभूतियों की भी अभिव्यक्ति करते हैं।

वियोगावस्था में भी स्मृति की लहरों में प्रिया की हँसी मिल जाती है तो उनकी सारी परेशानियाँ दूर हो जाती हैं और सारा अवसाद खोकर उनका मन प्रिया के पास उड उडकर जाता है। "मानवीय संबंधों में प्रेम की ऊष्मा त्रिलोचन के सॉनेटों की एक और विशेषता है"[2] प्रिया के प्रति यह अटूट प्रेम ही वियोगावस्था में प्रेमी को इतनी ठोस धरती पर खडा रहने देता है -

"हँसी तुम्हारे मुख पर जब जब खिल जाती है
तब तब सहज फुल्लित हो जाता हूँ. आ कर
वह मेरी स्मृति की लहरों में मिल जाती है,
और चाहिए क्या"

हँसी की याद ही उसे सामान्य स्थिति में ला देती है और मन को शान्त कर देती है -

".तुम से सुदूर जब जा कर
रहना पड़ता है तब ये वे बातें, हँसना,
उठना, चलना और बैठना, ये वे स्थितियाँ,
संध्या निशा उषा दिन, कहीं अकेले धँसना
चिंताओं की गहराई में, वे परिमितियाँ
जिन पर बस कुछ नहीं",
पास तुम्हारे ही मन उड़ उड़ कर जाता है,
स्वर भी गान तुम्हारे जुड़ जुड़ कर गाता है"[3]

(हँसी तुम्हारे मुख पर)

---

1. "प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य" - अजय तिवारी - 1978, पृष्ठ 178.
2. "धरती" 4-5, फरवरी - 1983 पृष्ठ 45.

त्रिलोचन की बादवाली कृतियों में भी विरहानुभूति उन्हें अधीर कर देती है। लेकिन उन्हें तोड़ती नहीं है। यह विरह मधुर वेदना में बदल जाती है। ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती है कवि की, प्रेम के विरह पक्ष में, विह्वलता की मात्रा थोड़ी कम दिखाई देती है -

"मुझ को आज अधीर कर दिया स्मृति में आ कर
तुम ने। मैं चुप रहा, उदास उदास हो गया
पल भर में ही। और मुझे विश्वास हो गया,
कहीं दूर से खींच रही हो, सहसा छा कर
यह मेरा आकाश धन्य है तुम को पा कर।
संप्रति जगे विचार, और मैं पास हो गया,
दूरी कितनी दूर डाल दी। वास हो गया
आज हृदय में, रोम रोम बोला दुहरा कर। "[1]

(मुझको आज अधीर कर दिया)

कवि के प्राण वायु-व्योम की भाँति प्रेयसी के साथ संपृक्त रहते हैं। विरहानुभूति की यह गहराई, यह तल्लीनता आधुनिक कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। उनके लिए तिक्त विरह भी मधुर है -

"एकाकी ये प्राण तुम्हारे साथ घुले हैं
वायु-व्योम की भाँति, मधुर भी विरह तिक्त है "[2]

त्रिलोचन अपनी रचना "चैती" की "अधिभूत" कविता में स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य मदन के शरों से विद्ध है। कोई भी प्राणी अपवाद नहीं। यह नियति है, यति है, गति है। इन पंक्तियों में भी कामुकता की गंध नहीं है। प्रेम को स्थायी भाव-रति के अस्तित्व की घोषणा मात्र है। जीवन में हर एक व्यक्ति की इस स्थायी अनुभूति के कथन से कवि यथार्थ को ज़ोर से सिद्ध करते हैं।

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 82. त्रिलोचन .
2. वही - पृष्ठ 82.

प्रेमाभिव्यक्ति के अन्य चित्र

रोमानी प्रेम

त्रिलोचन की कुछ ऐसी प्रेम-परक कवितायें हैं जो अपनी तल्लीनता की दृष्टि से बहुत ही रोचक हैं। उन्हें रोमानी सन्दर्भ की रचनाएँ कही जा सकती हैं। इन कविताओं के संबंध में श्री. श्यामसुन्दर घोष कहते हैं - "रोमानी सन्दर्भ की दृष्टि से भी ये सॉनेट ("उस जनमद का कवि हूँ) कमज़ोर नहीं हैं"[1]

"घिर आए बादल बसंत में. याद तुम्हारी
आई. आपा भूला. खोज भरी आँखों में
तुम्हें पकड़ना चाहा. थी मन की लाचारी
जाने कब से. क्षीणप्राय काले पाखों में
चाँद जिस तरह नीले नभ में किसी किनारे
खोया खोया सा रहता है, ध्यान किसी का
कभी नहीं आकर्षित करता,
दीपकहीन अँधेरी रातें
जी में भर जाती हैं जिन का राग सो गया.
प्रिये, कहीं भी रहो, कहो पर अपने मन की
मेरे मन से, दो लहरें अपने जीवन की"[2]

(घिर आए बादल वसन्त में)

त्रिलोचन की अन्य विरह संबंधी कविताओं से स्पष्ट अन्तर इस बात में लक्षित होता है कि इनमें आवेग और तल्लीनता की मात्रा अधिक है -

---

1. "समीक्षा" - जनवरी-मार्च, 1983, पृष्ठ 12.
   श्यामसुन्दर घोष - "उस जनपद का कवि हूँ"- समीक्षा से
2. "उस जनपद का कवि हूँ" - पृष्ठ 20 - त्रिलोचन

"जब से देखा तुम्हें, तुम्हीं को पाना चाहा।
जीवन का क्रम अकस्मात् कुछ और हो गया,
अब तक जो कुछ पाया उस का मूल्य खो गया,
.बताओ
क्या रहस्य है, हे रहस्यदर्शिनी, जताओ
आँखों की भाषा में आकर्षण है कैसा।"

इसमें त्रिलोचन की अन्य कविताओं में दृश्यमान तटस्थता और निर्लेपता नाम मात्र के लिये भी नहीं है, कवि आगे कहते हैं –

"देखा नीले नभ में तो तुम वहाँ खड़ी हो,
नीरव, सस्मित, सरिता की लहरों पर देखा
लहराती हो, क्रीड़ा करती हो शशिलेखा
जैसे, फूलों पर हँसती हो वहीं जड़ी हो"[1]

(जब से देखा तुम्हें)

प्रेमिका को रहस्यदर्शिनी, "प्राणाधिके" कह कर कवि ने उस भावात्मकता का परिचय दिया है जो उनकी अन्य प्रणयपरक कविताओं में दिखाई नहीं देती –

"प्राणाधिके, बसंत आ गया। गूँज रहा था
प्राणों में जो नव जीवन स्वर इन नयनों में
आज रूप बन कर समा गया"[2]

(प्राणाधिके वसन्त आ गया)

परन्तु प्रेम का यह रोमान्टिक आश्लेषण त्रिलोचन का मुख्य भाव नहीं है। प्रेम की तीव्र धारा में जब त्रिलोचन भी थोडी देर केलिए बह गए तो ऐसी भावतीव्र रचनाएँ मिली हैं।

---

1. "उस जनपद का कवि हूँ" – पृष्ठ 24. त्रिलोचन
2. वही – पृष्ठ 25.

समर्पण की भावना

प्रेमी-प्रेमिका की बिदाई की अभिव्यक्ति की चर्चा करनेवाली प्रेमपरक कवितायें अपना अलग स्थान रखती हैं। इससे कवि के उत्सर्गमय प्रेम का पता चलता है। त्रिलोचन की बहुत-सी कविताओं में ऐसे चित्र मिलते हैं। प्रेमिका से बिदा लेते समय प्रेमी के जो प्रेमोद्गार निकलते हैं उनसे उसकी प्रेमानुभूति की सच्चाई और वेदना की गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है -

"आज सदा के लिए अलग होने से पहले
आओ पुन: गले मिल लें हम, फिर तुम जाओ
जहाँ कहीं जी चाहे, जिसमें जीवन पाओ
उसको अपनाओ, जैसे भी तबियत बहले
वैसा काम करो"[1]

(बिदा के समय)

अपने प्रेम की पूर्ति के लिये खून-खराबी के लिए तैयार होनेवाले प्रेमियों से इसका कोई नाता नहीं। उत्सर्ग ही इस प्रेम का नारा है। जीवन की सुविधाओं से वंचित जीवन बिताने वालों के त्रासद प्रेम का और उनकी भग्नहृदयता का यह प्रेमभिव्यक्ति परिचय देती है।
कवि के प्रेम संकल्प का पता इन पंक्तियों से चल जाता है -

"तुम्हारा प्यार मेरे मन वचन और कर्म में आए
यही संकल्प अपना है अधिक संभार क्या होगा"[2]

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 34. त्रिलोचन.
2. गुलाब और बुलबुल - त्रिलोचन - पृष्ठ 108.

प्रेम का यह गाढ़ा बन्धन, प्रेमी-प्रेमिका का निश्छल आपसी समर्पण अन्यत्र मिलता मुश्किल है। "नर-नारी के प्रेम की स्थिति त्रिलोचन के यहाँ एकांगी नहीं, परस्पराश्रित हैं " [1] रूप सौन्दर्य और मांसलता पर टिकी आधुनिक कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति से नितांत भिन्न त्रिलोचन की प्रस्तुत प्रेमाभिव्यक्ति अपने में अलग है - एक अपूर्व अनोखी प्रेमाभिव्यक्ति इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

"हवा, रोशनी सूरज की, आकाश खुला है
कहीं बादलों का निशान भी नहीं, सुना है
भरसक सब की आँख बचा कर अभी बुना है
स्वेटर तुमने मेरे लिए.

प्रेमिका में समार्पित और विलीन होने की प्रेमी की भावना त्रिलोचन की अपनी खूबी है -

"मैं इन आँखों के सुनील जल में खो जाऊँ,
जी करता है, कोई ढूँढे मुझे न पाए,
मेरा होना ही सुगंध बन कर दिगंत में
जल के ऊपर खिले कंज सा हो, बो जाऊँ
मैं भी सूक्ष्म तरंगें ऐसी ही, उपजाए
प्यार तुम्हारा प्यार, प्यार रह जाए अंत में" [2]

(हवा रोशनी सूरज की)

अंत में प्रेमी का अस्तित्व ही प्रेम के रूप में परिणत हो जाये, यही त्रिलोचन की प्रेम-भावना का चरम लक्ष्य है। प्रेमी-प्रेमिका का विलयन ही यहाँ चरम स्थिति है। वासना पर टिकी प्रेमानुभूति इसके सामने घटिया लगती है। इसी ओर इशारा करते हुए डा. जीवन प्रकाश जोशी ने कहा -

---

1. "धरती" 4-5 -
शब्द - शब्द से व्यंजित जीवन-वाचस्पति उपाध्याय.
2. शब्द - पृष्ठ 28 . त्रिलोचन .

"सेक्स की कोई विकृत कुंठा या भोगवादी भावना - दृष्टि न होकर उन्मुक्त क्रीडाभाव है, जिसका केन्द्र जीवन है, जिस में जीवन है।"[1]

धरती के कवि त्रिलोचन की प्रेम-परक कविताएँ अपनी सहज अवस्था में प्रेम कविताएँ ही हैं। प्रेम के विभिन्न प्रसंग उसकी पूरी गरिमा और गहराई के साथ शब्दबद्ध हैं। विरह तथा संयोग की निजी स्थितियाँ उनकी इन कविताओं की हैं तो दूसरी तरफ़ प्रेम प्रसंग के अनेकानेक ठोस धरातल भी प्राप्त होते हैं। त्रिलोचन की विशेषता यह है कि उन्होंने प्रेम को माध्यम नहीं बनाया है। प्रेम को उसकी गहराई में अनुभव करते हुए उन्होंने जीवन के ठोसपन में उसे अधिक जीवन्त कर दिया है। अतः उनकी प्रेम-कविताएँ भावुक मनस्थिति की अभिव्यक्ति नहीं है। उनमें लिजिलिजी अवस्था की कोई स्थिति नहीं। एक और विशिष्टता उनकी प्रेम कविताओं की यह है कि लोक परिवेश को भी उन्होंने विकसित किया है। अतः उनकी प्रेम अवधारणा गहन जीवन-बोध की कुछ विशिष्ट भंगिमा भी है।

---

1. त्रिलोचन की कविता यात्रा - डा॰ जीवनप्रकाश जोशी 1983, पृष्ठ 20.

अध्याय पाँच

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति - परिकल्पना

अध्याय पाँच

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति - परिकल्पना

प्रकृति-परिकल्पना

प्रकृति और मनुष्य का संबंध उतना पुराना है जितना मनुष्य स्वयं। मनुष्य के सौन्दर्य - बोध के विकास में प्रकृति का योग रहा है। प्रकृति की विभिन्न परिकल्पनाओं के आश्रय से ही सौन्दर्ययुक्त कला-सृजन की प्रक्रिया चलती रही है। "मनुष्य का अन्तःकरण और शेष वह समस्त चर अचर जगत्, जिसके निर्माण में मनुष्य का योगदान न होते हुए भी उसके साथ मनुष्य का जन्म से ही किसी न किसी प्रकार का रागात्मक संबंध स्थापित हो जाता है।"[1]

---

1. रूपांबरा - संपादक - अज्ञेय - विद्यानिवासमिश्र के "प्रकृति वर्णन काव्य और परंपरा"- से उद्धृत - 1960 पृष्ठ 371.

प्रकृति की परिकल्पना विविध प्रकार से की जाती रही है। प्रकृति को कवि, दार्शनिक और वैज्ञानिक अपने अपने दृष्टिकोण से देखकर उसकी परिभाषा करते हैं। प्रकृति का साहित्यिक सन्दर्भ भी भिन्न प्रकार का है। "साहित्य दृष्टि की अपनी समस्यायें हैं क्योंकि एक तो साहित्य दर्शन, विज्ञान और धर्म के विश्वासों से परे नहीं होता, दूसरे सांस्कृतिक परिस्थितियों के विकास के साथ साथ साहित्यक संवेदना के रूप भी बदलते रहते हैं।"[1] संवेदना के बदलाव की सूचना प्रकृति परिकल्पना में भी प्रकट होती है। प्रकृति के प्रति साधारण लोगों की दृष्टि भी अलग है। "साधारण बोलचाल में "प्रकृति" "मानव" का प्रतिपक्ष है, अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है - वह संपूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है।"[2] इस प्रकार प्रकृति की तरह तरह की परिभाषायें प्राप्त होती हैं।

<u>प्रकृति और काव्य</u>

प्रकृति प्राचीन काल से कवि के आकर्षण की वस्तु रही है। उसने कवि की दृष्टि का विस्तार किया है। लेकिन प्रकृति के प्रति हर कवि की संवेदना भिन्न रही है और प्रत्येक कवि प्रकृति का अपने ढंग से उपयोग करता आया है।[3] लेकिन यह ज़रूर है कि प्रकृति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपादान के रूप में कविता में प्रयोग होता आया है।

---

1. रूपांबरा - भूमिका - पृष्ठ १ - अज्ञेय
2. वही
3. "As every poet responds to nature according to the peculiar qualities of his own temperament, the poetry of emotional interpretation takes many different forms". An introduction to the study of literature - William Henry Hudson 1963, p.329.

इसलिये "विभिन्न देशों और युगों के काव्य तथा कलाओं में जिस रूप में प्रकृति को ग्रहण किया गया है, उसके माध्यम से उनके दृष्टिकोण और संस्कार के अन्तर का विवेचन किया जा सकता है।"[1]

वैदिक कवि प्रकृति के प्रति विस्मय का भाव रखते थे। अज्ञेयजी के अनुसार - "हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे", - "कस्मै देवाय हविषा विधेम्" आदि उक्तियाँ विस्मय को प्रतिबिंबित करती हैं।[2] इसके अलावा, वैदिक कवि प्रकृति की अनुकूलता का प्रार्थी था। वह नहीं मानता था कि प्रकृति देवता, देवता होकर भी हमेशा अनुकूल रहता था। लेकिन अपनी प्रार्थना से उसको अनुकूल बनाने में विश्वास रखता था। प्रत्येक गुण और मनोभाव के प्रतीकस्वरूप देवता - वर्गों की स्थापना करके आकाश-पृथ्वी, जड और चेतन, दृश्य - अदृश्य के बीच संबंध स्थापित करने की चेष्टा प्रारंभिक भारतीय रचनाओं में विद्यमान थी।

यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि तमाम भारतीय भाषाओं में प्रकृति के प्रति यह आध्यात्मिक मोह प्रबल दीखता है। यह तो अवश्य है कि आधुनिक युग में आकर यही रुख एक द्वंद्व के रूप में प्राप्त होता है। आधुनिक कविता में इस द्वंद्व के अनेकानेक क्षण उपलब्ध हैं। इस तथ्य पर विचार करने के पहले यह देखना आवश्यक है कि हिन्दी काव्य-यात्रा के विभिन्न मोडों पर कवियों ने प्रकृति को किस ढंग से लिया है।

हिन्दी काव्य और प्रकृति

भारतेन्दु युग को सामान्यतः आधुनिक युग कहा जाता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भारतेन्दु युग की मानसिकता पूर्णतः

---

1. काव्य और प्रकृति - डा. रघुवंश - 1960, पृष्ठ 385.
2. रूपांबरा - भूमिका - पृष्ठ 3 - अज्ञेय

आधुनिक दृष्टि के अनुकूल है। उदाहरण के तौर पर प्रकृति के अंकन के सन्दर्भ में सोचा जाय तो वही रीतिकालीन मानसिकता का आभास ही हमें मिलता है। वही रीतिकालीन उद्दीपन और आलंबन संबंधी भाव - व्यंजना ही मिलती है।

द्विवेदी युग में हिन्दी काव्य की प्रकृति में परिवर्तन हो गया। प्राचीन महत्व को स्वीकार करने के साथ साथ नई परिस्थितियों एवं आदर्शों का आदर होने लगा। इस युग की कविताओं की प्रकृति परिकल्पना पर नवीनता का प्रभाव दृष्टिगत होता है। "प्रियप्रवास", "साकेत" जैसे काव्यों में प्रकृति के स्थान का प्रश्न है, प्रकृति कथा के नितांत अंग के रूप में उपस्थित हुई है। इनमें कहीं भी केवल वर्णन - सौन्दर्य की दृष्टि से प्रकृति का अंकन नहीं हुआ है।"[1] लेकिन "इस युग की अन्तर्वर्ती रोमान्टिक काव्यधारा में प्रकृति का रूप अपेक्षाकृत अधिक मुक्त है और उसमें भावोल्लास, भावविभोरता तथा आत्मतल्लीनता आदि की प्रवृत्तियाँ"[2] देखी जाती हैं। इतने पर भी विरह-वर्णन आदि प्रसंगों में पारंपरिक ढंग का प्रकृतिवर्णन भी मिलता है। ऐसे प्रसंगों में भावोल्लास के स्थान पर जडता की प्रतीति होती है।

छायावादी युग और प्रकृति का स्वरूप

छायावादी युग सौन्दर्यवादी कविता का युग है। इस युग में अधिकाधिक प्रकृति परक रचनायें प्रकाशित हुई हैं। छायावादी युग में प्रकृति की उपस्थिति कविता के सौन्दर्य की रचनात्मक उपस्थिति के रूप में ही है। "छायावादी कवि ने प्रकृति को अपने जीवन के अंग के रूप में स्वीकार किया है, प्रकृति उनके लिये अनुभव या संवेदन का वस्तुरूप आलंबन मात्र नहीं है, वरन् उसका व्यापक कल्पना क्षेत्र है।"[3] अनुभूति के स्तर

---

1. प्रकृति और काव्य रघुवंश - पृष्ठ 387.
2. वही - पृष्ठ 388.

'3

पर वह कवि के जीवन से अभिन्न होकर प्रस्तुत हुई है। प्रकृति के प्रति इतनी आसक्ति किसी अन्य युग में देखने को नहीं मिलती। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी की रचनाएँ इसके उदाहरण हैं। "छायावादी काव्य की तो प्रकृति रंगस्थली है, वह प्रकृति का अक्षय भंडार है। प्रसाद, पंत निराला में प्रकृति अपने शीतल मसृण सौन्दर्य, सुकुमार स्निग्ध रागात्मकता, विराट विस्तृत आकार, बहुविध चेतना और क्रियाशीलता, व्यापक प्रेरणा और रसप्लावन के साथ उपस्थित है। इतनी भावुकता, संवेदनशीलता, कल्पना, आस्था, विविधता और सजगता के साथ प्रकृति का चित्रण संपूर्ण भारतीय साहित्य में कभी नहीं हुआ, जैसा छायावादी काव्य में किया गया।"[1]

छायावादी कवि को प्रकृति से नूतन दृष्टि और नया आलोक मिला। उसको प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का बोध हुआ। छायावादी कविता में प्रकृति मात्र मानवीय क्रिया की पृष्ठ भूमि न रहकर आलंबन रूप में उसका अंकन तो हुआ, इसके अलावा "अदृश्य परम पुरूष की प्रेयसी" रूप में भी उसका निरूपण हुआ। इसलिये छायावाद को "प्रकृति पुरूष की प्रणय लीला का रसात्मक निरूपण" भी कहा गया है।[2] छायावादी कविता में प्रकृति के विविध स्वरूपों के दर्शन हुए। प्रकृति का उद्दीपनात्मक स्वरूप भी छायावादी कविता में सहज ही प्रस्तुत है, क्यों कि स्वानुभुतिमयता की सामान्य विशेषता, जो प्रस्तुत काल की सरज प्रवृत्ति थी, के अंतरगत उद्दीपन भी कवि मन की अनुभूतियों का अंग रही है। इस प्रकार "प्रकृति आलंबन, उद्दीपन, रहस्य, मानवीकरण, अलंकृति और संश्लेषण से संबंद्ध रूपों की आकर्षक योजना अभिनव वातावरण की सृष्टि करती है। इसी समय के प्रकृति वर्णन की सब से बडी विशेषिता उसके नूतन सजीव रूप की उद्भावना है।"[3]

---

1. काव्य पुरूष निराला - डा. जयनाथ नलिन - 1970, पृष्ठ 162.
2. वही - पृष्ठ 168.
3. निराला काव्य का वस्तुतत्व - डा. भगवानदेव यादव -

इस कारण से छायावाद का प्रारंभिक दौर प्रकृति कविता का दौर है। छायावादी कवियों की प्रकृति के प्रति आसक्ति के कारण के संबंध में नामवर सिंह करते हैं - "छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर झुकना, प्रकृति को इतना महत्व देना, प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को, काव्य में प्रतिष्ठित करना और प्रकृति के सौन्दर्य को उद्घाटित करना यह सब आधुनिक विज्ञान का परिणाम है।"[1]

छायावादोत्तर कविता में भी प्रकृति का रागात्मक संबंध सक्रिय रहा। लेकिन युगानुकूल प्रवृतियों के अनुसार प्रकृतिदृष्टि बदलती रही है। आधुनिक कविता उसका प्रमाण है।

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति के अनेकायामी प्रसंग

प्रखर सामाजिक चेतना के साथ साथ त्रिलोचन में लोकचेतना की सक्रिय गतिशीलता है। अतः उन्होंने अपनी कविताओं में प्राकृतिक-परिदृश्य का एक सशक्त ढाँचा स्पाथिस किया है। प्रकृति त्रिलोचन के स्वत्व बोध का अभिन्न अंग है। त्रिलोचन की कविता में प्रकृति की समग्रता है। प्रकृतिपरक कविताओं में त्रिलोचन का कविमन पूर्णतः डूबता दृष्टिगोचर होता है। स्वयं त्रिलोचन ने कहा है - "मैं खुले वातावरण का विद्यार्थी रहा हूँ. ग्रामीण जीवन सर्वाधिक प्रभावकारी रहा है।"[2] अपने आसपास का वातावरण, जीवन और प्रकृति उनकी कविता की प्रेरणा रही है। त्रिलोचन का प्रकृति-प्रेम आरोपित नहीं है। वे धरती और जीवन के प्रेमी हैं। ग्रामीण कवि में प्रकृति के प्रति रुचि तो स्वाभाविक है।

---

1. छायावाद - नामवरसिंह - 1968, पृष्ठ 36.
2. साक्षात्कार - जून-जुलाई, 1984, पृष्ठ 124. त्रिलोचन
   त्रिलोचन और शंभु बादल की बातचीत से .

अपनी कविता रचना के प्राथमिक दौर की याद करते हुए त्रिलोचन कहते हैं – "मैं ने पहली कविता अठारह वर्ष की उम्र में दोस्तपुर, सुलतानपुर में सुनाई   मैंने अच्छी सी अच्छी कविता लोगों को दी। ये कवितायें नवरीतिवादी थी, श्रृंगारी नहीं, प्रकृति संबंधी होती थी   मैं प्रकृति संबंधी कथा – सूत्र लेकर चलते चलते कवितायें बनाता था।"[1] इससे स्पष्ट है कि त्रिलोचन की प्रकृति के प्रति रुचि शुरू से ही रही है।

किसी कवि की प्रकृति के प्रति जागरूकता और संवेदना कहाँ तक अनिवार्य है, यह भी विचारणीय है। "प्रकृति के प्रति किसी कवि की संवेदना उसकी मानवीयता एवं मानसिकता का परिचायक है।"[2] उसकी रागात्मकता एवं सौन्दर्य-बोध का पता इसीसे चल जाता है। किसी कवि के प्रकृति के प्रति रिश्तों के द्वारा उसके मानवीय संबंधों का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। "प्रकृति की गोचर सत्ता से संवेदित होने की क्षमता का अनुपात ही उसकी मानवीयता का भी अनुपात है।"[3] आज मनुष्य ज्यों – ज्यों आधुनिकता एवं आर्थिक विकास के पीछे दौडता है त्यों – त्यों वह मानवीय और प्राकृतिक सौन्दर्य से कट जाता है। आधुनिकता के उस दौर में विशिष्ट प्रकार के ग्रामोन्मुख जीवन चिन्तन का नया एहसास लेकर त्रिलोचन हिन्दी कविता के क्षेत्र में अवतरित हुए।

त्रिलोचन जीवन-यथार्थ के कवि हैं। जीवन के प्रति प्रेम ही उनका जीवन दर्शन है। जिस धरती से जीवन उगा है, उसी से उनका प्रेम अटल एवं अटूट है। "त्रिलोचन जितने मानव-संघर्ष के कवि हैं, उतने ही प्रकृति की

---

1. साक्षात्कार – जून–जुलाई, 1984, पृष्ठ 124. त्रिलोचन त्रिलोचन और शंभु बादल की बातचीत से .
2. "The interpretation of nature is fundamentally a matter of temperament and mood and that the investigation of it thus forms part of the personal study of literature" - An introduction to the study of literature - William Henry Hudson - 1963. p.330.
3. समधा – अप्रैल–जून – 1986, पृष्ठ 23. धनंजयवर्मा – प्रेम और प्रकृति

लीला और सौन्दर्य के भी। इसलिये प्रकृति बहुत गहराई तक उनकी कविता में रची-बसी है।"[1] त्रिलोचन प्रकृति या धरती के प्रेमी इसलिये नहीं कि वे प्रगतिशील कवि हैं, लेकिन वे प्रगतिशील कवि इसलिये हैं कि धरती और धरती के जीवन के वे प्रेमी हैं।

त्रिलोचन की प्रथम रचना धरती 1945 में प्रकाशित हुई थी, उसमें संकलित कविताओं के अध्ययन से प्रकृति के प्रति उनकी मानसिकता की पहचान अवश्य मिल सकती है। "धरती" में प्रकृति परक कविताओं की संख्या दो दर्जन से अधिक है। इनमें प्रकृति के प्रति कवि की संवेदनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रारंभिक कविता "धरती" की प्रकृति-कवितायें

प्रगतिशील दौर की रचना होने के नाते "धरती" की कुछ प्रकृति-परक कविताओं में भी कवि की प्रगतिशीलता का स्वर मुखर है। धरती और धरती के जीवन के प्रति प्रेम, धरती के सौन्दर्य के प्रति मोह और अनुरक्ति भी उनकी प्रस्तुत प्रकृतिपरक कविताओं की विशेषता है। त्रिलोचन प्रकृति के द्वारा किसी परोक्षसत्ता की खोज नहीं करते। वे प्रकृति की विराटता और उसके चमत्कारी सौन्दर्य के चित्रण से किसी आध्यात्मिक सत्ता की ओर किसी का ध्यान आकर्षित भी नहीं करते। न वे रोमान्टिक कवियों के जैसे औद्योगीकरण से उत्पन्न घुटन से मुक्ति पाने के लिये प्रकृति की शरण में जाते, न वे पाठकों को गहरी अनुभूति के बल किसी अद्भुत प्रपंच में, असाधारण और विचित्र भाषा और काव्यगत संरचना के द्वारा विलक्षण और अपरिचित कल्पना - जगत में नहीं ले जाते।[2] प्रकृति को सामान्य जीवन सन्दर्भों से वे जोड़ते हैं और प्रकृति का स्वच्छ और ऊष्मल परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

---

1. त्रिलोचन प्रतिनिधि कवितायें - भूमिका - पृष्ठ 6 केदारनाथसिंह.
2. 'The romantic poets lead the reader to the strange places of human experience but seldom welcome him in the languag

स्वच्छन्द प्रकृति का वर्णन

धरती की कुछ प्रकृतिपरक कविताओं में त्रिलोचन ने प्रकृति के स्वच्छन्द, मनोमुग्धकारी और चित्रात्मक रूप को प्रस्तुत किया है। परवर्ती रचनाओं की कविताओं की अपेक्षा इन कविताओं में कवि प्रकृति के इस चित्रात्मक रूप पर अपनी मुग्धता एवं मोह प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि जगत से प्यार करते हैं और उसकी प्रत्येक वस्तु को सौन्दर्यपूर्ण देखते हैं। प्रकृति के इस मनोमुग्धकारी रूप पर कवि हठात् आकृष्ट दिखाई पडते हैं। इन चित्रणों में प्रकृति का स्वच्छन्द रूप पाया जाता है।

"धूप सुन्दर
धूप में
जग-रूप सुन्दर
सहज सुन्दर

ओस कण के
हार पहने
इन्द्र धनुषी
छबि बनाये
शस्य तृण
सर्वत्र सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जग-रूप सुन्दर" [1]

(धूप सुन्दर धूप में जग-रूप सुन्दर)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 83. त्रिलोचन .

प्रकृति के सुन्दर रूप का प्रभाव कवि के हृदय में पड़ा है। उसी सुन्दरता को हर वस्तु में देखकर उमंग से वे भर जाते हैं। "सौन्दर्य की चेतना जैसे कवि के हृदय पर स्थायी रूप से छा गई है, उसने प्रकृति में एक सौन्दर्य अनुभव किया है।"[1] प्रकृति के उल्लासपूर्ण भावों के प्रति कवि के मोह को अभिव्यक्त करनेवाली काफी कवितायें "धरती" में हैं -

"लहर लहर परिचय पराग - पूर्ण
हृदय दृश्य अनुरंजित ज्योति - चूर्ण
दिशा देश
धवल नवल
खिला यह दिन का कमल
सुन्दर सहस्रदल
क्या उमंग, जागरण की तरंग
सब शक्ति - स्रोत - स्फूर्त अंग अंग
तरु के दल
खग कल कल

विश्व के सरोवर में दिन का कमल
लहराता दृग दृग का लीला कमल
सदा अमल
नित्य नवल "[2]
खिला यह दिन का कमल सुन्दर सहस्रदल

---

1. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य-रामेश्वर शर्मा - 1953, पृष्ठ 119.
2. "धरती" - पृष्ठ 66. त्रिलोचन

यहाँ लहर-लहर, दृश्य-दृश्य, दिन का सहस्रदल और विश्व का मुग्ध मनोहर रूप "सदा अमल और नित्य अमल" लगता है कवि की आँखों में।

स्तब्ध नीरव रात भी कवि के लिये स्नेहमयी और मुग्धकारी है -

"चाँदनी - चर्चित
परम प्रार्थित
समर्पित
स्नेह सी यह रात
स्तब्ध नीरव रात"[1]

(स्तब्ध नीरव रात)

प्रकृति के इतने उन्मेष और उमंग - भरे चित्र त्रिलोचन की परवर्ती रचनाओं में नहीं मिलते।

जैसे कुछ प्रकृतिपरक कविताओं से स्पष्ट होता है, त्रिलोचन की दृष्टि में प्रकृति एक वास्तविकता है। प्रकृति के सुन्दर रूप पर आकृष्ट कवि अपने मन के सहज भावों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं -

"बढ़ रही क्षण क्षण शिखाएँ
दमकते अब पेड़ - पल्लव
उठ पड़ा देखो विहग - रव
गये सोते जाग
बादलों में लग गई है आग दिन की

---

1. "धरती" - पृष्ठ 87. त्रिलोचन.

"वास तज कर विचरते पशु
विहग उड़ते पर पसारे
नील नभ में मेघ हारे
भूमि स्वर्ण पराग
बादलों में लग गई है आग दिन की"[1]

(बादलों में लग गई है आग दिन की)

अंधकार-चन्द्रिका-स्नात पेड़ों को भी वे बाह्यवास्तविकता के रूप में चित्रित करते हैं –

"पेड़ों के पल्लव से ऊपर
उठती धीरे धीरे ऊपर
अन्धकार – चन्द्रिका – स्नात
तरुओं पर जैसे पारा
रेखा – प्राय धूम घर घर से
नील नील नभ चला नगर से
लहराता तरु ऊपर छाता
उसके ऊपर तारा –

पूरब से पश्चिम को ढलती
तारक माला यों ही चलती
चाप छिपा कर चिन्ह मिटा कर
यह गति – क्रम है न्यारा.[2]

(पूर्व क्षितिज में तारा)

---

1. "धरती" – पृष्ठ 65. त्रिलोचन .
2. वही – पृष्ठ 67.

प्रकृति की गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसका वास्तविक चित्रण कवि करते हैं -

"फूल फूल पर तितली उड़ती
फूल फूल रस लेती

दल दल पर चल
मधुर मनोहर
नृत्य नवल कर
वरती परिमल
परिचय-पथ विराम पल पल के
पल पल को गति देती

सूर्य - किरण में
पवन - सुमन बन
करती नर्तन
मधु विचरण में
लहर लहर से मिली लहर सी
लहरों को स्वर देती" [1]

(फूल फूल पर तितली उड़ती)

इस प्रसंग में मुक्तिबोध का कथन स्मरणीय है - "प्रकृति उसके (त्रिलोचन) मन में एक बाह्य वास्तविकता के रूप में है, मन की इमेज के रूप में नहीं, वह उस वास्तविकता के चित्रात्मक रूप पर मुग्ध है, परन्तु उसका अन्तर्मुख चित्रात्मक अंकन नहीं करता।"[2] कवि अपने मन में उमडे भावों को प्रधानता

---

1. "धरती" - पृष्ठ 62. त्रिलोचन.
2. "मुक्तिबोध रचनावली" - 5 - पृष्ठ 379. मुक्तिबोध.

देते दिखाई पडते हैं। धरती की इस प्रकार की प्रकृति परक कविताओं के संबंध में श्री. चन्द्रबली सिंह का कहना भी ध्यान देने योग्य है। "त्रिलोचन की इन कविताओं में यथार्थ प्रेम, यथार्थ जीवन और यथार्थ प्रकृति की ओर मुडकर व्यक्तिवादी रुझानों से मुक्त होने का प्रयत्न है।"[1]

प्रकृति को बाह्यवास्तविकता के रूप में चित्रित करते हुए त्रिलोचन प्रकृति के प्रति अपने यथार्थ भावों को प्रकट करते हैं और साथ साथ अपनी निर्वैयक्तिकता का भी परिचय देते हैं। यह छायावादी रुझान के विरोध में प्रमाणस्वरूप लिया जा सकता है।

प्रकृति के प्रति आभार

प्रकृति के प्रति प्रेम त्रिलोचन की सजह वृत्ति है। प्रकृति पर आकृष्ट कवि उससे प्रेम तो करते हैं, साथ साथ उससे प्रेम भी प्राप्त करते हैं। इसपर वे उसके प्रति आभार भी मानते हैं। वे मानते हैं कि वे प्रकृति से स्वयं सेवा - शुश्रूषा प्राप्त करते हैं -

"मन्द मन्द पछुआ हवा बह रही
लहरें उपजाती हुई बह रही
हरे भरे पेड़ों के पत्तों से
गे हूँ, जौ, मटर और सरसों से
खेलती हुई घर के द्वार पर
आ कर मुझ को छू कर लहरा कर
और कहीं आगे को जाती है
खुले हुए अंगों को सहला कर
अपनी प्रभा से नव प्रकाश भर
बालिका सी सरदी की धूप यह
तन मन को ताज़ा कर देती है"[2]

(झीने श्वेत बादल आकाश में)

---

1. समालोचक - अंक - 4. मई 1958. कवि त्रिलोचन शास्त्री -

पछुआ उनके अंगों को सहलाकर खुश करती है तो सरदी की धूप बालिका के समान उनके तन मन को ताज़ा कर देती है। यह प्रकृति के मानवीकरण का मोह नहीं लगता, बल्कि वरदान देनेवाली प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव है।

"नीम, बाँस, पीपल, लहटोरे के
पेड़ हरे निर्मल पत्तों वाले
खड़े खड़े बरसों का प्यार भरे
मुझको अविराम चँवर करते हैं

उन सब को कवि प्रकृति का प्यार, सेवा और पुरस्कार मानते हैं -

"इतना सा प्यार यह दुलार यह
पाता हूँ प्रतिदिन मैं बिना कहे बिना सुने
किसी का आभार भी बिना माने
पाता हूँ जैसे पुरस्कार यह"[1]

(छीने श्वेत बादल आकाश में)

प्रकृति कवि के लिये प्रेरणादायिनी, स्फूर्तिदायिनी ही नहीं, बल्कि अनुग्रह दायिनी भी है।

मानवीय साक्षात्कार की इच्छा

त्रिलोचन प्रकृति के साथ अपना आत्मीय संबंध प्रकट करते रहते हैं। विहग का संबोधन करते हुए कवि दिवा को लक्ष्मी के समान स्वागत करने को भी कहते हैं। यहाँ वे प्रकृति से पारिवारिक संबंध भी स्थापित करते दीखते हैं -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 74. त्रिलोचन

"वह निशा चली गई
जो अब तक
रंग रंग के सपने देती रही
उड़ो विहग -

जिन किरणों ने
कोमल स्पर्श से
तुमको अपना प्रिय परिचय दिया
उनको अब अपना लो
उड़ो विहग -

दिवा, यह तुम्हारी
सह धर्मिणी है
लक्ष्मी है
स्वागत कर उसका सम्मान करो
उड़ो विहग -"[1]

(उड़ो विहग बाँधे मत रहो पंख)

यहाँ कवि दिवा को सहधर्मिणी, लक्ष्मी का सम्माननीय पद देते हैं। इन पंक्तियों के संबंध में मुक्तिबोध जी का मंतव्य ध्यान देने योग्य है - "जिस भव्यभावना का कवि ने अंतिम पंक्तियों में परिचय कराया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वह कवि के अपने व्यक्तित्व से निसृत है।"[2]

यहाँ प्रकृति कवि के लिये उद्दीपन का काम करनेवाली नहीं, बल्कि वरदान देनेवाली लक्ष्मी और जीवन को स्फूर्ति और प्रेरणा और

---

1. "धरती" - पृष्ठ 55 - त्रिलोचन
2. मुक्तिबोध रचनावली - 5 - पृष्ठ 381.

कर्मशक्ति देनेवाली सहधर्मिणी है। यहाँ कवि का सौन्दर्य बोध तथाकथित आधुनिकतावादियों के समान कुंठित नहीं है। "प्रकृति के प्रति किसी आदमी की चेतना और जागरूकता उसके प्रकृति से रिश्तों पर निर्भर होती है और उससे उसका रिश्ता उसकी जागरूकता पर"[1] यहाँ त्रिलोचन का प्रकृति के साथ का रिश्ता स्पष्ट रूप से उभरता है। मानवमुक्ति के संघर्ष में लगे प्रगतिशील कवि त्रिलोचन के प्रकृति के प्रति रिश्ते के संबंध में मुक्तिबोध कहते हैं - "इसी संघर्ष के माध्यम से विश्वास पाने के कारण प्रकृति के प्रति उसका रुख, आत्मरत निबिड भावनाओं का न रहकर, अधिक स्वस्थ और आसक्तिपूर्ण हो गया है।"[2]

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति कहीं पारिवारिक संबंधों की पवित्रता को याद दिलानेवाली है। प्रकृति से पारिवारिक संबंध कालिदासीय प्रकृति का स्मरण करा देता है। इस सन्दर्भ में कवि अब तक के भारतीय प्रकृति काव्य परंपरा के चिर संचित संस्कारों से प्रभावित दीखते हैं -

"कुछ सुनती हो,
कुछ गुनती हो-
यह पवन, आज यों बार बार
खींचता तुम्हारा आँचल है
जैसे जब तब छोटा देवर
तुम से हठ करता है जैसे
तुम चलो जिधर वे हरे खेत।"[3]

(चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है)

---

1. वसुधा - अंक - 6 - अप्रैल, 1986, धनंजय वर्मा
2. मुक्तिबोध रचनावली - 5 - सं. नेमिचन्द्र जैन - पृष्ठ 383.
3. "धरती" - पृष्ठ 31.

यहाँ पवन देवर बनता है और देवर-जेठानी संबंध की हार्दिकता की मधुरता स्मरण हो आती है। कुछ कविताओं में त्रिलोचन प्रकृति में मानवीय साक्षात्कार की इच्छा रखते हैं। प्रकृति के सुन्दर निर्मल रूप में आदमी का रूप भी वे देखना चाहते हैं। प्रकृति कवि के लिये चिरसंगिनी है और साथ ही साथ कवि - हृदय में एक उदात्त सौन्दर्य की चेतना की सृष्टि करनेवाली शक्ति भी है। इसलिये वे चाहते हैं -

"सोचता हूँ
क्या कभी
मैं पा सकूँगा
इस तरह
इतना तरंगी
और निर्मल
आदमी का
रूप सुन्दर"[1]

(धूप सुन्दर धूप में जग-रूप सुन्दर)

"प्रकृति जहाँ मानव की चिरसंगिनी होने के कारण व्यापक मानव जीवन का अंग है, वहीं वह कवि के हृदय में एक उदात्त सौन्दर्य चेतना की सृष्टि करनेवाली एक अद्भुत शक्ति है।"[2] प्रकृति के सौन्दर्य को कवि जितनामहान एवं उदात्त समझते हैं उतना मनुष्य का उत्कर्ष भी चाहते हैं, यह उनकी मानवीयता की उच्चावस्था की ओर स्पष्ट संकेत है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 84. त्रिलोचन
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - रामेश्वरशर्मा - पृष्ठ 119.

मानवीय भावों की भूमिका

कभी कभी त्रिलोचन प्रकृति को मानवीय भावों की भूमिका के रूप में भी देखते हैं -

"आज की शाम आई
आयी और चली गई
शाम आयी चली गई

चारों ओर चिन्ताएँ
चित्र अ ग णि त
सारे रंग खो ग ये
अँधेरा एक रहा शेष
कैसे कहूँ शक्ति नहीं

बढ़ते अँ धे रे में
एकान्त आज डूब गया

दिन की तरंग औ
उमंग सब खो गई
आज की शाम आई
आई और चली गई "[1]

(आज की शाम आई)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 49. त्रिलोचन

त्रिलोचन ने "अंधकार" को बिंब के रूप में प्रयोग करते हुए गुलामी से उत्पन्न घुटन की अभिव्यक्ति भी दी है। तत्कालीन देशी परिस्थितियाँ गुलामी से उत्पीड़ित जीवन चित्र प्रस्तुत करती थीं। मुक्ति संघर्ष में पड़े कवि का हृदय भी गुलामी के "अंधकार" से भर जाता था। लेकिन प्रातः काल तक ही वह बना रहता था, तब तक वह घुटन को अपनी विवश मानसिकता की भूमिका बना रहता है -

"अन्तराल तिमिर - प्रपूरित भेद कर दो एक
तरल तारे कर रहे थे किरण से अभिषेक
मौन, इतना मौन था चहुँ ओर अपरम्पार
हृदय - धड़कन कान सुनते सजग बारम्बार
उस अभेध तमिस्र में ये नयन थे निरुपाय
तारकों से माँगते थे ज्योति अति असहाय
रात, सारी रात, आँखों में गई कट रात
जाग कर झेले विचारों के विपुल आघात"[1]

(सहज सुन्दर मन्द तारों का पुनीत प्रकाश)

मानव जीवन के यथार्थ को प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास "धरती" में देखा जा सकता है। इसमें भी प्रकृति के मनोमुग्धकारी रूप का प्रभावशाली चित्रण ही प्राप्त होता है। सूने आकाश में आकर राग - रंग दिखाने वाले बादलों की चित्ताकर्षक छवि में डूबी कवि की दृष्टि उनकी साज-सज्जा और सूक्ष्म चलन में मानवीय यथार्थ के दर्शन करती हैं -

"बना बना कर
चित्र सलोने
यह सूना आकाश सजाया
राग दिखाया
रंग दिखाया

क्षण क्षण छवि से चित्त चुराया
बादल चले गये वे

दो दिन दुख का
दो दिन सुख का
दुख सुख दोनों संगी जग में
कभी हास है
कभी अश्रु है
जीवन नवल तरंगी जग में
बादल चले गये वे
दो दिन पाहुन जैसे रह कर"[1]

(दो दिन पाहुन जैसे रह कर बादल चले गये वे)

प्रस्तुत कविता में मानवीय भावों के साक्षात्कार की इच्छा प्रकट हुई है। कुछ ही क्षणों के लिये राग - रंग और छवि से चित्तचुरा कर प्रस्थान करनेवाले बादलों की अचिरस्थायिता के द्वारा कवि दुख पर ज़ोर नहीं देते, सुख - दुख मिश्रित जीवन की ओर इशारा करते हैं। उसकी स्वच्छता उसके आरोपित न होने के कारण है। जिस सहजता से त्रिलोचन ने प्राकृतिक वस्तुओं का चित्रण किया है, वही इनकी प्रकृति की विशेषता है।

प्रगतिशील अवधारणा का समन्वय

प्रकृति के खुरदरे सत्य की ओर ध्यान आकर्षित कर मानव को जागृत करना भी त्रिलोचन के प्रकृति चित्रण की विशेषता है। उपदेशात्मकता

---

1. "धरती" - पृष्ठ 75 त्रिलोचन

के स्वर में सुप्त मनुष्य में कर्म चेतना भर देना ही उनका लक्ष्य मालूम पड़ता है। इसे त्रिलोचन की प्रगतिशीलता की अवधारणा के अन्तरगत माना जा सकता है।

"पत्ते केवल पतझर आने पर ही नहीं झरा करते हैं,
जीवन का रस जभी सूख जाता है तभी बिना कुछ झिझक
बिना मुहूर्त - प्रतीक्षा के ही झर जाते हैं। [1]

इस जीवन - यथार्थ के प्रति सजग करते हुए कवि मानव को धरती पर स्वर्ग बनाने के प्रयत्न में देरी न करने का आह्वान करते हैं ।

त्रिलोचन ने "अंधकार" को भी मानव-शक्ति जगाने का माध्यम बनाया है। "जीवन के अंधकारमयपक्ष को भी उठाकर कवि ने प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य स्थापित किया है।"[2]

"आज का यह तिमिर करता शक्ति-दान
समझने मानव लगा है शक्ति-ज्ञान
स्वत्व, जीवन, प्रगति, सामंजस्य, मान
हो चला संघर्ष इससे जगत् -
का अधिवास"[3]

(छा गये बादल, छिपे तारे,
ढका आकाश कहाँ शेष प्रकाश ?)

आकाश में घिर आये बादलों को दिखाकर जागरण का सन्देश देनेवाले त्रिलोचन लिखते हैं -

---

1. "धरती" - पृष्ठ 75. त्रिलोचन .
2. आधुनिक हिन्दी काव्य - डा. भागीरथ मिश्र - 1973, पृष्ठ 506.
3. "धरती" - पृष्ठ 28.

"उठ किसान ओ, उठ किसान ओ,
बादल घिर आये हैं
तेरे हरे भरे सावन के
साथी ये आये हैं "[1]

(उठ किसान ओ)

शिशिर - पवन भी मानव मन की जड़ता को दूर कर उसमें उत्साह और कर्मचेतना भरने के लिये प्रयुक्त है -

हर कर तरुओं की नीरवता
हर कर चिर अभिशाप्त अचलता
भर कर प्राणमयी चंचलता
दे कर निज स्वर
अतिशय सुन्दर
अग जग को कर
प्रखर शिशिर की वायु लहराती

शस्य लता तरु के चुन चुन कर
पात पुराने गिरा गिरा कर
करती सुन्दर और मनोहर
सज कर आती
प्रिय वसन्त के
गीत सुनाती
प्रखर शिशिर की वायु लहराती

---

1. "धरती" - पृष्ठ 126. त्रिलोचन

"परिवर्तन – सन्देश सुनाती
गति के गीत प्रगति से गाती
नूतन सृजन साथ ले आती
नया नया मन
नयी लहर का
चेतन जीवन
प्रखर शिशिर की वायु लहराती"[1]

(प्रखर शिशिर की वायु लहराती)

<u>प्रकृति के द्वारा श्रममहत्व</u>

श्रम के महत्व पर प्रकाश डालनेवाली कुछ प्रकृतिपरक कवितायें भी "धरती" में मिलती हैं। झर – झर बरसते मेघों से धावमान धारायें धरती को वर्णधरा और रूपधरा बनाती हैं और इससे मानव उर भी नव-सृष्टि के लिए तत्पर हो जाता है। प्रकृति मानव-उर को श्रम और क्रियाशीलता के लिये प्रेरित करती – सी दृष्टिगोचर होती है –

"लो, उठे भूमि से हरितांकुर
शोभित है ग्राम-ग्राम पुर-पुर
हो आया शीतल मानव-उर
नव सृष्टि करेगा हो तत्पर"[2]

(बह रही वायु सर सर सर सर)

मानव की श्रमशक्ति को उभारनेवाली प्रकृति का चित्रण करने के प्रसंग में डा. भागीरथ मिश्र का कहना सही है – "प्रकृति से मुग्ध होकर कवि

---

1. "धरती" – पृष्ठ 99-100. त्रिलोचन
2. वही – पृष्ठ 21.

त्रिलोचन सौन्दर्य के उन चित्रों को शब्दों में उभारता है जो जन-जीवन से संबंद्ध हैं जैसे हरे - भरे खेत, पवन, वसन्त, पावस।   उसे एक शक्ति के रूप में स्वीकार कर नई चेतना प्रस्फुटित की है।"[1] श्रम के महत्व को ऊँचा उठानेवाली प्रकृति को प्रस्तुत करने में त्रिलोचन कोई कसर उठा नहीं रखते।

"उठती तरंग पर नव तरंग
जैसे उमंग पर नव उमंग
मन बह चलता है संग संग

दृग में छा जाती है नूतन
तट-हरियाली
गंगा बहती है लहराती
लहरों वाली

उड़ते है नभ में खग, बादल
गतिशील पवन शीतल अविरल
सन्ध्या बेला कंचन के पल
भूतल-नभतल सब स्वर्णप्राय
शोभाशाली
गंगा बहती है लहराती
लहरों वाली

नावें चलती हैं तने पाल
तट-भूमि हरित, निर्मल, विशाल
कुछ जुते खेत कृषि-अंक-माल

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य - डा. भागीरथ मिश्र - 1973, पृष्ठ 506.

श्रमलीन विपुल मानव-समूह
                    कर-बलशाली
गंगा बहती है लहराती
                    लहरों वाली"[1]

(गंगा बहती है लहराती लहरों वाली)

खेत की मेड़ पर बच्चे को दूध पिलानेवाली मजूरिन और श्रमलीन मज़दूरों के पसीने में भी सौन्दर्य का दर्शन करनेवाली प्रगतिशील सौन्दर्य-दृष्टि त्रिलोचन की रही है। इस प्रसंग में देवीशंकर अवस्थी का कथन स्मरणीय है - "प्रकृति के रुक्ष दृश्य के भीतर परिश्रम का यह सौंदर्य भी अनोखा है।"[2] मिट्टी के साथ मिले हुए जनों के साथ त्रिलोचन का तादात्म्य बोध विशेष उल्लेखनीय है।

"प्रभात" प्रगति-अभियान की विजय का प्रतीक

धरती की अनेक कविताओं में प्रभात की चर्चा हुई है। प्रभात त्रिलोचन की कविता में प्रगतिशील अभियान की विजय का प्रतीक मालूम पड़ता है। धरती का रचनाकाल भारत के लिये गुलामी का समय था। विशेष कर त्रिलोचन के लिये अपने "जनपद" की मुक्ति संघर्ष का काल था। गुलामी, गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन जैसे परेशानियों से मुक्ति ही त्रिलोचन की दृष्टि में "प्रभात" है। अतः प्रभात पर आधारित उनकी कवितायें कवि की उपर्युक्त मानसिक ग्रंथि की ओर संकेत करती है। "नये प्रभात की किरणों से कवि का काव्य ओतप्रोत है। त्रिलोचन के काव्य में "आया प्रभात" कवि की उस मानसिक ग्रंथि की अभिव्यक्ति है जो उसे जीवन के अंधकारहीन, पराजयरहित तथा दीप्ति और उल्लास से पूर्ण भाग की ओर आकृष्ट करती है।"[3]

---

1. "धरती" - पृष्ठ 35-36. त्रिलोचन
2. रचना और आलोचना - देवी शंकर अवस्थी - 1979, पृष्ठ 76 .
3. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - रामेश्वर शर्मा -पृष्ठ 130.

"आया प्रभात
फैला प्रकाश
सज गया धरातल अम्बर तल
हो गई दृष्टि की गति अपार
प्रति दिन क्रम से
सुन्दर क्रम से
जो होता रहता परिवर्तन
जिसमें जीवन का लास-हास
जिसमें भव की द्युति का प्रसार"[1]

(आया प्रभात)

प्रभात के आगमन से प्रकृति में जो अपूर्व हास - लास और सुवास - सुहास दृष्टिगोचर होता है उसी से लगता है कि प्रगतिशील कवि त्रिलोचन की परिकल्पना का मुक्ति - प्रभात ही आया है।

"ऋतुमती धरा
है स्वयंवरा
उसकी छवि का नूतन विकास
नव अलंकार अभिनव सुहास
दिग्दिक् व्यापी मंजुल सुवास
देता प्रभात
सुन्दर प्रभात"[2]

(आया प्रभात)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 41. त्रिलोचन
2. वही.

"आया प्रभात" के अलावा - "संगी रहे आज तारे सारी रात", "एक पहर दिन आया होगा", "उड़ो विहग बाँधे मत रहो पंख", "छाती पर चढ़ा हुआ अन्धकार", "प्रिय प्रभात तुम आये आये", "तुम्हें प्रभात पुकार रहा है राही", "तुमने मुझे पुकारा" आदि कवितायें भी "प्रभात" पर लिखी गयी हैं। "संगी रहे आज तारे सारी रात" में कवि "अरुणवर्ण गातवाला प्रभात", "निशि का क्रन्दन समाप्त करनेवाला" कहकर अपने मुक्ति प्रभात की परिकल्पना को सही साबित करते हैं -

"होगा जब प्रात नवल
अरुण वर्ण गात
अरुण वर्ण गात
मेरी निशि का क्रन्दन
होगा अज्ञात
होगा अज्ञात
किरन - धौत चमकूँगा
कह कर लो गई रात"[1]

सूरज के आगमन से प्रकृति में होनेवाले परिवर्तनों का वर्णन "एक पहर दिन आया होगा" में मिलता है। यह भी प्रगति - आभियान की विजय के परिणामों की ओर स्पष्ट संकेत है।

"सरदी के ठिठुरे शरीर के
अंग अंग को छू कर
सूरज की किरणों ने
बँधी मुट्ठियों को खोला

---

1. "धरती" - पृष्ठ 40. त्रिलोचन

फिर अंग अंग का सिकुड़न हर कर
और रक्त का संचालन कर
स्वस्थ बनाया

बीस कदम पर उन पेड़ों को खड़े निहारा
जो प्रकाश में
सहज समीरण की लहरों से खेल रहे थे
देखा, उनकी श्यामल हरियाली में
हलके धुएँ की तरह
कुहरा
किरणों से परास्त हो
छिप कर रहने का उद्योग अथक करता था"[1]

(एक पहर दिन आया होगा)

गुलामी की सरदी के ठिठुरे शरीर को रक्त संचालन कर स्वस्थ बनाने के कवि के संकल्प की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है। "धरती" की "प्रभात" पर आधारित कविताओं का प्रगतिशील अवधारणा की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

"धरती" की उपर्युक्त प्रकृतिपरक कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रकृति का स्वच्छन्द एवं उत्साह - भरा रूप, यहाँ काफ़ी मात्रा में मुखर हुआ है। इसके अलावा, मानवीय साक्षात्कार के लिये भी प्रकृति का उपयोग इसमें हुआ है। साथ ही साथ कवि की प्रगतिशील अवधारणा का समन्वय भी इन कविताओं में हुआ है। यहाँ प्रकृति संघर्ष की प्रेरणा देने के साथ सौन्दर्य का बोध कराने में भी प्रयुक्त हुई है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 47-48. त्रिलोचन

त्रिलोचन की परवर्ती कवितायें

"धरती" के बाद के संकलनों में भी त्रिलोचन का प्रकृति प्रेम अधिकाधिक - प्रबल है। प्रकृति के बहुआयामी रूप चित्रण का विकास भी उनमें उपलब्ध है। प्रकृति के सूक्ष्म - भावों का चित्रण इन कविताओं की पहचान है। आधुनिक कविता में मानवीय भावों के साक्षात्कार को प्रमुखता देनेवाले प्रकृति - चित्रण ही प्रायः देखे जाते हैं। मानवीय भावों का संस्पर्शी इन प्रकृति चित्रणों का वैशिष्ट्य है।"[1] लेकिन त्रिलोचन ने सभी प्रकार के प्रकृति चित्रण प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति का आलांबन रूप, साधन रूप, प्रकृति का मानवीकरण सभी प्रकार के चित्रण उनकी प्रकृतिपरक कविताओं में दृष्टिगत होते हैं।

त्रिलोचन के प्रकृति प्रेम का एक विकसित नया आयाम उनके जीव-जन्तुओं के प्रति संवेदना में पाया जाता है। धरती में प्रकृति के बहुरूपी अंगों तक ही उनका प्रकृति प्रेम व्याप्त था। लेकिन परवर्ती रचनाओं में उनका प्रकृति प्रेम के जीवन - प्रपंच तक फैला हुआ है। उनकी कुछ कविताओं में गौरैया, और बिल्ली के बच्चों तक उनका प्रकृति प्रेम को परिव्याप्त मिलता है।

"खिड़की पै जो गौरैया चहचहाती है
जीवन के गान अपने वह सुनाती है
जाने कहाँ कहाँ से दिन में जा जा कर
प्राणों की लहर पंखों में भर लाती है"[2]

---

1. "In fact, the ability to see and describe any natural phenomenon without reference to personal feeling, is very rare in recent literature". 'An introduction to the Study of Literature' William Henry Hudson - 'On the treatment of nature in poetry'- p.330.

2. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 146.

प्राणीमात्र तक विकसित उनका प्रकृति प्रेम उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है। "मानव सत्य से प्रकृति के जुड़ने पर प्रकृति और मनुष्य और दोनों की अर्थवत्ता का नया धरातल उभरता है।"[1] त्रिलोचन का प्रकृति प्रेम मानव प्रेम का ही विकसित रूप कहा जा सकता है। यहाँ गौरैया में कवि मानव - जीवन सत्य का ही प्रतिरूप पाते है। प्रगतिशील कवि होने के नाते कवि स्वयं मानव जीवन का विस्तार प्रकृति के विस्तार में साक्षात्कृत करते हैं।[2] लेकिन इसमें कवि का प्रकृति की तरफ़ आत्मविस्तार ही पाया जाता है। "त्रिलोचन के सौन्दर्य बोध का मूलाधार उनका जीवन प्रेम है जो मनुष्य, पशु-पक्षी और वनस्पति में सर्वत्र प्रकट हुआ है।"[3]

चिली के महान् प्रगतिशील कवि पाब्लो नेरूदा ने उत्तर अमरिका के कवि रोबट बफै के साथ बातचीत के दौरान कहा था -"मैं फ्रेंच कवि मल्लार्मे की तरह बन्द कोठरी का कवि नहीं हूँ। हमें अपनी खिड़कियों को खोले रखना है, बाहर कूदकर नदी - नालों, जानवरों के बीच जीना चाहिए। जल-थल के जीवन जन्तुओं के पास जाना चाहिए, भले ही मैं एक पुरानाप्रकृति-कामी हूँ।"[4] त्रिलोचन भी खुले वातावरण के कवि हैं। इसी से प्रकृति के साथ उनके सीधे संबंध का भी पता चल जाता है। त्रिलोचन जीवन की समग्रता में विश्वास रखते हैं। इस मायने में वे अपनी परंपरा का अनुसरण करते हैं। परंपरा जीव मात्र के प्रति आस्था रखती है। मनुष्य को ही नहीं - "जैसे वाल्मीकि व्यास, कालिदास, तुलसी की करुणा मानव को ही नहीं, जीवमात्र को अपने भीतर समेट लेती है। उनकी इस करुणा के भीतर भी जीव मात्र आता है।"[5] इस करुणा के कारण ही त्रिलोचन बिल्ली के

---

1. प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य - अजयतिवारी - 1984, पृष्ठ 187.
2. "प्रगतिशील कविता में प्रकृति प्रेम मानव प्रेम का ही एक रूप है, उसका विस्तार है"-प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य - अजयतिवारी -पृष्ठ 179.
3. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर, 1983, पृष्ठ 145 डा. जीवनसिंह - "त्रिलोचन का आत्मसंघर्ष तथा जीवन-विवेक"
4. नेरूदा - सच्चिदानन्दन (अनुवादक) मलबरी बुक्स कालीकट -1985, पृष्ठ 160.
5. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर, 1983, पृष्ठ 144. डा. जीवनसिंह.

बच्चे और गौरैया पक्षी पर कविता करते है। "गुलाब और बुलबुल" में चतुष्पदी द्वारा "पंखों में प्राणों की लहर उठा लाने वाले गौरैया के प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाले कवि के जीव मात्र के प्रति दया का विकास "हम साथी" कविता में दृष्टिगत होता है -

"चोंच दबाए एक तिनका
गौरैया
मेरी खिड़की के खुले हुए
पल्ले पर
बैठ गई
और देखने लगी
मुझे और
कमरे को.
मैंने उल्लास से कहा
तू आ
घोंसला बना
जहाँ पसन्द हो
शरद के सुहावने दिनों से
हम साथी हों. "[1]

(हम साथी)

प्रस्तुत पंक्तियों में "जीवन" का सम्मान करने की कवि की मनोवृत्ति झलक उठती है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता के दौर में पडकर मनुष्य जीव-मात्र के प्रति संबंध का विच्छेद करता - सा नज़र आता है। वह अपने दिल के मसृण कोने की उपेक्षा करता - सा मालूम पडता है। इस यांत्रिकता से उभरी मानसिकता के प्रति त्रिलोचन की कविता में प्रतिक्रिया ज़रूर देखी जा सकती है।

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 15.

"मेरे मन का सूनापन कुछ हर लेते हैं
ये बिल्ली के बच्चे, उनका हूँ आभारी.
मेरा कमरा लगा सुरक्षित, थी लाचारी,
उनकी माँ ले आई. सब अपना देते हैं

प्यार हृदय का, वह मैं इनपर वार रहा हूँ.
मन की अप्रिय निर्जनता-शून्यता झाड़कर
दुलराता हूँ इन्हें. हृदय का स्नेह गाड़कर
नहीं रखा जाता है. भार उतार रहा हूँ

मन का स्नेह लुटाने से दूना बढ़ता है."[1]

(बिल्ली के बच्चे)

जीव मात्र को प्रेम देकर वह अपना दिल हल्का करता ही नहीं, स्नेह को दूना करता भी है।

ओजपूर्ण प्रकृति चित्रण

त्रिलोचन ऐसे कवियों में से नहीं हैं जो पश्चिम के अनुकरण में प्रकृति का तटस्थीकरण करके प्रतीकवादी कहलाते हैं। वे ओजपूर्ण प्रकृति के चित्रण से प्रकृति से अपना संबंध बनाये रखते हैं। वे इस दिशा में किसी वाद के पीछे नहीं पड़े है। अपने आसपास की जीवन्त प्रकृति के सहज और स्वस्थ रूप को प्रकृति निरीक्षण से खोज पाते हैं[2] और उसका अनुभूतिपरक चित्रण कर पाते हैं। एक चित्र देखिए -

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 16. त्रिलोचन
2. "आधुनिक हिन्दी में कविता में भारत की प्रकृति को चित्रित करने का सबसे बडा प्रयास सौन्दर्य को वाद न बनानेवाले प्रगतिशील कवि ही कर रहे हैं - त्रिलोचन का स्थान ऐसे कवियों के बीच है।" समालोचक - मई - 1958, पृष्ठ 30 - चन्द्रबली सिंह .

"अपनी आँखों देखा, रवि ने जाते जाते
    ली अबीर की मूठ, रसा की ओर चला दी.
लाली खिल-सी उठी. रात ने आते आते
    धीरे धीरे सहम सहमकर छुआ - ढला दी
    स्वर्ण - धूलि से परिधि लोह को और गला दी
धातु सघन संचित आशा की हारी हारी
    आँखों तारों में जा अटकीं. अमृत कला दी
वक्र चन्द्र ने कुछ पहले का भारी भारी
मन हलका हो चला. चित्त की सारी सारी
    व्यथा-कथा कुछ और रूप में आई, अब से,
तब का सब, कुछ और हो गया. प्यारी प्यारी
    छवि अम्बर में आँक उठी थी, न्यारी सब से"[1]

(चित्र)

कवि प्रस्तुत सॉनेट में अनूठे ढंग से प्रकृति के रम्य, ओजपूर्ण रूप से परिचित कराते हैं। प्रकृति की अपूर्व छवियाँ खोल देते हुए कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। उसके साथ ही साथ अपनी कल्पना-पुष्कलता भी प्रकट करते है। एक और चित्र प्रस्तुत है -

"सान्ध्य-सूर्य ने तीन इन्द्र-धनुषों को आँका,
    प्राची की सुस्निग्ध प्रगाढ़ श्याम घनमाला
आकर्षक अब और हो गई. तब तक झाँका
    दिनकर ने घनपटल हटाकर, कर की माला
    गले डाल दी वसुधा के. स्वर्णिम उजियाला
        और दिप चला हरियाली पर. वर्षा का जल

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 53. त्रिलोचन

अनुरंजित हो गया. धान बैठानेवाला
दल मजूरिनों का प्रसन्नता से कुछ चंचल
हुआ. झुकी कटि सीधी की. ओठों पर मंगल
ठहर गया. जाँघें छूती हाथों की आँटी
और सुहाई. पूँजे काँपे जल पर पल पल,
उधर बलाका ने अभिनव-श्री घन को बाँटी."[1]

(तीन इन्द्र धनुष)

इन चित्रों में त्रिलोचन की उर्वर कल्पना तथा अनुभूति की समृद्धि का पता चलता है। इस प्रसंग में उमेशचन्द्र की सम्मति भी स्मरणीय है - "दिगन्त संग्रह के कई सॉनेटों में प्रकृति की अनेक छवियाँ उपस्थित की हैं जो उसकी उर्वर कल्पना तथा अनुभूतिमयता का परिचायक है।"[2]

प्रकृति के स्थिर और गतिशील रूप-रंगों का सूक्ष्म निरीक्षण और उसके प्रति गहरी लगन के कारण ही त्रिलोचन ऐसे सूक्ष्म एवं फोटोग्राफिक चित्रण कर पाये हैं जिनको गणना अलग से की जानी चाहिए। इस संबंध में मैनेजर पांडेये का कहना है - "कुछ कवि प्रकृति का वर्णन करते हैं, कुछ उसको व्यंजना करते हैं, लेकिन त्रिलोचन प्रायः प्रकृति का चित्रण करते हैं।

चित्रकार माइकेल एंजिलो की तरह त्रिलोचन भी आसमान में मेघों के बनते - मिटते चित्रों को तल्लीनता से देखते हैं।"[3] ऐसा एक चित्र प्रस्तुत है -

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 62. त्रिलोचन
2. प्रगतिशील काव्य - उमेशचन्द मिश्र - 1966, पृष्ठ 257.
3. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1987, पृष्ठ 25.
जीवन की लय में मुक्ति का राग" - मैनेजर पांडेय .

"संध्या ने मेघों के कितने चित्र बनाए -
हाथी, घोड़े, पेड़, आदमी, जंगल, क्या क्या
नहीं रच दिया और कभी रंगों से क्रीड़ा
की, आकृतियाँ नहीं बनाईं. कभी चलाए
सोने से बादल जिन में चटकीली लाली
उभर उठी थी, जिन की आभा हरियाली पर
थिरक उठी थी. जाते जाते क्षितिज-पटी पर
सूरज ने सोना बरसाया. छाया काली
बढ़ने लगी, रंग धीरे धीरे फिर बदले,
पेंसिल के रेखा-चित्रों से बादल छाए"[1]

प्रस्तुत चित्रण में त्रिलोचन की कला का काफी परिचय मिलता है। प्रकृति के रूप - रंगों एव सूक्ष्मताओं के तल्लीनतापूर्वक अध्ययन से ही इसप्रकार के चित्रों का प्रस्तुतीकरण संभव है। "त्रिलोचन के यहाँ प्रकृति के बहुत संश्लिष्ट चित्र हैं, लेकिन केदारनाथ अग्रवाल की तरह उमंग के बजाय प्रकृति की सूक्ष्मताओं के प्रति उनका आग्रह अधिक है।"[2]

मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा

त्रिलोचन के प्रकृति चित्रण का उद्देश्य मात्र सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति नहीं है, मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा भी है। प्रकृति के प्रति आत्मीय संबंधों से प्राप्त सूक्ष्म भावों एवं तत्वों को मानवोपयोगी रूप से मूल्यों की स्थापना के लिये काम में लाने में त्रिलोचन कुशल हैं। जैसे "दिन ये फूल के हैं" कविता में प्रस्तुत है, प्रकृति में फूल के दिन सब के लिए आते हैं,

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 55. त्रिलोचन
2. आलोचना - अप्रैल-जून, 1981, पृष्ठ 72. राजेश जोशी

किसी वर्ग, जाति-विशेष के लिये नहीं, पूरे - जनपद के लिये आते हैं। सभी पेड़-पौधों के फूलने की बात भी वर्चित है। बबूल के फूलने की ओर भी संकेतित है। बबूल तो अभिजातीय वर्ग का नहीं माना जाता। ये प्रकृतिपरक रचनायें न तो मानवीय सन्दर्भों से कटी हैं बल्कि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये रची गयी है। वह मानवीय समत्व भावना पर आधारित है, वसन्त या फसल का आगमन मानवमात्र के लिये होता है -

"मत जाना चले कहीं भूल के
दिन ये फूल के हैं

किए मन के सिंगार
सामने कचनार
आम के बौर कहते हैं
देखो बहार
हाल ऐसे ही कुछ
अब बबूल के हैं

कोई रूठे मनाओ
आओ जाओ अपनाओ
इस हवा को समझ से
सभी को समझाओ
कितने दिन फूल मंदिर
में धूल के हैं"।

(दिन ये फूल के हैं)

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 21. त्रिलोचन

प्रकृति की उस प्रफुल्लता को दिखाने में त्रिलोचन का उद्देश्य परंपरा पूर्ति या स्वान्तःसुखाय मात्र नहीं, मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा भी है। "त्रिलोचन का प्रकृतिचित्रण केवल प्रकृति चित्रण के लिये ही नहीं है, वह मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करनेवाला भी है, वह हमारे सौन्दर्य - बोध को विस्तृत करनेवाला भी है।"[1]

आजकल ऐसी प्रकृतिपरक कवितायें लिखी जाती हैं जिनके लेखकों का प्रकृति से न कोई संपर्क है न लगन। औद्योगिक विकास के साथ ही साथ लोकजीवन की परंपराओं का ह्रास भी होता जाता है। पूँजीवादी संस्कृति के प्रभाव से लोक कलाओं के विविध रूप नाशोन्मुख हो रहे हैं। ऐसे भी लोग हैं जो प्रकृति का उपयोग आर्थिक लाभ के लिये करते हैं। इन सब के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए त्रिलोचन प्रकृति के सहज और इन्द्रियबोध परक रूप को अपनी प्रकृतिपरक कविताओं में स्थान देते हैं। प्रकृति को गमलों में स्थान देनेवाले धन - लोलुप लोगों के सौन्दर्यबोध - विरोधी गतिविधियों का तिरस्कार करते हुए कवि जीवन में खोये हुए मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास करते हैं -

"गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर. समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा आँचल है,

---

1. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर, 1983, पृष्ठ 145.
त्रिलोचन का आत्मसंघर्ष तथा जीवन - विवेक - डा. जीवनसिंह

यह खेती की
शोभा है. समृद्धि है, गमलों की ऐयाशी
नहीं है, अलग है यह बिलकुल उस रेती की
लहरों से जो खा ले पैरों की नक़्क़ाशी.
यह जीवन की हरी ध्वजा है," [1]

नागरिकों द्वारा गढ़ा प्रकृति के मनगढ़ंत रूप को असली प्रकृति समझकर गलती करनेवाले के सामने जो पर्दा पड़ा है, उसको चीरकर असली, स्पन्दित प्रकृति का वास्तविक एवं जीवन्त रूप दिखाना भी त्रिलोचन की प्रकृतिपरक कविताओं का उद्देश्य है। उनकी कुछ कविताओं में जीवन्त ग्रामीण एवं लोक जीवन की सहयोगी प्रकृति भी अपनी झलक दिखाती है। यहाँ भी वे प्रकृति के प्रति उपेक्षा और तद्वारा हुई मूल्य - च्युति का समाधान करके खोये हुए मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा करने की कोशिश करते हैं -

"ठहरो अब दो चार रोज़ तो, जब आए हो।
महुए फूलों की वर्षा करते रहते हैं,
चैती भी घर में उठ आई है। कहते हैं
दिन तो हैं ये ही किसान के, उकताए हो
तुम तो जैसे, थके थकाए भरमाए हो।
बहुत कल्पनाएँ की होंगी। अब ढहते हैं
मन के मोहक महल तुम्हारे। जो बहते हैं
अपनी मौजों में तुम उनके भरमाए हो।

मंगल की बातें सुनते सुनते मैं बोला
"अपना सोचा सुना गाँव तो कहीं न देखा

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 62 त्रिलोचन

अपनी आँखों से मैंने, वह परदा खोला
जो मन पर चुपचाप पड़ा था। राई रेखा
सत्य नहीं है, जो जो पाया उसे टटोला
नागरिकों का मनगढ़ंत है, फ़र्ज़ी लेखा।"[1]

प्रकृति के असली रूप के सामने नागरिकों का मनगढंत चित्र फीका पड जाता है। त्रिलोचन की प्रकृतिपरक कविताओं में प्रकृति का यह सहज रूप मानवीय मूल्यों की स्थापना कर लोक जीवन की सहजता का एहसास कराता है। इस प्रकार यहाँ भी कुछ मूल्यों की प्रतिष्ठा ही त्रिलोचन की प्रकृति परिकल्पना का अभिन्न अंग है।

कर्म चेतना की प्रेरक प्रकृति

प्रकृति के साथ मनुष्य का संघर्ष अपने विकास की प्रक्रिया का अंग है। प्रकृति की गतिविधियों का अध्ययन करना, उसकी शक्तियों का लेखा-जोखा तैयार करना, फिर संघर्ष के द्वारा उसपर विजय पाना मनुष्य-विकास की विभिन्न सीढियाँ हैं। प्रकृति से मनुष्य क्रियाशीलता का पाठ पढ़ता है और स्वयं क्रियाशील होता है। प्रकृति से कर्मचेतना का सबक सीखने के सिलसिले में मानव ने भारी संघर्ष किये हैं और कई दिशाओं में अनेक विजय भी पाई है। इस विकास-प्रक्रिया को केन्द्रबिन्दु बनाकर त्रिलोचन ने "नदी:कामधेनु" कविता लिखी है जिसका उल्लेख उचित लगता है -

"नदी ने कहा था: मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
तैर कर धारा को पार किया.

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 15. त्रिलोचन

नदी ने कहा था: मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
सपरिवार धारा को
नाव से पार किया.

नदी ने कहा था: मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है

अब वह कामधेनु है."[1]

(नदी: कामधेनु)

नदी से मनुष्य का संघर्ष बहुत पुराना है। उसके कई चरण हैं। नदी की चुनौती को मनुष्य ने जवाब दिया था समय समय पर। कई कालखंडों में उसने नदी को बाँधने की मेहनत भी की थी। अंत में उसने उसे बाँध लिया। कामधेनु के पौराणिक बिंब द्वारा कवि ने इस संघर्ष की कहानी को बड़ी खूबी से अभिव्यक्ति दी है। राजेश जोशी के अनुसार "नदी: कामधेनु" मनुष्य के प्रकृति के साथ लंबे संघर्ष की ही कविता है,[2] बहुत कम शब्दों में त्रिलोचन ने नदी और मनुष्य के बदलते संबंधों को स्पष्ट किया है। इसप्रकार त्रिलोचन की प्रस्तुत कविता में नदी मनुष्य की क्रियाशीलता को प्रेरित करनेवाली, उसे सबक सिखानेवाली शक्ति होती है।

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 13 त्रिलोचन
2. आलोचना - 56-57 - जनवरी-मार्च, 1981, पृष्ठ 66.
जब देखा तब जीवन देखा - राजेश जोशी

इसलिए डा. जीवनसिंह का कहना बिलकुल सही लगता है - "प्रकृति उनके (त्रिलोचन) यहाँ कोरी सुन्दरता की वाहक ही नहीं है वह निरंतर क्रियाशीलता की द्योतक भी है।"[1]

"नदी को दुहना" वाला भाव आधुनिक वैज्ञानिक उपयोगितावादी दृष्टि की उपज कही जा सकती है और मानव के विकास का परिचायक भी है। कविताओं में मनुष्य के द्वारा नदी का दुहना उसके वर्तमान उपयोगितावादी स्वरूप के द्योतन के साथ ही साथ मानवीय विकास की भौतिक परिस्थिति का संकेत भी करता है।"[2]

इसलिए प्रकृति त्रिलोचन के लिए कोरी सौन्दर्य का प्रतीक मात्र नहीं है।

ऋतुवर्णन की सहजता

त्रिलोचन की कविता में प्रकृति के परंपरानुमोदित रूप के साथ साथ परंपरा का परिवर्तित रूप भी दृष्टिगत होता है। ऋतुवर्णन में ये दोनों रूप प्राप्त होते हैं। भारतीय परंपरा और प्रकृति के अनुरूप मानते हुए उन्होंने अपनी कविता में ऋतुवर्णन का विधान किया है। उनके ऋतुवर्णन में मौलिकता का स्पर्श स्पष्ट रूप से लक्षित है। ऋतुवर्णन की परंपरा का विकास त्रिलोचन की कविता में एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में दृष्टिगत होता है। "ऋतुओं के विधान में जिन बातों को पहले के कवियों ने नहीं उठाया उन्हें त्रिलोचन ने अपने इन्द्रियबोध, भाव, विचार एवं जीवन-सादृश्य के विन्यास में नई भाषा प्रदान की है।"[3] इससे उनकी कविता में एक ओर

---

1. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर, 1983, पृष्ठ 145. डा. जीवनसिंह
2. पहल - अंक - 15, पृष्ठ 124.
   त्रिलोचन की देशी कवितायें - सत्यप्रकाश मिश्र
3. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर, 1983, पृष्ठ 145. डा. जीवनसिंह

ऋतुओं का सौन्दर्य गुंफित है तो दूसरी ओर जीवन नये नये रूपों में घुल भी गया है। चूँकि उनकी कविता का मूलस्रोत जीवन - अनुराग है, इसलिए इस दिशा में भी जीवन - प्रेम का ही उद्घाटन हुआ है। यहीं उनकी रचना - प्रतिभा का स्पर्श प्राप्त होता भी है। चाहे ऋतुवर्णन हो या और कुछ जीवन - प्रेम प्रकट करने का कोई भी अवसर त्रिलोचन के हाथ से छूट नहीं जाता।

"बिछे बाग में थे पतझर के टूटे पत्ते,
ऊपर किसलय नई शान से लहराते थे
वायु तरंगों में, रह रह कर दिखलाते थे
नई नई थिरकन। कोई बोला, ये खत्ते
ये चिथड़े, ये शोक चिन्ह, ये भूरे लत्ते
अगर न होते तो छवि होती हम लाते थे
आशीर्वाद स्वर्ग के, इन में खो जाते थे,
व्यर्थ शिखर के हुए हमारे मधु के छत्ते।

हवा बही, सूखे पत्ते बोले, चल चल चल
हम सब देख चुके हैं जो तू देख रहा है,
भोग चुके हैं, जिन भोगों की साध जगाए
तू जीवन से लगा हुआ है, अब तो गल गल
हमें खाद बनना है, विधि का लेख रहा है
इसी अर्थ का, ऊँचे थे हम नीचे आए।"[1]

जिसे टूटे पत्ते भोग चुके हैं, वह किसलय का स्वर्गीय सपना है, भोगे हुए सुख की निरर्थकता की ओर इशारा करते हुए टूटे पत्ते जो कहते हैं, वे मानवीय जीवन के सत्य हैं, उसको कवि ने पत्ते और किसलय के मानवीकरण से जीवन्त और प्रभावशाली बनाया है।

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 37 त्रिलोचन.

वसन्त ऋतु के वर्णन में त्रिलोचन ने काफ़ी कुशलता प्रकट की है। प्रकृति के विविध उपादानों से बिंबों की माला सी तैयार करके वे वसन्त ऋतु का सार्थक वर्णन प्रस्तुत करते हैं -

कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसंत
आमों ने मौर ला के कहा आ गया बसंत

क्यों मुझ को छेड़ती है हवा बोल बार बार,
उस ने ज़रा बल खा के कहा आ गया बसंत

हर टहनी में जीवन के नए पत्र आ गए,
पीपल ने दल दिखा के कहा आ गया बसंत

वे पत्र गए, जायँ, फूल तो नए पाए,
सिर नीम ने उठा के कहा आ गया बसंत

बस्ती से दूर मुझ से बताया बबूल ने,
हम ने भी फूल पा के कहा आ गया बसंत

खेती हुई तैयार रंग भी निखर चला,
कुछ वायु ने समझा के कहा आ गयाबसंत

मैं ने प्रभात से कहा बदले हुए हो आज,
तो उस ने मुसकरा के कहा आ गया बसंत

चौताल की लहर में बोल ढोल के उठे,
गाँवों ने फाग गा के कहा आ गया बसंत

पहले की तरह आज भी फिर रेंड़ गड़ गए,
हर कंठ ने गा गा के कहा आ गया बसंत

तुम हो सुखी सुखी रहो मत छेड़ो दुखी को,
कोयल ने यह सुना के कहा आ गया बसंत

दुनिया के राग-रंग में गाते हैं त्रिलोचन,
हम ने पता लगा के कहा आ गया बसंत"[1]

प्रस्तुत गजल में कवि ने सारी प्रकृति का पता लगाते हुए कहा है कि वसन्त आम, पीपल, नीम, के लिये ही नहीं, बबूल के लिये भी आया है। उषा प्रभात एवं सारी दुनिया इसीसे प्रभावित है। कोकिल ही नहीं, सारे जनपद के लिये वसन्त आल्हाद की ऋतु है। वसन्त सारी प्रकृति और मानव के लिये खुशी और राग-रंग का कारण है।

आलंबन प्रणाली से चित्रित यह वसन्त ऋतु अपनी मार्मिकता के कारण उल्लेखनीय है। "वसन्त के विभिन्न बिंबों की यह माला वास्तव में एक स्वस्थ मना कवि के प्रकृति प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है।"[2] इससे ऋतु की मोहकता का समग्र रूप तो उभरता है, साथ ही साथ कवि के प्रकृति से लगाव एवं लगन भी उद्घाटित होती है।

वसन्त का एक और चित्र प्रस्तुत है जिसमें से ऋतु की अनूठी शोभा का चित्र उभरता है और साथ ही धरती एवं खेतों का संगीत भी उठता है।

"गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक कर. समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा आँचल है, "[3]

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 56. त्रिलोचन
2. स्थापना - 7, सितंबर - 1970, कवि त्रिलोचन डा. रणजीत
3. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 62 त्रिलोचन

इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि कवि की प्रस्तुत ऋतु के प्रति जो संवेदना है वह स्वानुभूत है, आरोपित नहीं है। जैसे "तेल से बसी लहरें नाक में समा जाती" की उक्ति इतनी सहज कि पाठकों को भी इसका एहसास हो जाता है।

वसन्त ऋतु के अलावा अन्य ऋतुओं के वर्णन में भी त्रिलोचन ने अपूर्व कुशलता पाई है। जनपदीय प्रकृति की अनूठी शोभा पर कवि की दृष्टि गहरे में पड़ी है और प्रत्येक ऋतु के आते-जाते व्यक्त होनेवाले मानवीय भावों एवं मानसिकता के सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने में कवि सफल हुए हैं। ऋतुराज वसन्त के अलावा ग्रीष्म, हेमन्त एवं शरत की ऋतुओं में भी कवि की बड़ी रुचि है और प्रत्येक वर्णन में उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य के निरूपण में कवि ने काफ़ी सफलता से ऐन्द्रिकता से काम लिया है। "ग्रीष्म तथा हेमन्त आदि ऋतुओं का इतना बढ़िया वर्णन हिन्दी काव्य में पहले नहीं हुआ।"[1] ग्रीष्म का एक चित्र प्रस्तुत है -

"झाँयँ झाँयँ करती दुपहरिया नाच रही थी
जलती हुई. भौर सी गर्मी की पगडंडी
मुझे ले गई आमों की बारी में. की थी
नहीं अधिक की आशा. पा कर छाया ठंडी,
आँख मूँद कर सोचा मन में, स्वर्ग यही है.
तब तक देखा तुम को, इस उस पेड़ के तले
आम बीनते. अनुभव किया, पुकार रही है
प्यास, सुखाकर तालू को. फिर पैर ले चले
पास तुम्हारे. जा कर बोला, प्यास लगी है."[2]

---

1. समीक्षा - जनवरी-मार्च, 1983, पृष्ठ 14. विजेन्द्रनारायण सिंह
2. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 57. त्रिलोचन

ग्रीष्म की दुपहरिया की झुलसती धूप में छाया मिली तो स्वर्ग मिला-सा लगा, यह बहुत ही सहज भावना है। त्रिलोचन की दृष्टि प्रकृति के सौन्दर्य-बिन्दुओं पर पड़ती है और साथ ही साथ ऋतुवर्णन में प्रभाव को भी महत्व दिया गया है। सौन्दर्य और प्रभाव दोनों पर ज़ोर पड़ता है। प्रस्तुत ग्रीष्म वर्णन में प्रभाव को ज़्यादा महत्व दिया गया है। ग्रीष्म का प्रभाव जनपदीय जीवन पर जितना पड़ता है उसका चित्रण काफी सजीव हुआ है।

शरद ऋतु के वर्णन में भी त्रिलोचन ने अपूर्वता दिखाई है। धरती को एकदम बदलनेवाली शरद् ऋतु की अनूठी मोहकता है। वह धानों से सब का मन हरती है। ऋतु में अपना आकर्षण और अपना वैशिष्ट्य है। त्रिलोचन के ऋतुवर्णन में इसी वैशिष्ट्य की पहचान है। शरत् ऋतु में प्रकृति और जीवन जन्तु में जैसा बदलाव दीखता है उसी के अनुरूप ही त्रिलोचन ऋतु-वर्णन करते हैं। हर ऋतु में प्रकृति के सूक्ष्मता से बदलते भावों को सहज रूप में प्रस्तुत करना त्रिलोचन की खूबी है। शरत् का वर्णन प्रस्तुत है -

"खिली दृश्यता आज. शरद की ऋतु कुछ ऐसी
होती है, दे जाती है वह साज कि धरती
अपने आप बदल जाती है, नव श्री जैसी
आती और सुनहले धानों से मन हरती
है सब का निर्व्याज, मौर बाली का करती
पेंग मारती हवा झूलते तरु-तृण सन सन,
करते हैं किसान खेतों में काज. बिचरती
है खिंड़रिच, उठती गिरती सी लहरों पर, कन
चुनती है, संगीत की तरह नन्हा सा तन
इधर उधर को बढ़ता है. सौरभ धानों का

और दूब का प्रखर धूप से बिखर कर विजन
को वासित करता है. मन के आह्वानों का
हृदयों की धड़कन में रहता राज है. इधर
निर्मल हवा, अकास, भूमि, दिख गया जो जिधर"[1]

शरद ऋतु में खेत में धानों की अवस्था और उसका अपने वास से परिवेश को भरना और सब का मन हरना, खिडरिच का संगीत सा इधर उधर बढ़ना और कन-कन चुनना, निर्मल हवा, आकाश, भूमि का दिखना आदि अपनी विशेषतायें हैं, उनको सहजता से प्रस्तुत करना त्रिलोचन की मौलिकता है।

हेमन्त वर्णन में भी त्रिलोचन की अपनी मौलिकता प्रकट हुई है। हर ऋतु मानव पर जो प्रभाव डालती है उसका सहज वर्णन प्रस्तुत करने में वे बहुत ही कामयाब हुए हैं। प्रकृति के बदलते भावों का सूक्ष्म चित्रण शायद ही कोई प्रस्तुत करता हो,

"सूनी सड़क गई पीछे। पेड़ों का झुरमुट
अब आया था। कुहरा रोक पेड़ की छाया
मुझ को गरमा चली. देखता ऊपर छिटफुट
तारे बढ़ा जा रहा था. सूनापन पाया
अपने आसपास, प्राणों से घुला मिला सा.
कुत्तों का भूँकना दूर गाँवों में, टप टप
पत्तों से ओस का टपकना, कौन दिलासा
देता एकाकी को. स्मृति की माला जप जप
चलता रहा और तब तक फरियाई प्राची,
कुहरा और बढ़ा। फिर सर्दी नाखूनों में

---

1. उस जनपद का कवि हूँ – पृष्ठ 48 त्रिलोचन

चुभने लगी. उषा मुसकाई. नस नस टाची
जान पड़ी, आर्द्रता आ गई थी कूनों में.
जरा गुनगुनाया जब सूरज उठा बाँस भर
और चढ़ी गति, पाँव बढ़ाए नई साँस भर. [1]

कुहरे से बचने को पेड़ की छाया तले चलना, टप-टप पत्तों से ओस का टपकना, सर्दी का नाखूनों में घुस जाना, नस नस का टाची जान पड़ना, कूनों में आर्द्रता आ जाना सर्दी की अतिशयता को प्रमाणित करते हैं। हेमन्त ऋतु की सहजता की अभिव्यक्ति करने में यह चित्रण समर्थ है।

त्रिलोचन का वर्षा ऋतु वर्णन उल्लेखनीय है। इसमें वर्षाकालीन प्रकृति की विशेषताओं की चर्चा करते हुए वर्षा, मेघगर्जन आदि के वर्णन में ध्वन्यात्मक योजना के प्रयोग के द्वारा कवि ने वर्षा वर्णन को बहुत ही प्रभावशाली बना दिया है।

"भरी रात भादों की...पथ...लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आँखों में इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौंधा.
तड़ तड़ तड़त्तड़ाड़. ध्राड्. ध्रा ध्राड्. ध्रू्रू. ध्रू. डुम्

धाराधर का गगन-गान सुनकर तुम बोले
"चलो कहीं रुक जायँ, रात भी अधिक हो गई,
दिन दिन चलना अच्छा होगा". पथ पर टोले
गाँव कहीं दीखते नहीं थे. "कहाँ खो गई

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 6। त्रिलोचन

वह मूर्ति जो तुमको उभारकर पथ पर लाई
    मैंने कहा. फिर चमक, कड़ कड़ कड़क कड़ग्घम्.
पकड़ तुम्हारे हाथों की कन्धे पर पाई,
    बाग़ आ गया था, शरणस्थल मिला, गये जम.

रिमझिम रिमझिम – छक् छक् छक् छक् – सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक–धमाके घन के, उत्सव निशि भर, "[1]

वर्षा–वर्णन के प्रस्तुत ध्वनि–विधान से, वर्णन में वर्षाकालीन प्रकृति की स्पष्ट प्रतीति बन पाई है। त्रिलोचन प्रकृति के कोमल एवं रौद्र दोनों रूपों के वर्णन में बिलकुल सफल हुए हैं। वर्षाकालीन रात की रौद्रता का साकार रूप ही प्रस्तुत सॉनेट में उभर आया है। ध्वनि – योजना वर्षाकालीन रात के कोलाहल के बिलकुल अनुरूप ही हुई है।

ग्रामान्तर की प्रकृति को जीवन्तता

अवध प्रान्त के ग्रामान्तर की प्रकृति का सूक्ष्म वर्णन त्रिलोचन की कविता में सौन्दर्यपूर्ण भाव–भंगिमा के साथ प्रस्तुत है। जनपदीय प्रकृति के सान्निध्य को लाने में ये रम्य चित्र सफल होते हैं। त्रिलोचन के प्रकृति–चित्रण में यही वैशिष्ट्य है कि वे प्रकृति की नगण्य चीजों को भी अपूर्व प्रभावात्मकता से कलात्मक बनाते हैं। उनके द्वारा चित्रित प्रकृति सहज प्रकृति के रूप में ही लाक्षणिकता लाने में सफल हैं। वे बिंबों की अधिकता से संकीर्ण हुए बिना ही अद्भुत प्रभावात्मकता का सृजन करते हैं।

त्रिलोचन जनपदीय प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। इसलिये उन्होंने जनपद की प्रकृति के चित्र यथार्थ दृष्टि के साथ प्रस्तुत किये हैं। असली जनपदीय प्रकृति पेड़–पौधों, लता–गुल्मों से युक्त उनकी कविता में मौजूद है –

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 28. त्रिलोचन

"नगई महरा था
अपना गाँव छोड़ कर
चिरानीपट्टी आ बसा
पूरब की ओर
जहाँ बाग या जंगल था
बाग में
पेड़ आम जामुन या चिलबिल के
जंगल में मकोय, हैंस, रिसवल की बँवर
झाड़ियाँ झरबेरी की
और कई जाति की
ढेरे, कटार, ढाक, आछी,
बबूल और रेवाँ के
पेड़ भी जहाँ तहाँ खड़े थे"[1]

(नगई महरा)

"बुन्देल खंड के बिना जैसे केदार की कविता और मिथिला के बिना नागार्जुन की कविता की कल्पना नहीं की जा सकती, ठीकवैसे ही अवध के बिना त्रिलोचन की कविता की भी कल्पना नहीं की जा सकती। अवध की प्रकृति और लोकसंस्कृति के गहरे संस्कार उनकी कविता में रचे-बसे हुए हैं।"[2] जनपद के मौसमों एवं बदलते मौसमों के बीच रहते मानवों के सूक्ष्मतर बदलाव के प्रकारान्तरों का चित्रण करके त्रिलोचन ने अपने सूक्ष्म इन्द्रिय बोध का परिचय दिया है। "त्रिलोचन सघन और सूक्ष्म इन्द्रिय बोध के कवि हैं। रूप रस-गन्ध और ध्वनि के अपने तीव्र बोध के साथ वे जीवन और जगत के नैसर्गिक सौन्दर्य के अछूते चित्र देते हैं।"[3]

---

1. ताप के ताए हुए दिन – पृष्ठ 64 . त्रिलोचन
2. आलोचना – अक्तूबर-दिसंबर, 1985, पृष्ठ 77.
   रंगों का एक पूरा संसार – श्यामकश्यप

त्रिलोचन परंपरानुमोदित, अभिजातवर्गीय जुही, चमेली, शिरीष जैसे फूलों के साथ ही निम्नवर्गीय नीम, बबूल कटहल के जनपदीय फूलों की प्रफुल्लता एवं राग-रंग का भी सूक्ष्म चित्रण करते हैं।

"फूलों की चाँदनी नीम में जो आई है
खींच रही है सुरभि-डोर से मेरे मन को
बरबस अपनी ओर, भला कैसे इस जन को
कृपापात्र कर दिया सुछवि ने जो छाई है
टहनी टहनी पर."[1]

बबूल के फूल पर भी कवि की दृष्टि पडी है। उनके प्रति कवि की अनुकूल मानसिकता जनपदीय निम्नवर्गीय जीवन के प्रति उनके झुकाव से मेल खाती भी है।

"फूल मुझे भाए बबूल के तूली जैसे
राशि राशि हँसते मानो आनंद मनाते
चेतन कण हों, हरित पीत वर्णच्छवि, ऐसे
भाव, वर्ण की प्रीति कहाँ है. रूप बनाते
इस बबूल को देर कब लगी,"[2]

कटहल के फूलों पर भी त्रिलोचन की दृष्टि लगी है।

"कटहल के फूलों की लहरों ने रोका था
बढ़ते पैरों को रस्ते पर, चाँद तीज का
बस डूबने डूबने था."[3]

कटहल के फूलों ने सौन्दर्य की जो लहर बहायी है उसने कवि को रास्ते पर बरबस रोक लिया है।

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 52. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 65 .
3. वही - पृष्ठ 60 .

परंपरानुमोदित शिरीष पुष्प भी त्रिलोचन के अपने जनपद के सौन्दर्य में चार-चाँद लगानेवाले हैं। उनके सौन्दर्य-चित्रण की कला भी दर्शनीय है -

"यह शिरीष का फूल - स्वंय कोमलता जैसे
यहाँ हुई साकार. पेड़ कितना विशाल है
अनगढ भी, गर्मी में शीसे युक्त भाल है
चँवर तुल्य इस सरस सुमन से.शोभित ऐसे
है मानों बहु चामरधारी तरु शिरीष का
करता हो ऋतुराज को चँवर मंद गंधमय
फूलों से, जो हरित कपिश, आरूढ़ छंदमय
गेय गीत से हैं. भूषण है किसी शीष का."[1]

शिरीष कोमलता में अद्वितीय फूल है। यह चँवर-तुल्य शोभा देता है और ऋतुराज को अपने सुन्दर सुमनों से चँवर करता है। शिरीष के फूल की अनूठी शोभा के सूक्ष्म रूप का गायन करनेवाले त्रिलोचन किसी भी फूल में सौन्दर्य का दर्शन करते हैं।

ग्रामप्रांतरों में कभी मेंहदी की अरघान उडती है जो घ्राणेन्द्रियों को अमृत पिलाती है। वह वर्षा सीकर-भरी हवा में घुली-मिली चलती है। सभी इन्द्रियों को स्फूर्ति प्रदान करनेवाली चीज़ों का विधान करते हुए त्रिलोचन ग्रामप्रांतरों की जीवंतता एवं अनूठी शोभा की अभिव्यक्ति करते हैं -

"मेंहदी की अरघान उड़ी. देखा, फिर ठहरा,
कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
अपने सौरभ के स्वर मिलकर मिला रहे हैं.
हवा चली, मानो वे बोले, निशिदिन पहरा
यहाँ हमारा रहता है. गहरे से गहरा

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 53 त्रिलोचन

भेद हमारे यहाँ खुलेगा. खिला रहे हैं
हम मेंहदी से मर्म सत्य का पिला रहे हैं
अमृत प्राण को. स्वार्थ यहाँ तक आते हहरा.

वर्षा-सीकर-भरी हवा, मेंहदी को मँह मँह
जी करता है, मैं अंजलि भर भर पी जाऊँ.
जैसे फुलसुँघनी गाती है वैसे गाऊँ.
वृक्ष, लताएँ, पौधे, तृण धरती पर डह डह
करप रहे हैं. मेघ-नगर में ज्योत्स्ना टह् टह्
उग आई अब. आँखें सहस कहाँ से लाऊँ "[1]

(मेंहदी और चाँदनी)

त्रिलोचन के इस प्रकृति-चित्र में ग्रामान्तरों की शोभा के साथ धड़कते जीवन की पहचान भी है।

त्रिलोचन जब ग्रामान्तरों को तंग करनेवाले जाड़े का वर्णन करते हैं, उस जाड़े से बचाव चाहने वाले ग्रामीणों पर प्रकाश डालते हैं तब ग्रामान्तरों की अनूठी प्रकृति की शोभा के साथ समस्त जीवन-व्यापार ही खुल जाते हैं। प्रकृति में जीवन के साक्षात्कार की व्यंजना भी हो जाती है।

"जाड़े का दिन. धूप खिली है आसमान की
नील लता पर, प्राची में, थोड़ा सा ऊपर
सूरज उठ कर चला गया है,

प्रिय लगती है बहुत, घमौनी घाम देख कर
लोग कहीं जमते हैं, गाएँ और बकरियाँ

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 47 त्रिलोचन

कड़ी धूप में मौज लिया करती हैं, सर्दी
कभी रह जाती है. घर से मीन-मेख कर
आती हैं महिलाएँ, आती हैं सुंदरियाँ
कुछ करती रहती हैं आवारागर्दी ।"[1]

जाड़े के दिन गाँवों में, आसमान की नील लता पर जब धूप खिल जाती है तब की अवस्था का इतना सजीव, सहज, जीवन-व्यापारों का इतना विशिष्ट चित्रमय रूप दुर्लभ है। सर्दी की जड़ता से चेतनता प्राप्त कर सामान्य बनने वाले ग्रामीण जीवन की समग्रता का यह स्वाभाविक चित्र बहुत ही प्रभावशाली है। जीवन एवं प्रकृति की मामूली बातें एवं वस्तुएँ उत्तम कला का सफल फलक कैसे हो सकती हैं इसका प्रमाण इन पंक्तियों में मिल जाता है।

जीवन व्यापारों की परोक्ष व्यंजना करने वाले ग्रामांतरों के प्रकृति-चित्रण त्रिलोचन की कविता में काफी मात्रा में मिल जाते हैं। ग्रामीण जीवन एवं प्रकृति से संपृक्त कवि के जीवन के सापेक्ष्य में इन कविताओं को लिया जा सकता है -

"पीपल के पत्ते ने ज्यों मुँह खोला खोला
त्यों चटाक से लगा तमाचा आ कर लू का,
झेल गया वह भी आख़िर बच्चा था भू का।
लेकिन जिस ने देखा उस का धीरज डोला,
बैठ कलेजा गया। तड़प कर कोकिल बोला
कूऊ कूऊ मिले भले ही आधा टूका
लेकिन ऐसा न हो। राह चलते जो चूका
उस को दुख ने अदल बदल कर फिर फिर तोला।
सब को नहीं, नौनिहालों को अगर बचा दे
तो लू का डर नहीं, जहाँ चाहे आ जाए, "[2]

---

1. शब्द - पष्ठ 22 . त्रिलोचन

बदलते मौसमों के अनुरूप ग्रामीण प्रकृति के बदलते चित्र भी त्रिलोचन ने बड़ी कुशलता से खींचे हैं। ये भी ग्रामांतर के सौन्दर्यपूर्ण प्रकृति की सहज झलक प्रदान करते हैं -

"चैती अब पक कर तैयार है. खेतों के रंग बदल गए हैं.
मटर उखड़ रही है. गेहूँ जौ खड़े हैं, हवा में झूम रहे
हैं. हवा की लहरों पर धूप का पानी चढ़ जाता है.

फूले हैं पलाश, वैजयंती, कचनार, आम. चिलबिल अब
खंखड़ हैं, पीपल, शिरीष, नीम का भी यही हाल है.
बाँसों की पत्तियाँ हरियाली तज रही हैं। जल्दी
ही उन्हें अलग होना है.

कमलों के कुंड में पुरइनों की बाढ़ है, अब वे फूल कहाँ हैं.
जो ध्यान खींच लेते हैं. कुंड के कँटीले तार की बाड़ों
के बाहर ताल है जो ऐसे ही तारों से घिरा है.
जहाँ जल नहीं है वहाँ घास है, और जहाँ जल है वहाँ
बस पानी है. हरी हरी काई और पौधे सिंघाड़ों के
दखल जमाए तलाव भर में पड़े हैं."[1]

सारनाथ

त्रिलोचन के द्वारा प्रस्तुत प्रकृति के स्वाभाविक दृश्यों और कविता के बीच कोई दूरी नहीं दिखाई पडती। इसमें मौसम, पेड, पक्षी, फसलें, खेतखलिहान के साथ पलाश, बैजयन्ती, कचनार, आम, चिलबिल सब जीवन्त हैं और प्रकृति के ये प्रामाणिक चित्र दृश्य-गुण की दृष्टि से फिल्म-जैसे लगते हैं। **सारनाथ** पर लिखी इस कविता में भी ग्रामांतर के देसी अनुभवों का एहसास है।

---

1. चैती - पृष्ठ 48 . त्रिलोचन .

त्रिलोचन की परवर्ती रचनाओं की प्रकृति में "धरती" की प्रकृति की अपेक्षा ध्यान का भाव कम दीखता । लेकिन तन्मयता का स्पर्श ज़्यादा मिलता । ज़्यादातर प्रकृति चित्रों में ग्रामीण जीवन की भाषा के शब्दों के प्रयोग से ग्रामीण भाव और परिवेश का एहसास मिल जाता है।

कई कई दिनों से पड़ाव पड़ा हुआ है
बादलों का
निकलने का नाम भी नहीं लेते

वर्षा
फुहार, कभी झींसी, कभी झिर्री, कभी रिमझिम
और कभी झर झर झर झर
बिजली चमकती है
चिर्री गिरती है
पेड़ पालो सभी काँपते हैं

चिड़ियाँ समेटे पंख जहाँ तहाँ बैठी हैं."[1]

(झापस)

प्रस्तुत कविता में प्रयुक्त "झींसी", "झिर्री", "चिर्री" आदि शब्द ग्रामीण भावों के ध्वनि-चित्र प्रस्तुत करते हैं। इनसे ग्रामीण जीवन एवं प्रकृति की प्रामाणिकता की घोषणा होती है। "त्रिलोचन की कविताओं में प्रायः एक ही स्थान की प्रकृति ही अपने पूरे सौन्दर्य के साथ चित्रित हुई है। वह स्थान कोई और न होकर अवध जनपद ही है।"[2]

---

1. चैती - पृष्ठ 20. त्रिलोचन
2. समीक्षा - जनवरी-मार्च 1983, पृष्ठ 45
'उस जनपद का कवि हूँ'-की समीक्षा से - नन्दकिशोर नवल

किसानी दृष्टि से ग्रामांतर प्रकृति

त्रिलोचन की ग्रामांतर प्रकृति के चित्रण में उनकी किसानी दृष्टि उभरती नज़र आती है। प्रकृति को देखने में किसान की अपनी दृष्टि है। वह लहलहाते पौधों को देखकर रोमांचित होता है। सावन के बादलों को देख कर वह इतना हर्षित होता है मानों अपने साथी आये हों। बादल उसके संगी-साथी हैं तो प्रकृति के बदलते मौसम भी उसके जीवन में अपना प्रभाव डालते हैं। मौसम के अनुरूप बदलती उनकी मानसिकता का स्पष्ट पता त्रिलोचन को प्राप्त है। उसकी अभिव्यक्ति त्रिलोचन की कविता में मिलती है। त्रिलोचन को "हिन्दुस्तान के किसी गाँव का खाँटी किसान मानना ज्यादा मौजू लगता है।"[1] त्रिलोचन की दृष्टि भी उस किसान की जैसी मालूम होती है जो प्रकृति को अपने ढंग से देखता है। "प्रकृति के बारे में त्रिलोचन का दृष्टिकोण बहुत कुछ उस ठेठ भारतीय किसान जैसा है जो कठिन श्रम के बीच भी उगते हुए पौधों की हरियाली को देखकर रोमांचित होता है।"[2] प्रकृति के रम्य चित्रों के साथ साथ बादलों के कठोर संगीत की गूँज को अपनी कविता में भर देते समय भी वे अपनी किसानी दृष्टि से काम लेते हैं। यह किसान सुलभ-दृष्टि त्रिलोचन की विशेष पहचान है और उनकी विश्वदृष्टि भी इसी दृष्टि पर निर्भर है।

किसान अपने खेत के कोने-कोने से, मेड और पानी से, उसके हर रोये-रेशे से परिचित है और यही उसकी रंगस्थली है, आनेवालों को वह इसी रंगस्थली से परिचित कराना भी चाहता है।

---

1. कस्तूरी मृग - शिवप्रसाद सिंह - 1982, पृष्ठ 156.
2. त्रिलोचन की प्रतिनिधि कवितायें - भूमिका - पृष्ठ 6
   डा. केदारनाथ सिंह

इस रस्ते से नहीं, उधर, उस रस्ते हो लें।
उधर मेड़ ऊँची है और खेत में पानी
सोये है। धनखर होने से धरती धानी
लहराती है। चलते हुए दिशा हम जो लें
तब और कहीं भी ठहराने को आँखें खोलें
यह आकाश उदार रहेगा। साँझ कहानी
कह जाएगी किसी जगह, फिर नई, पुरानी,
जैसा जी में आए, सुनने वाले बोलें।

लहरें लेते इन धानों को यह हरियाली
जिन साँसों से निकली है, ज़मीन पर झुक के
कई बार में कई गीत जी से जो गाए
यहाँ उन्होंने, पौदे उनके सुर की ढाली
हुई लहर हैं, तुम तो जी चाहा तो रूक के
जरा देख लोगे, चल दोगे जैसे आए।"[1]

"इस चित्र में सिर्फ रंग ही नहीं है, धान के खेतों का संगीत भी सुनाई पड़ता है। यह संगीत भी दरअसल उनका है, जिन्होंने इन पौधों को रोपा है।"[2] खेतों की हरियाली उन किसानों की साँसों से निकली हैं। इनके खून-पसीने का रूपान्तर, उनके स्वर की ढाली हुई लहर है, चाहे देखनेवाले रूककर देखें या चले जायें, किसानों का कोई मतलब नहीं। खेतों के प्रति त्रिलोचन की मानसिकता इससे बहुत ही स्पष्ट है।

बाहर से आनेवाले अतिथियों का स्वागत भी किसान अपने ढंग से करता है। महुए में फूल आये हैं और यही उसके लिये खुशी का मौसम है। उसी में आनेवालों को भी शरीक होने में उसकी खुशी है।

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 103. त्रिलोचन
2. समीक्षा - अक्तूबर-दिसंबर - 1996 पृष्ठ 72

"ठहरो अब दो चार रोज़ तो, जब आए हो।
महुए फूलों की वर्षा करते रहते हैं,
चैती भी घर में उठ आई है। कहते हैं
दिन तो हैं ये ही किसान के, [1]

चैती और महुए के फूलने के साथ साथ किसान का मन भी प्रफुल्ल होता है। त्रिलोचन की मानसिकता भी इसी किसानी की है, यही प्रस्तुत पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है। बारिश का मौसम किसानों के लिये बड़े महत्त्व का समय है। खेती बारिश पर निर्भर है, इसलिये मौसमी बादलों के आगमन से किसान हर्षित होता हैं। आकाश में बादलों के तरह-तरह के खेल वे बड़े उत्साह से ताकते रहते हैं। त्रिलोचन की सौन्दर्य चेतना के निर्माण में इन मौसमी बादलों का बड़ा हाथ है। वे भी किसान की तरह इन बादलों के सूक्ष्म बदलाव एवं गतिविधियों का निरीक्षण करते हैं और उनके खेल से उत्साहित एवं आल्हादित होते हैं -

"इधर घनों के खेल व्योम में नए निराले
होते हैं दिन रात, मौन हैं, कभी मुखर हैं,
मंद मंद निर्घोष, कभी गर्जन के स्वर हैं,
कभी मंडलाकार कभी चोटियाँ निकाले
ढकते हैं आकाश उमड़ कर, काले काले
पर्वत जैसे और कभी बूँदों के शर हैं,
रिमझिम रिमझिम रास अभी था, अभी प्रखर हैं,
अभी शांत गंभीर, अभी बिलकुल मतवाले।

कृष्ण श्वेत या धूम रंग जो जी में आया
वही दिखा कर मौज भरे चल पड़े गगन में,

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 15. त्रिलोचन

कभी यूथ के यूथ कभी बिल्कुल एकाकी
आ जाते हैं, सूर्य करों से जीवन पाया,
इन से भू के भाव मगन हैं अपनेपन में,
नाच रहा है मोर लहर है तो केका की।"[1]

बादल देखकर मोरनी के समान नाचनेवाली धरती को "जीवन" देनेवाली प्रकृति का रूप यहाँ प्रस्तुत है। त्रिलोचन का प्रकृति-प्रेम उपर्युक्त कविताओं के आधार पर किसान मानसिकता पर आधारित है।

निष्कर्षतः त्रिलोचन की परवर्ती कृतियों में प्रकृति "धरती" में चित्रित प्रकृति से अधिक सूक्ष्म दिखाई पडती है। प्रकृति की सूक्ष्मता के प्रति स्पष्ट और तीव्र आग्रह प्रस्तुत प्रकृति कविताओं की विशेषता है। प्रकृति के प्रति उमंग और प्रगतिशील उभार "धरती" की प्रकृतिपरक कविताओं से कम होने पर भी इन कृतियों में प्रकृति के सूक्ष्म भावों एवं स्वरूपों के प्रति आग्रह, कल्पना की प्रचुरता, जीवन-अनुराग की कलापूर्ण अभिव्यक्ति ज़्यादा मिलती है। यही नहीं कि त्रिलोचन की ये परवर्ती प्रकृतिपरक कविताएँ लोक कविता के बहुत करीब लगती हैं। लोक कविता की तन्मयता इन कविताओं में भी देखी जा सकती है।

त्रिलोचन के काव्य में लोक-जीवन

त्रिलोचन स्वयं ग्रामीण हैं। इसलिए लोक-जीवन और ग्राम जीवन के प्रति उनकी संवेदना आरोपित नहीं, स्वानुभूत है। "अपने जीवित" जीवन को कविता के शब्दों में बाँधने पर उसमें ग्रामीण मिट्टी की सुगंध आयी। उसमें लोक-जीवन के ताल-मेल की गूँज-अनुगूँज सुनाई पडी। "केदार, त्रिलोचन और नागार्जुन से प्रभावित होनेवाली कविता ग्रामीण परिवेश में जन्म लेने वाले, ग्रामीण संस्कारों में पले-बढे कवियों की कविताएँ थीं जिन में गाँव सिर्फ एक

---

1. फूल नाम है एक - पृष्ठ 90. त्रिलोचन

विषय मात्र नहीं, हमारे जीवित अनुभवों को एक ऐसी आत्मीय बिरादरी थी जिसे कविता के शब्दों में बाँधते हुए हमारे कवि न तो आन्दोलनी उफानों से परिचालित थे, न ही कोरे सैद्धांतिक दबावों के वशीभूत ही।"[1] चिरानीपट्टी गाँव में किसान परिवार में पैदा होने वाले कवि ने ग्रामीण जीवन को निकट से जाना। ग्रामीण जनता के लिये शिक्षा और संस्कृति के बन्द द्वार देखे। स्वयं शिक्षा पाने में विषमता का अनुभव हुआ। किशोरावस्था में ही शिक्षा समाप्त कर नौकरी की खोज में दर-दर घूमना पड़ा। उन्होंने गृहातुरता के साथ "गरीबी और अंधविश्वास के बीच मरती - जीती ग्रामीण जनता की मानवता को पहचाना और गाँवों से दूर रहते हुए भी उसने उस मानवता को एक अक्षय प्रेरणा के रूप में अपने हृदय में सँजोया।"[2] त्रिलोचन में ग्राम-संस्कृति इतने अभिन्न रूप से घुल-मिल गयी है कि उससे अलगाव मुश्किल हो गया है। त्रिलोचन, नागार्जुन और शमशेर की इस ग्राम संस्कृति के संबंध में शिवप्रसाद सिंह का कथन ध्यातव्य है - "शायद ये तीन ही ऐसे व्यक्ति हैं हिन्दी में जो चाहकर भी अपने व्यक्तित्व से भारतीय ग्राम - संस्कृति की कड़ियल सोंधी गंध और अक्खड़ भारतीयता को अलग नहीं कर सके हैं।"[3] ग्रामीण जीवन की आशा-निराशा, सुख-दुख और परेशानियों को देखकर उनका दिल संवेदना से भर गया, उसकी अभिव्यक्ति ही उनकी कविता है। मूक ग्रामीणों के प्रति, उस यातनापूर्ण लोक जीवन के प्रति आत्मवेदना से भरी रचनायें उनकी लेखनी से निकल पड़ीं। "वे चिल्ले जाड़े में, कुहरे लिपटे गँवई वातावरण में "अतवरिया" को देखकर लाचारी की मार का राग आलापें या भिखरिया की अकिंचनता पर तरस खायें, लगेगा कि, यह सारा कुछ आत्मवेदना का ही इजहार है।"[4] त्रिलोचन की ग्रामीण

---

1. जनकवि विजयबहादुर सिंह - प्रसंगवश - पृष्ठ 9, 1984.
2. समालोचक - मई 1958, पृष्ठ 25. श्री. चन्द्रबली सिंह .
3. कस्तूरी मृग शिवप्रसादसिंह 1982, पृष्ठ 157.
4. वही - पृष्ठ वही

संस्कृति से भरी, ग्रामीण यातना के प्रति सहानुभूति एवं स्नेहगंधी मानसिकता का एक प्रतीकात्मक चित्र शिवप्रसादजी यों खींचते हैं – "शास्त्री को लोक जीवन से उत्पन्न स्नेहगंधी मानस मिला है जहाँ सिर्फ एक देहाती पोखर है कंकड़ीली ज़मीन में धँसा हुआ, जिसमें स्वच्छता और ठण्डक है, कहीं जलकुंभी और कुई नज़र नहीं आती, कुछ सेवार जरूर है, जिन्हें शास्त्री "सुनहले शैवालों में बदलने की कला नहीं जानते।"[1] लोकसंस्कृति की यह पहचान कई रचनाओं में अपना सुवास छोड गयी है।

गँवई गाँव का जीवन, वहाँ की **अगर-डगर**, ग्रामीणों की बातचीत और उक्तियाँ, उनकी वाणी, और दुख-दर्द और उल्लास सब उनकी लोक-जीवन संबंधी कविताओं में चित्रित हैं। उन कविताओं के विवेचन से त्रिलोचन की लोक जीवन की समझ-बूझ और संवेदना की सघनता का पता लग जायेगा। "अब भी उनके (त्रिलोचन) सीने में उन गाँवों की बोली-बानी, भाषा, मुहावरा गूँजते रहते हैं, जिनमें उनने आँखें खोलीं और चेतना पाई।"[2]

धरती की "तारकों से ज्योति चलकर भूमि तल पर", एक पहर दिन आया होगा", "जीवन का एक लघुप्रसंग", "चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती", "भोरई केवट के घर" आदि कवितायें ग्रामीण जीवन की लोक चेतना के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं।"

"तारकों से ज्योति चलकर भूमि तलपर" कविता में ग्राम जीवन का एक स्वच्छ, सरल सवं सुन्दर चित्र मिलता है, जिसमें शादी के मार्फत ग्रामीणों के हर्ष की अपूर्व झाँकी दिखाई गई है। सारा गाँव ही आह्लाद से तरंगित दिखाई पडता है। प्रस्तुत कविता ग्रामीणों की मध्ययुगीन साज-सज्जा, प्राचीनता की चाल-ढाल का चित्र उपास्थित करती है।

---

1. कस्तूरी मृग – शिवप्रसाद सिंह – "पौधा निर्वाक खडा है" – पृष्ठ 160, 1982.
2. साक्षात्कार – दशक विशेषांक, 1985, पृष्ठ 93 सोमदत्त

"है अँधेरी रात
कल है
ब्याह का दिन
दीपकों से गाँव का एकान्त अमलिन
जागती हैं नारियाँ
आज अपने गीत से वे तारकों को हैं जगाती
राज शादी के सजातीं
आज सारा गाँव एक - प्राण, मिल कर
आज सबका हर्ष जागा है विमल तर
आज जीवन-रागिनी अविराम उठ कर और उठ कर
छा रही है छा रही है छा रही है

मध्य युग का
साज
औ सामान सारा
चाल ढाल सभी पुरानी वही धारा
मध्य युग के भाववाही
ये नये युग से अपरिचित औ सशंकित
ये गये सब दिन सताये"[1]

प्रस्तुत कविता लोक जीवन के एक खास पक्ष का दर्शन कराती है जो अज्ञान एवं जडता के बीच में भी खुशी मनाने और एक ही घर की शादी को "ग्राम-समुदाय" की शादी समझ कर भागी होने की उनकी मानसिकता से संबंधित है। साथ ही लोक-जीवन की रूढियों एवं मध्ययुगीन संस्कारों के अवशेष को भी विचित्र झाँकी प्रस्तुत करती है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 24-25. त्रिलोचन

जाड़े की धूप में घमौनी करनेवाले ग्रामीणों का एक दृश्य प्रस्तुत है जिसमें मौसम की खासियतों के साथ ग्रामीण जीवन ही मुखर है, इसकी सहजता देखते ही बनती है -

"बैठ धूप में हरी मटर की घुँघनी खाना,
जाड़े का आनंद यही है रस गन्ने का
ताज़ा ताज़ा पीना, कोल्हाड़ों में जाना,
इन उन बातों से मन बहलाना, बनने का
भाव न मन में आने देना, आवाजाही
का ताँता, रस का कड़ाह में पकना, झोंका
जाना गुलौर का, आलू ले कर मनचाही
संख्या में पकने के लिए पहुँचना, चोंका
किसी कमानी या पतली लकड़ी में, डाला
फिर कड़ाह में, कही सुनी सानंद कहानी
"सीत बसंत" "संख राजा" की, मन में माला
नए नए स्वप्नों की, सुधि जानी-अनजानी,
ठाँव ठाँव का जीवन है कुछ नया, अनोखा,
कहीं सरल विश्वास है, कहीं केवल धोखा," [1]

प्रस्तुत कविता का लोक ताल और लोक ध्वनि आन्तरिक एवं बहिरंग है। बहिरंगता को अंतरंगता में बदलने में त्रिलोचन इसलिए सफल हुए हैं कि वे उसी के एक अंग है।

"चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती" में चम्पा वह ग्रामीण युवती है जो अक्षरों को नहीं पहचानती। प्रस्तुत कविता लोक-जीवन के एक विचित्र पक्ष की झाँकी देती है जो उसकी निरीहता से संबद्ध है।

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 74. त्रिलोचन .

"चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है
इन काले चीन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं"[1]

वह गँवार युवती लिखना-पढना बुरा मानती है इस लिए त्रिलोचन से पूछ बैठती है -

"तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है"

त्रिलोचन चंपा को उपदेश देते है -

"चम्पा, तुम भी पढ़ लो
हारे गाढ़े काम सरेगा
गाँधी बाबा की इच्छा है -
सब जन पढ़ना - लिखना सीखें"

चंपा को विश्वास नहीं कि गाँधी बाबा जैसे अच्छे आदमी पढ़ने की बात कहेंगे -

"चम्पा ने यह कहा कि
मैं तो नहीं पढ़ूँगी
तुम तो कहते थे गाँधी बाबा अच्छे हैं
वे पढ़ने लिखने को कैसे बात कहेंगे"[2]

(चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती)

---

1. "धरती" - पृष्ठ 88. त्रिलोचन
2. वही-पृष्ठ 89 .

त्रिलोचन के ज़ोर करने पर भी चंपा पढना-लिखना नहीं चाहती, ग्रामीण युवतियाँ निरक्षता में अपना भला मानती हैं, अज्ञान की बेडियों से वे कितनी आबद्ध हैं, इसका पता चल जाता है। "एक गँवई लड़की के लिये शिक्षा का अर्थ "चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती" कविता में देखा जा सकता है"।[1]

यह अबोध ग्रामीण युवती एक स्थान पर कहती है -

"मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे"[2]

अपने बालम से अलग रखनेवाले कलकत्ता शहर पर वह वज्र गिरना चाहती है। यहाँ नागरिक जीवन के प्रति लोक जीवन की सहज शंकालु मानसिकता खुल जाती है। "त्रिलोचन की चंपा, बुआ, माँ, भोरई केवट आदि ग्रामीण कथापात्र सामाजिक इकाइयाँ हैं, और इनके माध्यम से ग्रामीण जीवन की "वास्तविकता मूर्तिमान हो उठी है।[3]

"परदेशी के नाम पत्र" मानवीय प्रेम की कविता है" जो ग्रामीण पारिवारिक जीवन और परिवेश का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है"।[4] यह सौ फी सदी ग्रामीण कविता है, जिसमें गाँव का स्पन्दन सुनाई पडता है और उसमें - असली लोक जीवन की तरल मानवीयता का जीता-जागता चित्र है -

---

1. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - डा• अजितसिंह - पृष्ठ 134•
2. "धरती" - पृष्ठ 96 - त्रिलोचन
3. आलोचना - जुलाई 1982, पृष्ठ 52• नामवरसिंह
4. "धरती"7- पृष्ठ 50-51

"वह जो अमोला तुम ने धरा था द्वार पर,
अब बड़ा हो गया है. खूब घनी
छाया है मौरों की बहार है. सुकाल
ऐसा ही रहा तो फल अच्छे आएँगे.

और वह बछिया कोराती है.

मन्नू बाबा की भैंसा ब्याई है." [1]

(परदेसी के नाम पत्र)

इतना ग्रामीण, पारिवारिक और मानवीय और आत्मीयता पूर्ण चित्र दुर्लभ है।

ग्रामीण किसानों में विद्यमान अलगाव की हालत पर प्रकाश डालने वाला एक सॉनेट कवि ने अपने गाँव के बारे में लिखा है –

द्वेष आपसी
नहीं घटा है, दाँजारेसी बढ़ी पाप
है, दिनपर दिन, पूरब, पश्चिम
दक्खिन उत्तर
छोटे छोटे खेत, बाढ मेंडों की, अपनी
अपनी चिंता, मेल–जोल से काम
नहीं, क्या
इससे होगा, काट कपट ठाकुरों की, बढ,
जानेवाला खेवट, क्षुद्र स्वार्थ की झपनी" [2]

---

1. अरघान – पृष्ठ 74. त्रिलोचन
2. अनकहनी भी कुछ कहनी है – पृष्ठ 77. त्रिलोचन .

ग्रामीण जीवन में भी राग-द्वेष की भावना है। सौन्दर्य के बीच यह चित्र अटपटा नहीं लगता है, बल्कि सौन्दर्य को बढ़ाता है।

असली गँवई परिवेश की वायु में सांस लेनेवाले "गँवार" विशेषण से विभूषित प्राकृत मानवीय लोक जीवन की विलक्षणताओं पर प्रकाश डालनेवाली कवितायें भी त्रिलोचन ने लिखी हैं। गाँवों में दिन भर खटते - भूखों मरते कहारों के बीच में से एक खास परिवार की चर्चा त्रिलोचन ने की है -

"पूरा परिवार मैंने देखा
पैरों पैरों है
हाथों ने काम कोई लिया, किया
हो जाने को ही काम
हाथों में आता था"[1]

(नगई महरा)

अपने भाई की सास को घर में बैठानेवाले कहार नगई के बारे में कहते हुए त्रिलोचन कहारों की खास रीति-नीति का परिचय देते हैं -

"कहारों में
किसी को छोड़ कर दूसरे को कर लेना
चलता था
और अब भी चलता है
नर या नारी का बिसेख कोई नहीं था
जोड़े जब कोई नहीं रहा
दूसरे को लाने में बाधा कुछ नहीं थी"[2]

(नगई महरा)

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 65. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 68.

पूरा ऊँच-नीच का विचार इन लोगों के बीच में होता था। कभी कभी इस को लेकर मुसीबत भी हुआ करती थी। लेकिन मतभेद को निपटाने के लिये पंचायत भी थी। फैसला शिरोधार्य था। त्रिलोचन ने इस व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है –

"जरा ऊँच नीच का विचार तो यहाँ भी था
जातियों के आपस में भेद थे
कोई जाति कुछ ऊँची
कोई जाति कुछ नीची
स्त्री पुरुष भिन्न भिन्न शाखा के हुए
तो मुश्किल पड़ जाती थी
लेकिन पंचायत थी
डाँड बाँध करती थी
जिसे मानना ही था
और फिर भोज भात चलता था
भोज भात खाया भागे नहीं
आपसी बतियाव, खेला, गाना, नाच-रंग
नाटक, तमाशा, सभी होता था
उसी समय सबके गुन खुलते थे"[1]

(नगई महरा)

निचले तबके के गँवार समझे जानेवाले लोगों के बीच में भी रामायण के प्रति बड़ी श्रद्धा है। इस ओर प्रकाश डालते हुए त्रिलोचन अपनी "नगई महरा" कविता में लोक-जीवन में विद्यमान धार्मिकता के अवशेष की तरफ संकेत करते हैं। कवि के नगई के लिये रामायण बाँचने के प्रसंग से उद्धृत है –

---

1. ताप के ताए हुए दिन – पृष्ठ 68. त्रिलोचन

"नगई ने बेठन को खोलकर पोथी को
माथे से लगा लिया
फिर उसे खाट के सिरहाने रखा
लोटे में पानी ले कर मुझसे कहा
चरण मुझे धोने दो
और उसने मेरे दोनों पैरों को
घुटनों तक धो दिया [illegible] रहा
फिर लोटे को माँजा धो कर पानी लिया
और कहा, लाओ हाथ-मुँह भी धुला दूँ

मैं उठा पानी [illegible] ढालता रहा
मैंने हाथ-मुँह धरवाए
पास के मँड़हे में कुशासन एक अलग था
उसकी गर्द झाड़ कर मुझे बैठने को कहा
मेरे बैठ जाने पर पोथी मुझे सौंप दी
फिर मुझे बड़े भक्ति भाव से प्रणाम किया
कुछ हट कर हाथ जोड़ कर सामने ही
भूमि पर बैठ गया"।[1]

(नगई महरा)

इसमें ध्यान देने की खास बात यह है कि कहार जाति का गंवार महरा रामायण के प्रति श्रद्धा रखता ही है, साथ ही रामायण बाँचनेवाले कम उम्र के लड़के के चरण धोता है और उसका प्रणाम करता है तथा रामायण बाँचने के पहले उसके हाथ मुँह भी धोने का आग्रह भी करता हैं। ग्रामीणों की रामायण के प्रति आस्था की गहराई ही इसमें से खुल जाती है।

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 70. त्रिलोचन

लोक जीवन की लय को प्राप्त करना त्रिलोचन के लिए आसान कार्य रहा है। यह उनकी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति न होकर उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। त्रिलोचन को सिर्फ एक प्रकृति प्रेमी कहना उनके साथ सरासर अन्याय होगा। उनकी कविता में प्रकृति जीवन्तता और ग्रामीणता का पर्याय है। उनकी प्रकृतिपरक कविताओं में लोक वातावरण का पूरा सन्दर्भ मिलता है। वह सौन्दर्यलिप्सु कवि का रेखाचित्र मात्र नहीं है। वे चित्र इसलिए सुन्दर हैं कि उनमें मोहकता के साथ साथ जीवन की तपिश है। आधुनिक कविता के पूरे दौर में लोक चेतना की आरोपित प्रतीति सब कहीं प्राप्त होती है। लेकिन लोक चेतना की निजी और सहज प्रतीति संभवतः त्रिलोचन की रचनाओं में अधिकाधिक है।

अध्याय छह

त्रिलोचन के काव्य की शिल्पविधि

अध्याय छह

त्रिलोचन के काव्य की शिल्पविधि

काव्य की सफलता वस्तुतत्व और शिल्प के सम्यक संयोग पर निर्भर है। इसलिये शिल्प काव्य के अनिवार्य तत्व के रूप में चर्चित होता है। "शब्दार्थ, रंग-रेखा आदि के द्वारा कलाकार की आन्तरिक अभिव्यक्ति का भौतिक इन्द्रियगम्य रूप में आकार ग्रहण करना ही काव्य का शिल्प है।"[1] अनुभूति शिल्प से सुष्ठु रूप से संपृक्त होकर ही सौन्दर्य और चमत्कार की अवस्था में पहुँच जाती है।

"शिल्प" शब्द से कलात्मक सचेष्टता या प्राविधिक कुशलता की अनिवार्यता का बोध होता है।"[2] काव्य-तत्वों के विवेकपूर्ण और संतुलित विनियोजन और संश्लेषण की अपेक्षा होने के कारण कवि की प्राविधिक

---

1. काव्यशिल्प के आयाम - सुलेख शर्मा (डा. नगेन्द्र की भूमिका से उद्धृत) 1971, पृष्ठ 1.
2. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेई - 1963, पृष्ठ 19.

कुशलता का काव्य-रचना में विशेष महत्व है। वस्तु तत्व की भिन्नता की अनिवार्यता के समान ही शिल्प भी परिवर्तित रहता है। इसका प्रत्येक रचना में विनियोजन रचनाकार की सूझ-बूझ और कला-कुशलता पर निर्भर है। वस्तु-विशेष की अभिव्यक्ति का शिल्पगत विधान भी विशेष होता है। यहीं रचनाकार की रचना-कुशलता का काम पड़ता है। कहा जाता है, वस्तु अपने रूप को स्वयं ढूँढ लेती है, इससे रचनाकार का दायित्व बढ़ जाता है।

काव्य की अभिव्यंजना के ढंग-विशेष को काव्य-शिल्प कहा जाता है। लेकिन यह कई उपादानों से तैयार होता है। "काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्पतत्व" के अन्तर्गत हैं।"[1] इसलिए शिल्प में वे तत्व आते हैं जिनके द्वारा काव्य मूर्त रूप प्राप्त करता है।

"शिल्पविधि" अंग्रेज़ी शब्द "Technique "[2] का समानार्थी शब्द समझा जाता है, जिसका अर्थ ढंग, विधान, तरीका है जिसके द्वारा कृति का आकार स्वरूपित होता है।" शिल्पविधि इस अर्थ में वह विधान है जिसके द्वारा कवि या कलाकार की अमूर्त अनुभूति मूर्त रूप प्राप्त करती है।

प्रत्येक भाषा की साहित्यगत विशेषताओं के अनुरूप शिल्पविधि के उपादानों के स्वरूप होते हैं और समय-समय पर उनमें वस्तुगत स्वरूप

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेई - 1963, पृष्ठ 19.

2. (a) "Systematic and special method employed in carrying out some particular operation", The Universal dictionary of the English Language. p.1244. Edited by Henry Cecil Wyld - 1961.

   (b) The mechanical or formal part of an art, especially of any of the fine art. The shorter Oxford English dictionary edited by C.T.Onions, 1959, p.2140.

परिवर्तन के अनुसार शैल्पिक परिवर्तन और संशोधन भी होते रहते हैं। भले ही वस्तु की जैसी गतिशीलता शिल्प में न हो फिर भी शिल्प परिवर्तन अपेक्षित है। "रूप में वस्तु की तुलना में स्थायित्व अधिक और लचीलापन कम होता है।"[1] लेकिन वस्तुतत्व और रूपतत्व में विरोध जब बढता है, ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि रूप में परिवर्तन करना पड जाता है। इसलिए प्राचीन काल से पूर्वी और पाश्चात्य काव्यशास्त्रों में काव्य - शिल्पविधि के उपादानों की खोज होती रही है और काव्य के सौन्दर्य वर्धन के लिए उपयुक्त उपकरण भी खोज निकाले गये हैं। यद्यपि दोनों काव्य-शास्त्र सिद्धांतों में काफ़ी अन्तर दृष्टिगोचर होता है तो भी काव्य सौन्दर्य-वर्धन की दिशा में दोनों के प्रयास में सफलता के दर्शन भी होते हैं।

पूर्वी और पश्चिमी काव्य-शिल्पविधि के अंगों के रूप में सामान्यतया शैली, अलंकार, प्रतीक, बिंब, रूपकोक्ति, पुराख्यान तत्व, काव्य रूढि, छन्द आदि की चर्चा की जाती हैं। लेकिन हर युग में तद्युगीन विशेषताओं के अनुसार काव्य की शिल्पविधि के अंगों के खास उपादानों पर कम या ज़्यादा ज़ोर पडता रहा है और इसलिए युग विशेष के अध्ययन से ही उस काल के काव्य की शिल्पविधि के तत्वों का पता चल सकता है।

प्रगतिवादी काव्य में छायावादी काव्य की अपेक्षा शिल्प विधान में स्पष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। "भाषा एवं शिल्पिक उपकरणों को प्रगतिवादी कवियों ने लोकोन्मुखी धारा के अनुकूल ढालकर सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है।"[2] समाज में सदियों से चली आनेवाली

---

1. आलोचना - जुलाई-सितंबर - 1976, पृष्ठ 15
   "प्रगतिशील साहित्य और रूप की समस्या" - नन्दकिशोर नवल
2. छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य - डा. सुरेश गौतम, 1985, पृष्ठ 132.

वर्ग-शोषण की प्रवृत्ति का अन्त कर वर्गरहित समाज व्यवस्था की स्थापना के लिये कटिब प्रगतिशील काव्य का शिल्पविधान तदनुसार परिवर्तित किया गया "जहाँ तक शैली का प्रश्न है, प्रगतिवादी कवियों की प्रधान चेष्टा य रही कि वे सरल भाषा में अपने मनोभावों तथा अनुभूतियों को यथासंभव स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकें।"[1] इसके सहारा युगीन परिस्थितियों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और उद्बु और जागृत हो सकते हैं। अतः प्रगतिवादी कवियों ने जन-जीवन के परिवेश से प्रतीकों को चुन लिया - "लाल सितारा, हँसिया, हथौडा, कुकुरमुत्ता, गुलाब, कोयला, गिद्ध, मशाल, कुहासा, झोंपडी आदि।"[2] यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण प्रगतिशील काव्य में प्रयुक्त इन प्रतीकों एवं बिंबों में अपना स्पष्ट अन्तर भी दृष्टिगत होता है। "यथार्थवादी और बहिर्मुखी दृष्टि के कारण प्रगतिवादी कवियों के बिंब स्थूल होते हैं।"[3] प्रगतिवादी दृष्टि में बिंब ऐन्द्रियबोधों की अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति और जीवन यथार्थ का प्रतिबिंब भी है। "अतः बिंब विधान की प्रक्रिया भी विचारवस्तु की सापेक्षता में ही कोई अर्थ रखती है।"[4] प्रगतिवादी कवियों ने छन्दों और अलंकारों पर प्रयोग इस दृष्टि से किये कि वे सहज और स्वाभाविक रहें और बोधगम्यता उनकी पहली शर्त हो। "प्रगतिशील साहित्यकार अपनी कृति में रूप का ऐसा प्रयोग नहीं करता है कि उससे यथार्थ चित्रण में बाधा पडे, बल्कि वह इसके लिये प्रयत्नशील होता है कि उससे यथार्थ में छिपे अर्थ को उद्घाटित करने में अधिक से अधिक सहायता मिले।"[5]

---

1. हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - डा. सुरेन्द्रप्रसाद, 1985, पृष्ठ 193.
2. वही - पृष्ठ 194.
3. वही - पृष्ठ 197.
4. आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान - डा. केदारनाथ सिंह, 1971, पृष्ठ 282.
5. आलोचना - जुलाई-सितंबर, 1976, पृष्ठ 16. नन्दकिशोर नवल.

प्रगतिवादी कविता शिल्प के अतिरिक्त आग्रह से अपने को अलग रखती है। लेकिन सरलता के प्रति कविता का शैल्पिक आग्रह भी स्पष्ट है। फिर भी प्रगतिवादी कविता शिल्पवादी कविता नहीं है।

त्रिलोचन प्रगतिशील कवियों में अपने काव्य के शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण अलग खड़े होते हैं। उनकी कविता जीवन संघर्ष की कविता होने के बावजूद सौन्दर्यवादी भी है। त्रिलोचन स्वयं अपने सौन्दर्य बोध के कारण दूसरे कवियों से स्पष्ट ही अपनी अलग पहचान रखते हैं। आलोचक इस बात से प्रायः सहमत हैं कि "प्रगतिवादी कवियों में सौन्दर्यवादी रुझान उनमें (त्रिलोचन) सबसे ज़्यादा है।"[1] यह सौन्दर्यवादी रुझान त्रिलोचन की कविता के शिल्प में अपना प्रभाव डालता है।

त्रिलोचन के रचनात्मक व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए केदारनाथ सिंह एक विरोधाभास की ओर इशारा करते हैं। एक ओर उनमें धरती का विषम धरातल अपने खुरदरापन की झलक दिखाता है तो दूसरी ओर कला का अनुशासन। उनके ही शब्दों में - "त्रिलोचन एक विषम धरातल वाले कवि हैं। साथ ही उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में एक विचित्र विरोधाभास भी दिखाई पड़ता है। एक ओर यदि उनके यहाँ गाँव की धरती का-सा ऊबड़खाबड़पन दिखाई पड़ेगा तो दूसरी ओर कला की दृष्टि से एक अद्भुत क्लासिकी कसाव या अनुशासन भी।"[2] कला का यह कसाव या अनुशासन त्रिलोचन के तीक्ष्ण सौन्दर्यबोध का एहसास कहा जा सकता है। उनके काव्य के शिल्पविधान में इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है।

---

1. समालोचक - मई 1958, पृष्ठ 28 - चन्द्रबली सिंह
2. "त्रिलोचन प्रतिनिधि कवितायें": भूमिका- पृष्ठ 6 - 1985 - डा. केदारनाथ सिंह

लेकिन त्रिलोचन रूपवादी नहीं है। वे शिल्प के लिये अपनी यथार्थ दृष्टि की बलि देने के पक्ष में नहीं है। यथार्थ दृष्टि को बनाये रखते हुए शिल्प के सौन्दर्य पर ध्यान देते हैं। "त्रिलोचन न केवल रूपवादी आन्दोलन के खतरे के प्रति सावधान थे, अपितु स्वयं प्रगतिवादी होते हुए भी वे प्रगतिवाद की नारेबाजी के प्रति भी उतने ही सावधान थे।"[1]

स्वस्थ यथार्थदृष्टि का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है "यथार्थवाद का अर्थ नीरस अथवा निरुप्रेषणीय कविता की सृष्टि नहीं है। उसका अर्थ इतना ही है कि वस्तुचित्रण में तथा शैली के संबंध में नवीन वैज्ञानिक तथ्यों को स्थान देना और काव्य को नवीन स्थितियों, प्रश्नों और चेतनाओं के अधिक से अधिक समीप पहुँचाना है।"[2] त्रिलोचन के काव्य में शिल्प का स्वरूप आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की सम्मति से एकदम मेल खाता है। रूपवादिता की अति तक उनका शिल्प कभी भी बढता नहीं। अपनी प्रगतिशील, यथार्थ दृष्टि की सम्यक् अभिव्यंजना ही उनका ध्येय है और इसी ध्येय की पूर्ति में काफी दूर तक वे सफल भी दिखाई पडते हैं।

त्रिलोचन ने स्वयं अपने काव्य के शिल्प विधान पर थोडा बहुत प्रकाश डाला है जिस के द्वारा स्थूल रूप से उनके काव्यशिल्प का पता लगाया जा सकता है।

---

1. इसलिए - अंक-2, अगस्त - 1977, पृष्ठ 16
   त्रिलोचन एक कवि एक प्रश्नचिन्ह - भगवानसिंह
2. नई कविता - 1976, पृष्ठ 44. नन्ददुलारे बाजपेयी

"बड़े बड़े शब्दों में बड़ी बड़ी बातों को
कहने की आदत औरों में है पर मेरा
ढर्रा अलग गया है. ढाकों के पातों को
थाली की मर्यादा दे कर पहला घेरा
तोड़ दिया.
.उपेक्षित थी जो भाषा
उस को आदर दिया."[1]

सहज सरल ढंग से सर्वसाधारण की जीवन-गाथा उनके लिये गाना ही त्रिलोचन का लक्ष्य रहा है। नवीन रूपवादियों से उनका ढर्रा अलग पड़ता है, भाषा, भाव, शिल्प सभी में इस सहज सरल स्वरूप की झाँकी मिलती है।

एक और स्थान पर वे स्पष्ट करते हैं कि हिन्दी कविता के चेहरे पर उधार का पाउडर लगा हुआ था, उसे झाड-पोंछकर साफ़ कर कलंक को दूर किया। पश्चिमी कला-सिद्धांतों से प्रभावित नवीन रूपवादी रुझान से कलंकित कविता और काव्य भाषा को ठेठ जनपदी भाव और रूप देने का दावा कवि स्वयं करते हैं -

कविता के चेहरे पर जो पाउडर उधार का
लगा हुआ था भद्दा था,
वह कलंक धो दिया, सहज मैं ने बना दिया
कविता को - उस का स्वाभाविक सरल उजाला
दिपता है,
सीधे सादे सुर में उर के गान सुनाए"[2]

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 116. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 113.

यह प्रतीत होता ही है कि त्रिलोचन की कविता में जनपदीय संस्कृति की एक जीवन्त दुनिया सन्निविष्ट है। उसे और जीवन्त तथा गतिशील बनाने के लिए लोक शिल्प का अधिक अन्वेषण किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि त्रिलोचन की कविता का शिल्प सहज-सरल, बोधगम्य उपादानों पर आधारित है। वे एक ओर सामान्य को असामान्य का दर्जा देते हैं और उस असामान्य के माध्यम से सामान्य को धारणव्य और आकर्षक बना देते हैं। शमशेरजी के शब्दों में - "यह कवि जो सामान्य में ही असामान्य का दर्शक है तो वह इसलिए कि इस असामान्य के माध्यम से पुनः सामान्य को और अच्छी तरह समझ सके वह सपाट और स्पष्ट शब्द शैली में ही विश्वास करते हैं जिसमें भाषा का किंचित भी लालित्य या साहित्यकपन उसे अयथार्थ बना देगा, जो त्रिलोचन को सह्य नहीं होगा। स्पष्ट है कि त्रिलोचन सामान्य को असामान्य बनादेने को कृत-संकल्प हैं, उनके लिये "कविता मात्र अनुभूति को विशिष्टता में होगी, नहीं तो फिर नहीं ही होगी। उसके लिये और कोई उपादान नहीं, और कोई आदान नहीं।"[1] इस दृष्टि से त्रिलोचन के काव्य के शिल्प विधान का अध्ययन करना होगा। अनुभूति की यथार्थता उनकी पहलीशर्त है। याने, वे अनुभूति के मामले में शिल्प विधि के साथ समझौते करनेवाले नहीं हैं, फिर भी उसके शिल्प पक्ष का अपना वैशिष्ट्य है।

त्रिलोचन के काव्य में प्रतीक विधान

हर कवि अपनी अनुभूतियों के अनुरूप शिल्प को स्वयं सृजित कर लेता है। जिस कवि की जैसी अनुभूति है वैसा अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनता है। अगर कवि का अन्तर्संघर्ष तीव्र और तनाव से पूर्ण और अनुभूतियाँ बहुत ही जटिल हैं तो उनको अभिव्यंजना का माध्यम भी ज़्यादा क्लिष्ट

---

1. कृति विशेषांक - नवंबर-दिसंबर - 1960, पृष्ठ 31 - शमशेर बहादुरसिंह.

और दुर्बोध हुआ करता है। कविता के माध्यम पर प्रकाश डालते हुए मुक्तिबोध ने कहा है - "वैविध्यपूर्ण, स्पन्दनशील, आसपास फैले हुए मानव-जगत के मार्मिक पक्षों के वेदनात्मक चित्रण के लिये अभिव्यक्ति संपदा भी चाहिए अभिव्यक्ति के साधन अर्थात् भाषा हमारे लिये सामाजिक है अतएव हमें अपने सूक्ष्मतम तत्वों को उनके मौलिक रूप रंग और भार में स्थापित और प्रकट करने के लिये नये शब्द-संयोग बनाने या लाने पड़ते हैं। शास्त्रीय शब्दावली में कहें तो हमें नवीन वक्रोक्तियों और भगिमाओं का सहारा लेना पडता है।"[1]

जहाँ तक त्रिलोचन के काव्य-शिल्प का संबंध है, उसके बारे में ऐसा सोचना गलत होगा कि त्रिलोचन का अभिव्यंजना - माध्यम सहज-सरल होने से उनकी अनुभूतियाँ सघन और तीव्र नहीं है। सामाजिक जीवन से प्राप्त अनुभूतियों और सामाजिक जीवन की विसंगतियों के प्रति उत्पन्न अन्तर्संघर्ष की अभिव्यंजना में त्रिलोचन की खूबी उभर आती है। अन्तर्संघर्ष और तनावपूर्ण भावभूमि के होते हुए भी उनकी अभिव्यंजना इतनी सहज, एवं संयमित क्यों लगती है, इसपर सोचना समीचीन है। इस संबंध में डा. केदारनाथ सिंह का कथन स्मरणीय है - "वास्तविकता यह है कि त्रिलोचन की सहज सरल सी प्रतीत होनेवाली कविताओं को भी यदि ध्यान से देखा जाय तो उनकी तह में अनुभव की कई परतें खुलती दिखाई पडेंगी।"[2]

त्रिलोचन की कविता में भी अन्य कवियों की रचनाओं में प्राप्त शैल्पिक उपादान प्राप्त होते हैं जैसे प्रतीकों, बिंबों और मिथकों की विवृतियाँ। जहाँ तक प्रतीकों का संबंध है हर युग की कविता में प्रतीकों की प्रचुरता रही है। लेकिन प्रतीकवादी दौर जो चला उसकी अलग पहचान है जिसका त्रिलोचन की कविता के साथ कोई संबंध नहीं है। प्रतीक शब्द

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध - 1983 - पृष्ठ 144-145.
2. त्रिलोचन प्रतिनिधि कवितायें - डा. केदारनाथ सिंह - भूमिका - पृष्ठ 7

अंग्रेजी शब्द Symbol का समानार्थी माना जाता है जिसका अर्थ "किसी वस्तु को सूचित करने के लिये प्रयुक्त या किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व करने वाला" बताया गया है, विस्तृत अर्थ में "प्रतीक वह शब्द, मुहावरा या उक्ति है जिसका व्यापक संश्लिष्ट अर्थ होता है।"[1] कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरने की प्रवृत्ति ने प्रतीक को जन्म दिया है। किसी परिस्थिति या सन्दर्भ-विशेष से संबंधित व्यापक अप्रस्तुत अर्थ स्मृत्यनुभूति के द्वारा प्रस्तुत करने का काम प्रतीक करता है। इसका खास महत्व काव्य-शिल्प के क्षेत्र में इस बात को लेकर है कि वह सामाजिक जीवन की परंपरा से प्राप्त भावानुभूतियों का प्रतीक स्वरूप साक्षात्कार प्रस्तुत करता है। "प्रत्यक्ष उपादानों के द्वारा अप्रस्तुत, अदृश्य उपादानों का प्रतिनिधित्व ही प्रतीक की आधारभूमि है"[2] पूर्वकालीन धर्म, नीति, संस्कृति, दर्शन से संबंधित अनेकों प्रतीक काव्य में होते आये है जो अमूर्त, अदृश्य वस्तु - सन्दर्भ के अनुभूति - क्षेत्र को व्यापक बनाने में उपयोगी होते हैं।

त्रिलोचन की कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग उसी दौर के अन्य कवियों के समान ही दिखाई पड़ते हैं। "अपनी अभिव्यक्ति के लिये त्रिलोचन जिन प्रतीकों का चुनाव करते हैं वे शेष प्रगतिवादियों से भिन्न नहीं हैं।"[3] धरती की कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग देखने में आता है। पथिक, प्रभात, पथ, पवन, बरगद, अंधकार, बादल, अमृत, विहग, तारा, संध्या आदि प्रकृति से लिये नित्य परिचित प्रतीकों का प्रयोग इसके लिये उदाहरण हैं।

---

1. 'Symbol' - "Something used for, or regarded as, representing something else. More specifically, a symbol is a word, phrase or other expression having a complex of associated meanings", Dictionary of Literary Terms - Harry Shaw 1972, p.367.
2. काव्य-शिल्प के आयाम - सुलेख शर्मा - 1971, पृष्ठ 84 .
3. "धरती" 4-5, पृष्ठ 41.
समकालीन रचना की विरासत - जीवनसिंह

"कौन दूसरे का बल ले कर
खड़ा भूमि पर रह पाया है
बरगद की छाया के भीतर
नहीं अन्य तरु बढ़ पाया है

किन्तु पूर्वजों पर ही आश्रित
मानव निर्बल हो आया है
बरगद की छाया के भीतर
नहीं अन्य तरु बढ़ पाया है

बहुत पुरातन की छाया में
मानवता ने दुख पाया हैं
बरगद की छाया के भीतर
नहीं अन्य तरु बढ़ पाया है"[1]

(बरगद की छाया के भीतर)

यहाँ बरगद की छाया का प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है जो प्राचीनता एवं मनुष्य प्रगति का अवरोधक शक्तियों का प्रतीक है।

"सघन अंधेरी रात" कविता में तम का वर्णन करते हुए कवि तम को प्रतीक के रूप में प्रयोग करते हैं जो शासितों को दुर्बल और निस्सहाय बनाये रखने वाले दुष्ट शासन का प्रतीक है –

---

1. "धरती" – पृष्ठ 26-27.

"इस तम से क्या आशा
अधम स्वप्न बल की परिभाषा
बन्धन बल हर लेता
निर्बल को देता आपात
निरुत्तर असहनीय आघात"[1]

(सघन अँधेरी रात)

"भस्मावृत लूको" त्रिलोचन का अपना प्रतीक है जो सदियों से अंधकार में - गुलामी में - पडे दलित मानव का प्रतीक स्वरूप उनकी कविता में आया है -

"भस्मावृत लूकी सा
मैं इस अंधकार में
पड़ा हुआ हूँ
अपनी चेतनता की ज्वाला में
परिसीमित

उठ कर
ऊपर
अन्धकार से भरे हुए इस आसमान में
मैं निहारता
लूक टूटते
जैसे अन्धकार के गढ़ पर
ये प्रकाश के तीर छूटते
देख देख कर
मुझे ज्योति की, जीवन की अनिवार्य विजय का
दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है"[2]

(भस्मावृत लूकी सा)

"धरती" - पृष्ठ 79 - त्रिलोचन

का" पौराणिक प्रतीक माना जा सकता है।

तुमसे पी कुंभ मिला अमृत
उससे अब तक सक्रिय जीवित
हो गई शक्ति अपनी संचित
जय-पथ पर हूँ मैं
हार हार"[1]

(जलता नहीं, तुम्हारी सुधि)

मृतसंजीवनी शक्ति का स्रोत अमृत पौराणिक मृत्युन्मुख भावों को जागृत करने में सक्षम है। "साँस" शब्द का प्रतीकवत् प्रयोग त्रिलोचन की कविता में प्राय: देखने में आता है। "त्रिलोचन की भावना की मनोवैज्ञानिक क्रिया का प्रतीक शब्द है "साँस" यह साँस मानव देह की शक्ति और सजीवता का स्रोत है।"[2]

"हिन्दी की कविता, उनकी कविता है जिनकी
साँसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने
सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
में समाज के,"[3]

(अपराजेय)

"साँसों के द्रुतगामी रथ पर नहीं रुका हूँ
चिर यात्री मैं, ठोकर खा कर नहीं झुका हूँ
क्षण भर को भी."[4]

---

1. "धरती" - पृष्ठ 33 . त्रिलोचन
2. "धरती" - 6 - पृष्ठ 47. विष्णुचन्द्रशर्मा
3. दिगन्त - पृष्ठ 64 . त्रिलोचन
4. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 29. त्रिलोचन .

प्रस्तुत प्रतीकों का प्रयोग त्रिलोचन "अन्य प्रगतिवादी कवियों से भिन्न ढंग से नहीं करते। पर बाद की रचनाओं में वह इस दायरे को तोड़ते और विस्तार देते चले जाते हैं।"[1] वस्तुओं के नैसर्गिक में प्रयोग की जो प्रवृत्ति उनकी प्रस्तुत रचनाओं में दृष्टिगत है उसका कारण रचनाशक्ति या कल्पना शक्ति का अभाव एकदम नहीं है – "त्रिलोचन में गहराई को छूने, मर्म को संस्कृत अर्थ में पकड़ने की बड़ी सहज क्षमता है।"[2] लगता है, त्रिलोचन साधारण स्तर के पाठकों के लिये बोधगम्य कविता की रचना करने में विश्वास रखते हैं। तदनुसार शिल्प विधान भी करते हैं। अतः उनकी कविता में प्रयुक्त प्रतीक इसी उद्देश्य से गढ़े गये हों। सामान्य जन की बोधगम्यता को ध्यान में रखते हुए प्रतीक रचना करने वाले विद्वान भी हैं जिनकी राय में प्राकृतिक वस्तुओं का वस्तुगत रूप में कविता में प्रयोग किया जा सकता है, मगर शर्त यही रहे कि वह सामान्य के लिए भी बोधगम्य हो।[3]

संक्षेप में, वस्तु ही प्रतीक है। लेकिन प्रयोग में सामान्य जन की बोधगम्यता को दृष्टि में रखकर सावधानी बरतना ज़रूरी है। त्रिलोचन ने भी प्रतीकों के विधान के संबंध में यह सिद्धांत अपनाया हो, ऐसा मालूम पड़ता है।

त्रिलोचन के काव्य में बिंब विधान

"बिंब" अंग्रेज़ी शब्द "इमेज" का पर्याय है। "इमेज" शब्द का अर्थ किसी शब्द, मुहावरा या वाक्य से उद्दीप्त मानसिक प्रतिच्छाया या

---

1. इसलिए – अगस्त – 1977 – पृष्ठ 26. त्रिलोचन एक कवि एक प्रश्नचिन्ह – भगवानसिंह.
2. कृति कविता विशेषांक – नवबंर – दिसंबर – 1960, पृष्ठ 30. शमशेर
3. "I believe that the proper and perfect Symbol is the natural object, that if a man uses 'Symbol' he must use them so that their symbolic function does not obtrude; so that a sense and the poetic quality of the passage is not lost to those who do not understand the Symbol as such to whom for instance a hawk is a hawk".

कुछ सादृश्य है।"[1] "काव्य-बिंब पदार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।"[2] बिंब पदार्थ नहीं, पदार्थ की प्रतिछवि प्रस्तुत करता है। काव्य बिंब अप्रस्तुत पदार्थ का कल्पना द्वारा उद्बुद्ध चित्र है जिसमें ऐन्द्रिय तत्व परोक्ष रूप से प्रस्तुत रहता है। काव्य बिंब शब्द-अर्थ का माध्यम है। "बिंब कवि की अनुभूति परक जीवन की व्याख्या एवं चित्र प्रस्तुत करता है, वह उसके हृदय का दूसरा रूप ही कहा जा सकता है। इसलिए कहा जाता है कि "बिंब कवि का मुखर स्वरूप ही है।"[3]

बिंब और प्रतीक के बीच में सीमारेखा बिलकुल क्षीण लगती है। इतना ही नहीं दोनों में अन्तर के न रहने का भी मत प्रस्तुत है। "प्रतीक और बिंब व्याख्या के अभाव में एक ही हो जाते हैं।"[4] दोनों में सूक्ष्म तौर पर ही अन्तर दिखाई पडता है। "प्रतीक और संश्लिष्ट बिंब दोनों एक ही हैं, उनका बुनियादी ढाँचा भी समान है।"[5]

लेकिन प्रतीक और बिंब में अन्तर है। प्रतीक वस्तु विशेष का प्रतिनिधित्व करता है तो बिंब वस्तु व्यापार का प्रतिपादन करता है। बिंब यथातथ्य और सर्वांगीण है तो प्रतीक संक्षिप्त और सांकेतिक होता है। प्रतीक परंपरा - सापेक्ष है तो बिंब आकस्मिक है।[6]

---

1. 'Image - the mental impression or visualised likeness - summed up by a word, phrase or sentence'- Dictionary of literary terms - Harry Shaw, 1972, p.195.

2. काव्यबिंब - 1967, पृष्ठ 5. डा. नगेन्द्र.

3. काव्यबिंब और छायावाद - सुरेन्द्र माथुर - 1969, पृष्ठ 5.

4. 'The Symbol, naked and unexplained trailing no doubts of glory, becomes the image'- Image and Experience - Graham Hough, 1960, p.12.

5. 'Symbols and Coupled images are all the same thing - their basic structure is the same', Poetry and experience - Archibald Macleish, 1965, p.79.

त्रिलोचन की कविता में बिंब विधान की उल्लेखनीय विशेषता है जिसका कारण है कि वे बिंबों के प्रयोग में अतिवाद से दूर हैं। वे बिंबों के लिये बिंबों का सृजन नहीं करते। उनकी कविता में अनुभूति ही मुख्य लगती है। वे अनुभूति से बिंबरचना की ओर बढते हैं, न कि बिंबों की योजना तैयार करके अनुभूति की ओर। चूँकि उनकी अनुभूतियाँ आरोपित नहीं है, इसलिए वे स्वयं अपने आप अभिव्यक्ति का माध्यम ढूँढ लेती हैं। "यह पूरी काव्य यात्रा का संकट था जहाँ प्रयोगवादी और नई कविता के कवि शब्दों, प्रतीकों और बिंबों से अनुभव की दिशा में यात्रा करते हैं या कहीं अपनी अनुभूति को उस सघनता तक पहुँचने की छूट दे देते हैं जहाँ वह अपनी उपयुक्त भाषा ढूँढ और आविष्कृत कर सकें।"[1]

अनुभूति से बिंब निर्माण की ओर बढने के कारण त्रिलोचन के काव्य में बिंब अपने सन्दर्भ से संपृक्त होकर सम्यक् रूप से बैठ जाते हैं - जैसे -

"कसे कसाये भाव अनूठे
ऐसे आयें जैसे किला आगरा में जो
नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को,"[2]

इसी तरह उनकी कविता में बिंब आते हैं तो "सिर तानकर अपनी उपस्थिति का अलग से रोब जमाते हुए नहीं, अपितु, सिर झुकाये हुए पूरी कविता में खोये हुए और मिले हुए रहते हैं।"[3] प्रस्तुत बिंब दृश्य बिंब का एक उत्तम उदाहरण है जो सुबोध और सरल है और वह भावगत औदात्य भी प्रस्तुत करता है।

बिंबों का बहुत कम प्रयोग करने पर भी प्रयुक्त बिंबों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे बिंब विधान की कला में दक्ष हैं। सन्दर्भ से अद्भुत रूप से मेल खाये हुए ये बिंब भावोन्मेष का सम्यक गुंफन करते हैं।

---

1. इसलिए - भगवान सिंह - पृष्ठ 21.
2. दिगन्त - पृष्ठ 7. त्रिलोचन

इस सिलसिले में राजेश जोशी का कथन सही लगता है - "बिंब उनके यहाँ बहुत कम हैं और जहाँ हैं वहाँ वे अलग से शोर मचाते, चौंधियाते हुए नहीं आते। वे आते भी हैं तो कविता के अन्दर रच-पचकर आते हैं और पूरी कविता में अन्तर्लीन होते हैं।"[1]

"दर्शन हुए, पुनः दर्शन, फिर मिलकर बोले,
  खोला मन का मौन, गान प्राणों का गाया,
  एक दूसरे को स्वतन्त्र लहरों को पाया
अपनी अपनी सत्ता में. जैसे पर तोले

दो कपोत दाँयें-बाँये-स्थित उड़ते उड़ते
  चले जा रहे दूर क्षितिज के पार हवा पर
  उसी तरह हम प्राणों के प्रवाह पर स्वर भर
लिख देते अपनी कांक्षाएँ."[2]

(प्राणों का गान)

त्रिलोचन नवीनता के लिये दुरूह बिंबों की खोज नहीं करते। वे परंपरा से प्राप्त उपादानों से बिंबों को रूप देते हैं और कल्पना की सहायता से उनमें नई भंगिमा ला देते हैं। जीवन के साधारण और लघु प्रसंगों को वे नाटकीय भावों से भरकर चमत्कारी प्रभाव का सृजन करते हैं। "त्रिलोचन के बिंब उनकी आस्था की ही भाँति उन्नतशिर और उन्नत बाहु हैं। जीवन की छोटी सी छोटी स्थिति को भी नाटकीय आकस्मिकता से स्वप्नलोक का विस्तार और भव्यता देने की शैली हम निराला में पाते हैं उसे त्रिलोचन के सॉनेटों में भी देख सकते हैं।"[3]

---

1. आलोचना - अंक - 56-57, पृष्ठ 68. राजेश जोशी.
2. दिगन्त - पृष्ठ 12. त्रिलोचन
3. समालोचक - मई 1985, चन्द्रबली सिंह - पृष्ठ 30.

ऐन्द्रिय चेतना से लबालब बिंब चित्रों की रचना में त्रिलोचन निपुण हैं। "काँटे और याद", "भादों की रात", "नया वर्ष", "गाँव में", चि - दिगन्त संग्रह की ये कवितायें बिंब चित्रों की अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहती। सूक्ष्म इन्द्रिय बोध के कवि के रूप में त्रिलोचन का नाम लिया जा सकता है। "त्रिलोचन सघन और सूक्ष्म इन्द्रियबोध के कवि हैं। रूप रस गन्ध और ध्वनि के अपने तीव्र बोध के साथ जीवन और जगत के नैसर्गिक सौन्दर्य के अछूते चित्र देते हैं। ये चित्र जितने ठोस होते हैं उतने ही गतिशील भी।"[1]

"काँटे गड़कर पैर पकड़ लेते हैं जैसे
वैसे ही यह याद तुम्हारी मेरे मन को
पकड़ लिया करती है. तब घर और विजन को
भूल भाल जाता हूँ और न जाने कैसे

आँखों में वह पंथ पहाड़ी आ जाता है.
वह दूधिया उजाला, टेढ़ा चाँद, धुँधलके
शेष बिम्ब पर चमकीला तारा यों झलके
जैसे माथे पर बिन्दी."[2]

(काँटे और याद)

इसमें बिंबों की तारतम्यता और सहज संबद्धता विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है। "पैर में काँटे गड़ते हैं और मनमें यादें गड़ती हैं, काँटा पहाड़ी पंथ की याद दिलाता है और पहाड़ी पर का चमकीला तारा, किसी माथे की बिन्दी बन जाता है, बिंबों की यह तारतम्यता, उनकी सहज संबद्धता, यादों की तारतम्यता तथा संबद्धता को प्रतिफलित करती हैं।"[3]

---

1. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर - 1985, पृष्ठ 77. श्यामकश्यप
2. दिगन्त - पृष्ठ 20. त्रिलोचन

"भादों की रात" में ऐन्द्रिय बिंब – चित्रों को भंगिमा देखते ही बनती है जिनकी ध्वनि-योजना विशेष रूप से ध्यातव्य है।

"भरी रात भादों की...पथ...लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आँखों में इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौंधा.
तड़ तड़ तड़तड़ाड़. ध्राड़.ध्रा ध्राड़. ध्रड़. ध्र. ड्रा

धाराधर का गगन-गान सुनकर तुम बोले
"चलो कहीं रुक जायँ, रात भी अधिक हो गई,

. फिर चमक, कड़ कड़ कड़क कड़ग्घम्.

रिमझिम रिमझिम-छक् छक् छक् छक् -सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक-धमाके घन के, उत्सव निशि भर."[1]

(भादों की रात)

इसमें प्रस्तुत ध्वनि-बिंबों की माला ऐसे शब्दों से बनी है जो पूरे तौर पर वस्तु-ध्वनि से मेल खाते हैं।

त्रिलोचन की छोटी कवितायें सांकेतिक और चित्रात्मक कही जा सकती हैं। लंबी कवितायें वर्णनात्मक हैं तो छोटी कवितायें चित्रात्मक हैं। "ताप के ताए हुए दिन"की प्रथम कविता "नदी कामधेनु" इसका उत्तम उदाहरण है। इसमें पुराख्यान-मिथक-तत्वका भी प्रयोग किया गया है। छोटे छोटे तीन विवरणात्मक खंडों में मनुष्य के नदी पर अपनी विजय यात्रा के तीन सोपानों का चित्र प्रस्तुत करके कवि ने उसको पौराणिक सर्वाभीष्टदायिनी "कामधेनु" बना दिया है।

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 28. त्रिलोचन

"नदी ने कहा था मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है."[1]

"सहस्र कमल" पृथ्वी-आकाश", "बरसाती रात", "यह सुगन्ध मेरी है", "सरसों के फूल", "जलरूह दूब", "कौन कान सुनेगा", "ताप के ताए हुए दिन", "ओ सनेही", "केले के पत्ते", आपस आदि छोटी कवितायें सांकेतिक और चित्रात्मक हैं। इन रचनाओं में अनेक चित्र प्रस्तुत हैं जो कवि के बिंब विधान की चातुरी के स्पष्ट प्रमाण हैं। "ताप के ताए हुए दिन" की कविताओं में त्रिलोचन का रचना-व्यक्तित्व अपनी समग्रता में पेश होता है। छोटी कवितायें ज़्यादातर चित्रात्मक हैं उन्हें अर्थों में बाँधना न तो संभव है और न ही उसकी जरूरत है।"[2]

वस्तुबिंब का एक गत्यात्मक चित्र देखिए -

"गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर. समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा आँचल है, "[3]

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 13. त्रिलोचन
2. "धरती"-4-5, पृष्ठ 8. चंचल चौहान
3. उस जनपद का कवि हूँ - पृष्ठ 62. त्रिलोचन

त्रिलोचन के ज़्यादातर बिंब प्रायः प्रकृति से चुने गए हैं। यह उनके प्रकृति-प्रेम का निदर्शन है। उनके बिंब प्रभावशाली, सहज, सरल एवं सुबोध हैं। ये कविता - प्रवाह की अर्थ-ध्वनि धारा में विलीन होकर काव्य-सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं। ये त्रिलोचन के बिंब रचना-कौशल के परिचायक हैं।

त्रिलोचन के काव्य में छन्द विधान

आधुनिक कविता में छन्द का बन्धन ढीला पड गया है। भावों की अनर्गल धारा में छन्द को अवरोधक समझा जाता है। मुक्त छन्दों के प्रयोग का सिलसिला जारी है, फिर भी काव्य में लय पर ज़ोर दिये बिना नहीं रहता। जिस कविता में लयबद्धता नहीं है, उसे कविता समझना मुश्किल माना जाता है। काव्यभाषा में छन्द की उपदेयता का यही मज़बूत प्रमाण है। "प्रत्येक भाषा की अपनी एक शब्द योजना होती है और इसलिये प्रत्येक भाषा का एक अपना प्रवाह होता है भाषा की उसी प्राकृतिक लय में एक विशेष लय की प्राप्ति के लिये जो नाद विधान होता है, वही छन्द है।"[1]

हिन्दी की भी अपनी एक छन्द - धारणा है - "हिन्दी के छन्द केवल संस्कृत से ही नहीं आए हैं, अपितु प्राकृत और अपभ्रंश के छन्द भी उनके प्रधान स्रोत है"[2] हिन्दी काव्य के छन्द-बन्ध पर विचार करते समय इसी तथ्य का विशेष ध्यान रखना पडता है। किसी भाषा का छन्द उसी भाषा की ध्वनि से ही मेल खाता है। दूसरी भाषा की ध्वनियों का उसकी आन्तरिक लय से मिलना भी मुश्किल होगा। चतुर कवि के लिये

---

1. काव्यभाषा - डा. सियाराम तिवारी - 1976, पृष्ठ 153.
2. हिन्दी छन्द प्रकाश - रघुनन्दन शास्त्री - प्राक्कथन - पृष्ठ 5.

छन्द अवरोध नहीं खड़ा करता। भावों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में वह छन्द बन्धन से काम लेता है। इसलिए प्रेषणीयता को प्रभावशाली बनाने में छन्द अनिवार्य उपादान समझा जा सकता है।

छन्द के क्षेत्र में त्रिलोचन की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। उन्होंने एक ओर हिन्दी के परंपरागत छन्दों का प्रयोग करते हुए उनमें अपनी मौलिकता और नई शक्ति प्रदान की तो दूसरी ओर छन्दों के कई नये प्रयोग भी किये हैं। "कवि ने एक ओर अनेक सफल प्रयोग किये हैं तो दूसरी ओर उसने परंपरागत छन्दों का और शैली का सहारा लेकर उस शैली को अपनी निजी मौलिकता भी प्रदान की है। और इस द्विविध सफलता के लिये कवि बधाई का पात्र है।"[1] त्रिलोचन ने कई ऐसे मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है जो प्राकृत और अपभ्रंश से होकर हिन्दी में आये हैं। कभी वे इन पुराने छन्दों का नया प्रयोग भी करते हैं, चौपाई, हाकलि, आल्हा, तोमर और त्रिभंगी तक के छन्दों का प्रयोग उन्होंने किया है। कुछ गीत उन्होंने सवैये में लिखे हैं। उन्होंने कुंडलियाँ भी लिखी हैं। सॉनेटों में उन्होंने अधिकतर रोला छन्द का ही प्रयोग किया है। संस्कृत छन्दों का प्रयोग भी उन्होंने सीधे ढंग से किया है जैसे द्रुतविलंबित, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित और वंशस्थ।

छन्दों में अपने टेक्नीक से कवि ने भावों की गति के अनुसार पंक्तियों को विभक्त कर प्रवाह को बढ़ाने का प्रयास किया है। "धरती" काव्य संग्रह की "आज मैं अकेला हूँ" कविता उदाहरण है। कुछ छन्दबद्ध कविताओं में उन्होंने संगीत और लय का आश्रय लेकर प्रभाव और प्रवाह को बढ़ा दिया है। कवि के इन प्रयोगों के संबंध में उमेशचन्द्र मिश्र यों कहते हैं - "छन्दों के क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण प्रयोग न होते हुए भी कवि ने

---

1. "मुक्तिबोध रचनावली" - 5 - मुक्तिबोध - 1980, पृष्ठ 375.

उसके विविध उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और भावों को गति के अनुसार कविताओं को छोटी-बड़ी पंक्तियों में विभक्त कर आकर्षक तथा प्रवाह बनाने का प्रयत्न किया है।"[1] धरती की कविताओं में प्रयुक्त संगीत और लय के संबंध में रामेश्वर शर्मा का कथन है - कविता (आज मैं अकेला हूँ) की लय कहती है कि उसके निर्माण में कवि ने लोकगीत की किसी सुन्दरतम लय को तराशा है और नई भावना को उसमें ग्रथित कर दिया है।"[2]

"आज मैं अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता
जीवन मिला है यह
रतन मिला है यह
धूल में
कि
फूल में
मिला है
तो
मिला है यह
मोल - तोल इसका
अकेले कहा नहीं जाता"[3]

(आज मैं अकेला हूँ)

त्रिलोचन ने धरती में कई मुक्तछन्द कवितायें भी लिखी हैं और इसके अलावा गीत भी। परवर्ती रचनाओं में उन्होंने कई नये काव्यरूपों

---

1. प्रगतिशील काव्य - उमेशचन्द्र मिश्र - पृष्ठ 261.
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य - रामेश्वरशर्मा -पृष्ठ 126.
3. धरती - पृष्ठ 60.

के प्रयोग किए हैं जिनमें गज़ल, रूबाइयाँ या चतुष्पदियाँ, सॉनेट, लंबी कवितायें, छोटी कवितायें, गीत, काव्यरूपक, क्षणिकायें, गद्य-कविता आदि उल्लेखनीय हैं।

अन्य भाषा-काव्य रूप

गज़ल

"गज़ल"[1] उर्दू-फारसी कविता का एक प्रकार विशेष है जिसमें प्राय: 5 से 11 शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ़ और काफिये में होते हैं और हर शेर का मज़्मून अलग होता है। पहला शेर मत्ल कहलाता है जिसके दोनों मिस्रे सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर मक्ता होता है जिसमें शायर अपना उपनाम लेता है। सारे शेरों के दूसरे मिसरे तुक में मतलों से बँधे होते हैं।"

"गज़ल" अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है प्रेमिका से वार्तालाप करना। लेकिन कालान्तर में इसके तेवर बदले और युगीन सन्दर्भों के अनुरूप भावग्रहण की क्षमता भी विकसित हो गयी। गज़ल के शेरों की संख्या के संबंध में मतभेद है। "गज़ल में शेर कम से कम पाँच और अधिक से अधिक सत्रह हो सकते हैं।"[2] गज़ल में "अधिकतम शेरों की कोई संख्या निश्चित नहीं है। औसत गज़ल सात शेर से लेकर तेरह शेर तक की जाती है।"[3] गज़ल के कथ्य के संबंध में मूलत: यह अनिवार्य है कि इसमें "ज़ुबान नरमी लताफत और रफासत का हो, याने, गज़ल की अपनी तहजीब होती है और यह तहजीब उसको शायरी को दूसरे किस्मों से अलग करती है।"[4]

---

1. उर्दू - हिन्दी शब्द कोश - संकलनकर्ता-मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ मद्दाह - 1959, पृष्ठ 581.
2. "सोच" अंक-2, 1985 (संपादक सुभाष गौतम) पृष्ठ 18. डा. शिवसहाय पाठक - "गज़ल की परंपरा और विराट".
3. "उर्दू भाषा और साहित्य" - रघुपति सहाय फिराक़ - गोरखपुरी -

हिन्दी में गज़ल के प्रथम कवि अमीर खुसरो[1] और इस परंपरामें गज़ल विधा को स्वीकार करनेवाले कबीर, नानक, गंग और गुरुगोविन्द सिंह रहे। आधुनिक काल में भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, हरिऔध, लाला भगवान दीन, निराला, प्रसाद, शमशेर और दुष्यन्त कुमार ने भी इस काव्यरूप का प्रयोग किया था।

त्रिलोचन ने "गुलाब और बुलबुल" में 103 गज़लों की रचना की है। इनमें पाँच शेरों से लेकर सत्ताईस शेरों तक की गज़लें पाई जाती हैं। त्रिलोचन ने अपनी गज़लों में उर्दू की "फार्म और तकनीक" का इस्तेमाल किया है। लेकिन भाषा और मुहावरा हिन्दी का है। बिना उर्दू शब्दों का प्रयोग किये उन्होंने गज़ल और रुबाई की आत्मा को हिन्दी में प्रतिष्ठित किया है।"[2] और कथ्य भी गज़ल की मूल अवधारणा के अनुसार नहीं है। कुछ ही शेरों में ही मूल गज़ल तत्व का निर्वाह हुआ है। इस सिलसिले में मजहर इमाम कहते हैं। त्रिलोचन की गज़लों में "हिन्दी ज़ुबान का अपना मिज़ाज और हिन्दी के अल्फ़ाज और मुहावरे लाजिमी तौर पर इसमें अपनी झलक दिखाते हैं अलबत्ता फार्म और तकनीक के एतबार से इसे गज़ल के दायरे में रखना होगा त्रिलोचन शास्त्री की गज़लें बहुत ऊँची न सही, लेकिन, एक खास मेयार को ज़रूर बरकरार रखती है।"[3]

"तू खड़ा है जिस के स्वागत में व' कब का आ चुका
जो सुदिन तू देखता था वह कभी का जा चुका
राह चलते देखता हूँ हो गया पूरा हिसाब,
खो चुका मैं अपना खोना और पाना पा चुका

---

1. सोच - पृष्ठ 18. डा. शिवसहाय पाठक .
2. हिन्दी की प्रगतिवादी कविता - डा. सुरेन्द्र प्रसाद 1985, पृष्ठ 201.
3. स्थापना-7, पृष्ठ 77 - "गुलाब और बुलबुल" - मज़हर इमाम.

काम जो कुछ को मिला था मैं ने पूरा कर दिया
और जो लाना मुझे था देखिए भी ला चुका
आप पंचम के लिए बरसात में क्यों हैं अधीर,
दिन गए वे और कोकिल गान अपने गा चुका
तू हताश न हो त्रिलोचन स्वर गज़ल का खूब है,
सब के हृदयों में बसा है सब के जी को भा चुका"[1]

हिन्दी गज़ल की परंपरा में आनेवाले अन्य कवियों के समान ही त्रिलोचन भी इस दिशा में अपनी पहचान बना नहीं पाये हैं। वर्तमान गज़ल विधा को परंपरा का दायरा तोड़कर विकास करने का श्रेय दुष्यंत-कुमार को दिया जाता है। बाकी कवियों पर यह इलजाम लगाया जाता है - "हिन्दी में बहुत से कवियों ने गज़लों में ज़ोर - आजमाइश की भी, लेकिन वे उसके परंपरागत ढाँचे को तोड पाने में असफल रहे। शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री जैसे कवियों की गज़लें इस बात की साक्ष्य है"[2] फिर भी त्रिलोचन की गज़लों का अपना महत्व है, क्यों कि अपने भाव और कथ्य को अपने परिवेश के साथ रूप देने में गज़ल की विधा को उन्होंने स्वीकार किया था। इस दृष्टि से उनकी गज़लों को मान्यता भी प्राप्त है - "त्रिलोचन की गज़लों में विशुद्ध हिन्दी भाषा का रंग पूरी चमक के साथ उभरा है।"[3]

रुबाई - चतुष्पदी

त्रिलोचन के संग्रह "गुलाब और बुलबुल" में रुबाई के स्थान पर चतुष्पदी शब्द प्रयुक्त है। इस रचना के पहले संस्करण (1956) में इसके स्थान

---

1. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 62. त्रिलोचन
2. आजकल - मई 1981, पृष्ठ 10. श्याम निर्मम.
3. हिन्दी गज़ल - उद्भव और विकास - डा. रोहिताश्व आस्थाना - 1987, पृष्ठ 206.

पर रुबाई ही कहा गया है। इसलिये डा. जीवन प्रकाश जोशी ने "त्रिलोचन की कविता यात्रा" में रुबाइयाँ ही कहा है। याने प्रस्तुत रचना में 101 रुबाइयाँ और 67 गज़लों के होने की बात कही गया है।[1] यहाँ चतुष्पदियों को रुबाई के रूप में चर्चित है।

"रुबाई" उर्दू और फ़ारसी का एक छन्द विशेष है जिसका मूल वज़्न 1 तगण 2 सगण, 1 लगण और 1 नगण होता है। इसके पहले, दूसरे और चौथे पद में काफ़िया होता है, कभी कभी चारों ही सानुप्रास होते हैं।[2]

"उरूज" कलीम उल्ला हुसैनी के आधार पर (अन्त्यक्रम अ. अ. ब, अ) यह छन्द चार चरणों का मुक्तक है जो आर्या या दोहे की भाँति श्रृंगार और प्रेम में प्रयुक्त होता है। रुबाई में उमरखय्याम के प्रेमगीत प्रसिद्ध हैं।[3]

मजहर इमाम के अनुसार "रुबाई एक खास सिन्फेशायरी (कविता की किस्म) है जो - चौपाई से मिलती जुलती है। लेकिन दोनों एक नहीं है। रुबाई में पहली, दूसरी और चौथी पंक्ति का हमकाफ़िया (तुक का एक होना) ज़रूरी है। अगर तीसरी पंक्ति में भी, हमकाफिया हो जाय तो कोई हर्ज़ नहीं। इसके लिये जो खास बहर इस्तेमाल की जाती है। वो लाहौल विला कूव्वत इल्लाह बिल्लाह। इसमें सगह - जहाफ़त भी आते है।"[4]

---

1. त्रिलोचन की कविता - यात्रा - डा. जीवनप्रकाश जोशी, पृष्ठ 12.
2. उर्दू - हिन्दी शब्द कोश - सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, पृष्ठ 581, 1959.
3. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना - डा. पुत्तूलाल, 1958, पृष्ठ 45.
4. स्थापना -7, पृष्ठ 75-76, मज़हर इमाम

र्ग का न होना चाहिए नहीं तो फिर र्ग कहीं, कला, तौकैश र टता ा का न ा । ा ते अनुसार गुलाब और बुढ़ि ाओं में ो भी ा न ैं ा जा सकता। े ा, िविध ा वाओं ंभ ता का भा भी है जिसका ा ाों में ोना ज़री । िफर भी अपने ािओं ्न का ात ाा ा े ा ाों ा" ाने योग्य ै जो उन्ने ाने परंपरा से ंग

प्रस्तुत संकलन में संकलित चतुष्पदियाँ कुछ के विषय में स्वा े ें निधा का पूर्णरूप से निर्वाह करती हैं। ो एक में चारों पद ाकाफिए े पाते हैं -

"सच है दुनिया ने मुझे सुख ा दिया
स्वप्न में देखा जो वो सुख न दिया
फिर भी कुछ ो दिया है ऐसा कुछ
स्पर्श ने जिस प' कभी रुख न दिया"[1]

इसमें पहले, दूसरे और चौथे पद ाकाफिये - निम्नलिखित चतुष्पदी में चारों पद ाकाफिए है -

"तुम ने इस देश को समझा क्या है
प्राण के क्लेश को समझा क्या है
दुख में दुखियों ने सिर उठाया है
दुख के संदेश को समझा क्या है"[2]

---

1. गुलाब ौर बुलबुल - पृष्ठ 132.
2. वही - पृष्ठ 138.

रूबाई के बहरों में रचित न होने के कारण इसे पूरे तौर पर रूबाई नहीं कह सकते, शायद इसलिए नए संस्करण में इन्हें चतुष्पदियाँ कही गयी हैं। इसके बावजूद युगीन परिस्थितियों के व्यंग्यपूर्ण चित्रण के लिये उपयुक्त होने के कारण इन चतुष्पदियों को सफल कहा जा सकता है।

सॉनेट

आधुनिक हिन्दी कविता में सॉनेट और त्रिलोचन प्रायः पर्यायवाची शब्द हो गये हैं। हिन्दी में त्रिलोचन सॉनेट के कवि हैं। सॉनेट ही वह काव्य रूप है जिसका त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में सबसे अधिक प्रयोग किया है। उनकी प्रकाशित कृतियों में दिगन्त, "शब्द" "उस जनपद का कवि हूँ" "अनकहनी भी कुछ कहनी है" और फूल नाम है एक" की रचना पूरे तौर पर इस छन्द - विधान में हुई है और बाकी कृतियों में "ताप के ताए हुए दिन", "अरघान" और "तुम्हें सौंपता हूँ" में भी कुछ कविताओं में सॉनेट छन्द का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि त्रिलोचन ने "सॉनेट" रचना में अपनी ज़्यादा शक्ति दिखाई है और इस छन्द ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित भी कर लिया है।

सॉनेट एक ऐसा छन्द है जिसके पीछे एक संपन्न, समर्थ और लंबी परपरा रही है और इसका प्रयोग पश्चिम के कई महान कवियों ने अपनी काव्य रचना की विधा के रूप में किया। स्वयं त्रिलोचन के शब्दों में सॉनेट का हाल इस प्रकार है -

"इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सॉनेट सॉनेट सॉनेट सॉनेट क्या कर डाला
यह उसने भी अजब तमाशा. मन की माला
गले डाल ली.
उसने तो झूठे

ठाट-बाट बाँधे हैं, चीज़ किराये की है.
स्पेंसर, सिडनी, शेक्सपियर, मिल्टन की वाणी
वर्ड्सवर्थ, कीट्स की अनवरत प्रिय कल्याणी
स्वर-धारा है. उसने नई चीज़ क्या दी [1]

इन पंक्तियों में कवि ने भले ही अपनी सॉनेट - रचना के बारे में और लोगों में प्रचलित कुछ धारणाओं पर प्रकाश डाला है, पर महत्व की बात यही है कि **पश्चिम** के महान कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रस्तुत काव्य-रूप के प्रयोग में एक भारतीय, विजातीय भाषा के कवि का सफलता प्राप्त करना। ध्यातव्य बात यह भी है कि "हिन्दी के अनेक छोटे - बड़े कवियों ने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग या दुरुपयोग इस काव्य रूप में किया
पर अधिकांश रचनाकारों ने सॉनेट मात्र लिखने के लिये लिखा" -[2] विचारणीय है कि कवि त्रिलोचन की इस दिशा में उपलब्धि क्या है और कहाँ तक सफल हैं। यह जानने के पहले "सॉनेट" की परंपरा की जानकारी भी ज़रूरी है।

इस छन्द का इतिहास छः सौ साल से भी अधिक पुराना है। तेरहवीं शताब्दी में "टसकन कवि ग्वेतोन दा रेस्ती (Guittone d'Arezzo) दाँते, दाँते के उस्ताद ग्वेदी ग्वीनित्सेली, (Guido Guinizelli)उनके दोस्त कवलकाँति (Cavalcauti)द'पिस्तोआ (D'Pistoia) आदि ने सॉनेट लिखे। लेकिन सॉनेट की कला को परिपूर्णता प्रदान करने का श्रेय इतालवी कवि पेट्रार्क को ही दिया जाता है।"[3] सॉनेट पेट्रार्क के प्रणयगीतों का माध्यम रहा और अठारहवीं सदी तक यूरोप के विविध देशों में भिन्न भिन्न भाषाओं में इसका प्रयोग होता रहा। "अंग्रेज़ी काव्य

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 7. त्रिलोचन
2. स्थापना - 7, पृष्ठ 55-56. बिन्दु विकास - "परंपरा और त्रिलोचन प्रसंग सॉनेट
3. स्थापना - 8, पृष्ठ 29. "चीज़ किराये की है" -

में सर्वप्रथम व्याट तथा सर्रे (Wyatt & Surrey) नाम के कवियों ने सोलहवीं सदी के रेनेसाँ काल में इसका प्रयोग अपनी कविताओं में किया।"[1] सॉनेट परंपरा का विकास करनेवाले शेक्सपीयर, सिड्नी, स्पेन्सर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, कोट्स आदि रहे। इन महान कवियों ने समय समय पर प्रस्तुत छन्द में काफ़ी परिवर्तन और परिवर्द्धन किया। शेक्सपीयर युग में परिवर्तित सॉनेट को शेक्सपीरियन सॉनेट कहते हैं।

"सॉनेट छन्द में चौदह पंक्तियाँ होती हैं, जिनमें प्रथम आठ पंक्तियों को अष्टपदी कहते हैं, जो "अब अब" के तुक से समाप्त होती है और अंतिम छः पंक्तियों को षट्पदी कहते हैं जिनमें "सदसद" कीलय होती है।"[2] अंग्रेज़ी लेखक रोबिन स्केलटन के अनुसार सॉनेट के लक्षण प्रायः उपर्युक्त ढंग पर ही हैं, लेकिन उसके प्रकारों के नाम भिन्न प्रकार के हैं।[3] मूलतः सॉनेट की दो मुख्य विशेषतायें हैं -

(क) एक ही कविता में अष्टपदी और षट्पदी के विभाजन के बावजूद, दोनों पद, परस्पर संबद्ध होते हैं, और एक ही अनुभूति के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करते हैं।

(ख) किसी अन्विति-विशेष का इसमें अभाव होता है -[4] लेकिन शेक्सपीरियन युग में षट्पदी की लयात्मक वृति में अन्तर आया और षट्पदी का अन्त द्विपदी में होने लगा।

---

1. स्थापना - 7 - पृष्ठ 56. "परंपरा और त्रिलोचनःप्रसंग सॉनेट" बिन्दुविकास.
2. वही - पृष्ठ 56.
3. 'The Sonnet is a fourteen line poem of iambic pentameters which is composed of two parts, the Octct and Sestet. The division between the two may or may not be indicated by a space. The main forms of Sonnet are the Shakespearean (rhyming - ababcded efefgg, the petrarchan rhyming- abba abba cde cde, and the Miltonic rhyming abba abba cdedcd)' There are other variations upon the rhyming of the sestet. The practice of poetry-

"चौदह पंक्तियों में लिखा जाना ही सॉनेट की एकमात्र विशेषता नहीं है। चरण संख्या की तरह इसका छन्द भी सुनिर्दिष्ट है जिसमें तुक का बन्धन अर्थात् अंत्यानुप्रास की एक विशेष विधि है।[1]

पेट्रार्की सॉनेट के अनुसार सॉनेट की चौदह पंक्तियों में प्रत्येक पंक्ति दस अक्षरों की होती है – और अष्टक और षष्ठक तुक की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न रहते हैं। लेकिन प्रत्येक विभाग की पंक्तियाँ एक दूसरे से तुक से संबद्ध हैं। दोनों विभागों के बीच में भाव की दृष्टि से समानता है इनमें एक ही भाव ओतप्रोत रहता था। पहली आठ पंक्तियों में भाव का प्रतिपादन रहता था और पिछली छः पंक्तियों में कुछ निष्कर्ष या परिणाम रहता था।"[2] पेट्रार्की सॉनेट में अष्टक की पहली, चौथी, पाँचवीं और आठवीं पंक्तियाँ एक ही तुक में बँधी होती है, षष्ठक में नवीं, दसवीं क्रम से बारहवीं और तेरहवीं पंक्ति से तुक में बँधी है, गयारहवीं और चौदहवीं दूसरे प्रकार से तुक से बद्ध हैं। षष्ठक की पंक्तियों को तुक की दृष्टि से इतना अपरिवर्तनशील नहीं मानाजाता था।

विषय की दृष्टि से "अभिजात वर्गीय प्रणय लीला तथा उससे संबंधित भावविचार पेट्रार्क के सॉनेटों का एक मात्र विषय कहा जा सकता है।"[3] मूल पेट्रार्कीय क्रम में लिखा त्रिलोचन का एक सॉनेट प्रस्तुत है जिसका अष्टक प्रायः सभी पेट्रार्कीय सॉनेटों जैसे है। षष्ठक में ही अन्तर दिखाई पड़ता है लेकिन उसमें षष्ठक भी मूल क्रम से ही रचित है –

---

1. भारतीय साहित्य कोश – डा. नगेन्द्र – पृष्ठ 1331.
2. काव्य के रूप – गुलाबराय – 1958, पृष्ठ 118.
3. स्थापना – 7 – पृष्ठ 30. कपिलमुनि तिवारी.

"कुछ भी आप कहें, ऐसे कुत्तों को गोली
मार दिया करते हैं. "साहब, क्षमा कीजिए.
मुझमें उसमें कोई मौलिक भेद नहीं है.
इसी बहाने जाँच आपको पूरी हो ली.
अभी शिष्टतापूर्वक अपनी राह लीजिए.
अगर आपको इन शब्दों पर खेद नहीं है."[1]

(जगदीशजी का कुत्ता)

पेट्रार्की सॉनेट में अष्टक और षष्ठक के बीच में भावभिव्यक्ति की दृष्टि से एक तनावपूर्ण सन्तुलन रहता है। सॉनेट का भावविधान उसके स्पावधान की तरह ही संतुलित तनाव से ओतप्रोत होता है। उसमें एक ही भाव के परस्पर संबंधी, लेकिन विरोधी पक्षों को अभिव्यक्ति होती है।"[2]

अंग्रेज़ कवि वैट ने पेट्रार्की सॉनेट के रूप को पाँच चरणों में विभक्त, दस अक्षरोंवाली पदपंक्ति की व्यवस्था कर उस की भाषागत संगीतात्मक अभिव्यंजना शक्ति को उजागर किया। कवि सरे ने सॉनेट के रूप में थोड़े परिवर्तन किये। चौदह पंक्तियों को बारह – दो में विभक्त करने के अलावा बारह पंक्तियों के तीन चतुष्पदियों में भी बाँट दिये। अंतिम द्विपदी को एक अलग इकाई के रूप में रख दिया। सरे ने सॉनेट के तुक विधान में भी परिवर्तन किए। शेक्सपियर सरणि के सॉनेटों के रूप विधान और तुक विधान के विषय में सरे के सॉनेटों से समानता दिखाई पड़ती है। इसका तुक विधान पेट्रार्की सॉनेट से भिन्न है। तुक का विधान इस प्रकार है – गम गम, सर सर, पध पध, न न। सॉनेट – रूप का कसाव – तनाव पेट्रार्की सॉनेट में ज़्यादा होता है। फिर भी

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 41. त्रिलोचन
2. स्थापना – 7 – पृष्ठ 31 कपिलमुनि तिवारी

शेक्सपियर सरणि के सॉनेट में एकान्विति खंडित नहीं होती। भाव की दृष्टि से शेक्सपियर ढंग के सॉनेट में विविधता है। शेक्सपीयर ने सॉनेट कला को, एक नया रूप एक नयी वाणी, एक नयी मुद्रा दी, अर्थात् उसने एक नयी परंपरा की नींव डाल दी।"[1]

सिडनी, मिल्टन, वेड्सवर्थ आदि ने भी पेट्रार्की सॉनेट में रुचि दिखाई लेकिन तुक विधान में कुछ परिवर्तन भी किये। स्पेंसर ने कुछ सॉनेट में शेक्सपियर - सॉनेट को अपनाया। लेकिन तुक - विधान मौलिक रूप से उस पद्धति से भिन्न है।

इस प्रकार अंग्रेज़ी में पाँच प्रकार के सॉनेट प्रयुक्त है पेट्रर्की सॉनिट, शेक्सपियर सरिणी के सानेट, स्पेंसर सॉनेट, मिल्टन के सॉनेट जो तुक विधान में पेट्रार्की सॉनेट - जैसा है, लेकिन अष्टक और षष्ठक में कोई विराम नहीं वर्ड्सवर्थ के सॉनेट, जो पेट्रार्की तुक विधान रखते हैं, लेकिन अष्टक के तुक विधान में अंतर रखे हुए हैं।

इसके अलावा सॉनेटों की मुख्य विधाओं से तुक विधान की दृष्टि से भिन्न कई प्रकार के सॉनेट रचित हुए हैं -[2]

त्रिलोचन ने सभी प्रकार के सॉनेटों का प्रयोग किया है और उनके द्वारा प्रयुक्त सॉनेटों की बनावट से यह स्पष्ट होता है कि कवि ने सॉनेटों की परंपरा का खूब अध्ययन किया है और प्रत्येक सॉनेट - विधा का गठन और शिल्प वैशिष्ट्य का मूलभूत तत्व भी जान लिया है।

---

1. कपिलमुनि तिवारी - स्थापना - 7 - पृष्ठ 33.

2. In addition to various slight departures from the strict rhyme scheme of the Italian and Shakespearean Sonnet there occur rhyme schemes which are very highly irregular. 'Understanding poetry'- Cleanth Broots-Holt, Rinehart and Winston - 3rd edition 1967, p.567.

"दिगन्त" के पहले सॉनेट से यह स्पष्ट है कि वे सॉनेट कला के मर्मज्ञ हैं –

> इस सॉनेट का रस्ता चौड़ा
>
> अधिक नहीं है. कसे कसाये भाव अनूठे
>
> गेय रहे, एकान्विति हो.[1]
>
> (सॉनेट का पथ)

"दिगन्त" में ही कुछ सॉनेट पेट्रार्की हैं, और कुछ शेक्सपीयरियन इनके अलावा इने – गिने सॉनेट मिल्टन के सॉनेट – जैसे भी हैं, स्पेंसर के सॉनेटों का भी प्रभाव तुक विधान में दृष्टव्य है। पेट्रार्की सॉनेट में अष्टक और षष्ठक क्रम से आठ और छै. पदपंक्तियों से विभक्त हैं। इसमें अष्टक का तुकविधान प्रायः अपरिवर्तनशील है और षष्टक में प्रायः परिवर्तन की गुंजाइश है। परिवर्तित तुक बन्ध का एक उदाहरण –

"दशाश्वमेध घाट पर गंगा की धारा है
तट पर जल के ऊपर ऊँचे भवन खड़े हैं
विपुल गुहा–कक्षी ज्यों क्षुद्र पहाड़ गड़े हैं.
बिजली जली ज्योति से भग्न तिमिर कारा है.
तोड़ मारते जल–प्रवाह का स्वर न्यारा है.
जल पर पीपल की शाखा के छत्र पड़े हैं
दल दल के तम से बिजली के स्रोत लड़े हैं
तमसाच्छन्न क्षितिज–तरुश्रेणी, नभ सारा है.

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 7 त्रिलोचन

रहे बैठे, काली सड़क दाहिने बायें,
    जल को छूते तख्ते, तख्तों पर सैलानी
    जमे हुए हैं, कहीं चल रही कथा-कहानी,
नौजवान आते हैं, आती हैं महिलाएँ,
विस्फारित लोचन विलोकने वे उपदाएँ
    जो गंगा ने दी हैं, जो हैं आनी-जानी."[1]

(बाढ़ में दशाश्वमेध घाट)

प्रस्तुत सॉनेट में अष्टक की पंक्तियाँ "गमगग", "गगमग" के क्रम से तुक बद्ध हैं और षष्ठक में सरर सलर के क्रम से तुक विधान हुआ है।

कुछ सॉनेटों में त्रिलोचन ने मिल्टन, स्पेंसर विधा का तुक विधान स्वीकार किया है। मिल्टन की सॉनेट परंपरा में लिखे एक सॉनेट का तुक विधान देखिए - षष्टक ही प्रस्तुत है -

"मुझ को जीवन की मुद्राएँ घेर रही हैं
जल स्थल नभ में प्राणों की अगणित धाराएँ
प्रवहमान हैं - प्रकृति और मानव-कृति मिल कर
रूप जगत् का अपनी आँखों हेर रही हैं,
सृष्टि - पदों की साक्षी हैं नभ की ताराएँ,
अर्थ और भी खुलते हैं भावों में खिल कर"[2]

(शब्दों में)

इसमें लय-योजना "सदप सदप" क्रम से हुआ है।

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 49 . त्रिलोचन
2. शब्द - पृष्ठ 41 त्रिलोचन .

त्रिलोचन ने शेक्सपीयर सरिणी के सॉनेट ही अधिक लिखे हैं। शेक्सपीयर परंपरा में लिखा एक सॉनेट प्रस्तुत है –

"हिन्दी की कविता, उनकी कविता है जिनको
साँसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने
सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
में समाज के नहीं काम करने में घिन की

कभी किसी दिन. हिन्दी में सतरंगी आभा
विभाव-भूति की नहीं मिलेगी, जन-जीवन के
चित्र मिलेंगे, घर के वन के सब के मन के
भाव मिलेंगे, बोये हुए खेत में आभा

जैसे एक साथ आता है, कुछ ऐसे ही
वातावरण एक-से भावों से छा जाता
है, फिर प्राणों प्राणों में एकत्व दिखाता.
नेह उमड़ आये तो दूर कहाँ है नेही

भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय."[1]

(अपराजेय)

इसके अंतिम दो पंक्तियों में लय की एकरूपता है जो शेक्सपीयर सॉनेट की परंपरा के अनुरूप है। "शेक्सपीयर के सॉनेटों में पाये जानेवाले त्रिपदा अपने आप में पूर्ण होते हैं। सॉनेट में अभिव्यक्त भावों से संबंधित

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 64. त्रिलोचन

होते हुए भी, उनकी एक स्वतंत्र सत्ता होती है, सन्दर्भ से हटा देने पर भी, उनका अर्थ – सामर्थ्य बना रहता है, लेकिन उसके सॉनेटों की एकान्विति खंडित नहीं होती" –[1] इस दृष्टि से त्रिलोचन को प्रस्तुत सॉनेट सफल माना जा सकता है, इसकी द्विपदी की एक स्वतंत्र सत्ता है और सॉनेट की एकान्विति बनाये रखने में समर्थ है। शेक्सपीयर सरिणी के अनुसार सॉनेट की पहली, चौथी, पाँचवीं और आठवीं पदपंक्तियाँ एक तुक में गुँथी होनी चाहिये। दूसरी, तीसरी, छठी तथा सातवीं पदपंक्तियाँ दूसरे तुक में। अंतिम द्विपदी का तुक में बद्ध होना भी इसी परंपरा में मान्य है। अतः तुक की दृष्टि से भी प्रस्तुत सॉनेट शेक्सपीयर परंपरा में लिखा हुआ सफल सॉनेट माना जा सकता है।

"दिगन्त" संग्रह की कविता "रेलगाडी" में, प्रस्तुत सॉनेट तुक विधान की दृष्टि से विलक्षण माना जा सकता है। शेक्सपीयर सॉनेट जैसे तीन चतुष्पदियों और एक द्विपदी से गठित है। लेकिन तुक का क्रम "ग ग ग, ग", गम गम, मप, मप, न न" दिखाई पडता है। शेक्सपीयर सॉनेट में भी पहली चतुष्पदी की सभी पदपंक्तियों का एक ही तुक में बद्ध होना साधारण बात नहीं है। गम गम क्रम से बद्ध होना काफ़ी है – कविता की पहली चतुष्पदी प्रस्तुत है –

"सफ़र रेलगाड़ी का – अपने आप झूलना
तन का, मन का. चेहरे चेहरे, आना-जाना,
कहना-सुनना, याद दिलाना और भूलना,
मिलकर खिल जाना, खिलकर तुरन्त मुरझाना,"[2]

(रेलगाड़ी में)

---

1. स्थापना – 8. पृष्ठ 32. चीज़ किराये की है – कपिलमुनि तिवारी

2. दिगन्त – पृष्ठ 31। त्रिलोचन

9

इसमें चारों पंक्तियाँ अंत में एक ही तुक में आयी हैं, यह साधारण क्रम से विलक्षण दिखाई पड़ता है।

लेकिन कुछ सॉनेट तुक की दृष्टि से दूसरे सॉनेटों से अलग दिखाई पड़ते हैं जो तुक से गम भग सर रस पथ धप न न" इस क्रम से बने हैं। सॉनेटों की किसी भी परंपरा में यह तुक विधान दृष्टिगत नहीं होता। "जहाँ तक मुझे मालूम है इस तुकविधान की अंग्रेज़ी सॉनेटों में कोई परंपरा नहीं है, और अगर यह कथन सत्य है तो यह तुक विधान सॉनेट कला के क्षेत्र में शास्त्रीजी की विशिष्ट देन समझना उचित होगा।"[1]

"जब भौंरे ने आकर पहले पहले गाया,
    कली मौन थी. नहीं जानती थी वह भाषा
    इस दुनिया की, कैसी होती है अभिलाषा
इससे भी अनजान पड़ी थी. तो भी आया

जीवन का वह अतिथि, ज्ञान का सहज सलोना
    शिशु जिसको दुनिया में प्यार कहा जाता है,
    स्वाभिमान – मानवता का पाया जाता है
जिससे नाता. उसमें कुछ ऐसा है टोना

जिससे यह सारी दुनिया फिर राई-रत्ती
    और दिखाई देने लगती है. क्या जाने
    कौन राग छाती में लगता है अकुलाने
इन्द्रधनुष-सी लहराती है पत्ती पत्ती.

    बिना बुलाये जो आता है प्यार वही है.
    प्राणों की धारा उसमें चुपचाप बही है."[2]

(प्यार)

---

1. स्थापना – 8 – पृष्ठ 35-36. कपिलमुनि तिवारी "चीज़ किराये की है"

प्रस्तुत सॉनेट में तीनों चतुष्पदियों में पहली और चौथी, दूसरी और तीसरी पंक्ति एक दूसरे से तुक से बद्ध है। अंतिम द्विपदी की दोनों पंक्तियाँ तुक से आबद्ध हैं। दूसरी परंपरा के सॉनेटों की तरह चतुष्पदियों की पंक्तियों के बीच में तुक की समानता होना आवश्यक है। शेक्सपीयर पद्धति के अनुसार भी "गम गम सर सर पध पध न न" क्रमसे तुक बन्ध होता है, लेकिन त्रिलोचन के सॉनेट में "गम मग सर रस पध धप न न" के क्रम से तुक बन्ध हुआ है। इसे तुक विधान की दृष्टि से त्रिलोचन की खूबी और सॉनेट क्षेत्र में देन माना जा सकता है।

दिगन्त संग्रह का पहला सॉनेट "सॉनेट का पथ" में उपर्युक्त क्रम को तोडा गया मालूम होता है। इसकी दूसरी चतुष्पदी में, दूसरी और तीसरी में पंक्ति का तुक में बद्ध होने का क्रम टूटा दिखाई पडता है –

"अधिक नहीं है. करो कसाये भाव अनूठे
ऐसे आयें जैसे किला आगरा में जो
नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को
गेय रहे, एकान्विति हो. उसने तो झूठे"[1]

इसमें पहली और चौथी पंक्ति अपने क्रम से तुक में आबद्ध है, मगर दूसरी और तीसरी पंक्ति का तुक से बद्ध होना नहीं दीखता।

"शब्द संग्रह में पेट्रार्की सॉनेट का रचना – विधान ही प्रयुक्त हुआ है। इसमें तुक भी उसी क्रम से बद्ध हुआ है। अष्टक में तुक विधान गम मग, गम मग और षष्ठक में सरप सरप क्रम से हुआ है। "दूसरे सॉनेटों में भी षष्ठक का तुक विधान ससर ससर" क्रम से भी हुआ है।

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 7 त्रिलोचन

"बहती लहरों से यदि कोई प्यार करे तो
कैसे करे, करे तो संग संग बहना है
उसको भी - अस्थिर से अस्थिर हो रहना है
सदा सदा के लिए. किसी दिन कहीं. मरे तो
हरे फूल सा बन जाना है - हरे भरे तो
दूर दूर वाले रहते हैं, क्या कहना है,
तट वालों को - प्रायः प्रखर वेग सहना है
धारा का, निंदित होना है कहीं डरे तो.

बहती लहरों को ही मैंने प्यार किया है
फिर भी, क्या जाने क्यों, शायद नादानी हो
यह हिसाबियों के हिसाब से, मैंने अपना
जीवन बहती लहरों पर ही वार दिया है
पहली ही उमंग में. यदि मन में पानी हो
तो सत्य ही प्रमाणित होगा देखा सपना."[1]

लेकिन उसी में कुछ सॉनेटों में तुक क्रम से भंग भी दिखाई पडता है -

"धूल चरण से जो उड़ती है उड़ा करेगी
जब तक पथ है और पथिक हैं, साधे चरण से
उठी धूल चंदन बन जाएगी, अनुगामी
उसे रमाएँगे, पथधारा मुड़ा करेगी
उस गतिधारा के मोड़ों पर, जुड़ा करेगी
जनतरंगिणी अपने नूतन रंग दिखाती
और महत्वाकांक्षाओं के केतु सँभाले
आवर्तों में दर्पभावना बुड़ा करेगी."[2]

---

1. शब्द - पृष्ठ 14. त्रिलोचन.
2. वही - पृष्ठ वही

प्रस्तुत अष्टक में पहली, चौथी, पाँचवीं और आठवीं पंक्ति में तुक बन्धन है लेकिन दूसरी, तीसरी छठी, सातवीं में इसे तोडा गया हैं। इसके षष्ठक में भी तुक का बन्धन दूसरी तरह से हुआ है।

"उस जन पद का कवि हूँ" में भी शेक्सपीयर सरिणी के सॉनिट प्रयुक्त हुए हैं जिनमें तुकविधान "गम गम, सर सर, पध पध न न"के क्रम से हुआ है।

"तुम्हें सौंपता हूँ" में भी त्रिलोचनी सॉनिट के नमूने हैं जो तुक विधान में अपनी अलग पहचान रखते हैं।[1]

प्रस्तुत संकलन में "तलाशी" शीर्षक सॉनिट विशेष रूप से विचारणीय है।[2] त्रिलोचन ने यहाँ सॉनिटों की पद - पंक्तियों की व्यवस्था में नया प्रयोग किया है। इसके अष्टक विभाग में केवल सात पंक्तियाँ दिखाई पडती हैं। भाव की दृष्टि से अपूर्णता बिलकुल नहीं है, अन्विति की दृष्टि से कोई ह्रास नहीं दिखाई पडता। इसे भी "त्रिलोचनी सॉनिट कहना उचित लगता है।" त्रिलोचन का ध्यान अन्तर्वस्तु पर होता है। वे छन्द या तुकों के आग्रह से भर्तीली लाइन या भरती के शब्द भी नहीं जोडते"[3] प्रस्तुत सॉनिट इस तथ्य का प्रमाण है -

"कैसे, कैसे प्यार तुम्हारा इतना छोटा
हो आया, पहले पाया आकाश यही है
फिर समझा आकाश नहीं यह तो धरती है
फिर देखा यह अपना घर है जिसमें टोटा
ही टोटा है, काम चला कर कितना खोटा
लगता है, हिसाब तो लेने वाला जी है
खालीपन का दर्द हो गया मन का मोटा।

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - पृष्ठ 95.
2. वही - पृष्ठ 39.

तुम को भी केवल घर के अन्दर पाता हूँ
बाहर जाता हूँ तो मन के भीतर रखकर
चिन्ताएँ ही चिन्ताएँ घेरे रहती हैं
आज विराट् और वामन पर जब जाता हूँ
कहीं सिकुड़ जाता हूँ वहाँ अशक्तता लखकर
और हमारी साँसें अर्थ नहीं कहती हैं।"[1]

(तलाशी)

त्रिलोचन ने सॉनेटों की सीरीज़ भी "वाचस्पति,"[2] "साहीजो"[3] आदि के नाम लिखे हैं। पेट्रार्कीय सॉनेट प्रेमिका के नाम ऐसे ही लिखे जाते थे। नागार्जुन के बारे में पाँच सॉनेटों की "सीरीज" भी इसका उदाहरण है।[4]

"अरघान" संकलन में 27 सॉनेटों की सीरीज़ "महाकुंभ" के शीर्षक से प्रस्तुत है। यह त्रिलोचन के सॉनेट रचना – क्रम में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सिलसिलेवार ढंग से सॉनेटों की रचना उसकी प्राचीन परंपरा के अनुरूप है। लेकिन त्रिलोचन ने उसे आधुनिक सन्दर्भ में युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार करके अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है।

त्रिलोचन द्वारा रचित सॉनेटों के रूप – पक्ष के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने सॉनेटों की प्रचलित सभी विधाओं को अपने काव्य के लिए स्वीकार किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने सॉनेट परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने के साथ साथ इस क्षेत्र में नई देन भी दी है।

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ – पृष्ठ 39. त्रिलोचन .
2. वही – पृष्ठ 89–90 .
3. वही – पृष्ठ 91–93 .
4. फूल नाम है एक-पृष्ठ – 64, 65, 66, 67, 68 .

तुक विधान के क्षेत्र में उनकी मौलिकतापूर्ण देन विशेष उल्लेखनीय है। इसके अलावा, उन्होंने सॉनेट के भाव विधान के क्षेत्र में भी मौलिक परिवर्तन किये हैं। "दूसरी भाषाओं में सुलभ गुणों पर आधरित किसी काव्य रूप को एक नयी भाषा में स्थापित, परिमार्जित करना एक मौलिक कलाकार ही कर सकता है, शास्त्रीजी ने सॉनेट के काव्य-रूप के साथ यही किया है।"[1]

त्रिलोचन के सॉनेट - शिल्प का तुक विधान नाटकीय अभिव्यंजना शक्ति भी उजागर करने में समर्थ हुआ है। उनके द्वारा आयोजित तुक विधान से कविता में लय और संगीत मात्र नहीं, अर्थविशेष के गुंफन में भी सफलता मिली है।

"गायें बैठी हैं. यह, कुत्ता गुड़ीमुड़ी है,
जाग न जाय, न काटे तो अवश्य भूँकेगा.
अपनी सनक दूसरे कुत्तों में फूँकेगा.
मन को मोड़ा, देखा सिर पर सभा जुड़ी है
तारों की, सन्नाटा है, अफ़वाह उड़ी है
क्या कोई क्या कोई अभी ज्ञान बूँकेगा "[2]

(रात में)

स्पष्ट है कि इस सॉनेट में प्रयुक्त भूँकेगा, फूँकेगा, बूँकेगा ये शब्द तुकों की भरती मात्र नहीं करते, विशेष भाव का गुंफन भी करते हैं। यह तथ्य इस ओर इशारा करता है कि त्रिलोचन का शिल्प काव्य की बहिरंग-भंगिमा बढाने की औपचारिकता मात्र नहीं, अन्तरंग-सौन्दर्य-बर्द्धन का उपादान भी है। 'ज्ञान फूँकना' और 'कुत्ते का भूँकना' का साथ आना तीखे व्यंग्य का सन्दर्भ प्रस्तुत करता है।

---

1. स्थापना - 8 - पृष्ठ 34. कपिलमुनि तिवारी .
2. दिगन्त - पृष्ठ 42 त्रिलोचन

तुकांत शब्दों की आयोजना से सॉनेट के नियमों की पूर्ति मात्र त्रिलोचन का उद्देश्य न रहा। यह मामूली कवियों के लिये भी संभव है। इससे बढ़कर अर्थ-संगिमा की सृष्टि करके त्रिलोचन ने अपनी रचना-चातुरी और प्रतिभा का परिचय दिया है। यह तुकांत शब्दों के आयोजन तक सीमित नहीं है। पदान्तरिक तुकों के गठन में इसे देखा जा सकता है। पदान्तरिक तुकों के कारण भी त्रिलोचन के अनुप्रासित सॉनेटों की अभिव्यंजना अधिक प्रभावपूर्ण हो गयी है।

"नया वर्ष आया है, माथे पर रोली की
झलक लगाये, अंगों में रंगों की
छाई है. अमराई में नूतन ढंगों की
सिन्दूरी, केसरिया मन्जरियाँ टोली की
छटा बढ़ाती हैं, बहार पिक की बोली की
सभी गानवालों के पग में नव भंगों की
पैड़ी अलख डाल जाती है. इन संगों की
स्मृति उतनी सुखकर है जितनी हमजोली की."[1]

तुकान्त पदों की अन्विति से काव्य-सौन्दर्य भी उत्कृष्ट हो गया है। इसके अलावा, दूसरी और तीसरी पद-पंक्तियों में क्रम से अंगों और रंगों का एवं "छाई" और "अमराई" का तुक विधान कविता की संगीतात्मकता की वृद्धि करने में सफल हुआ है।

त्रिलोचन के सॉनेटों में एक खास प्रकार का तनाव बना रहता है जो छान्दिक और व्याकरणिक इकाइयों के बीच के खिंचाव से पैदा होता है। सॉनेटों की पदपंक्ति के अंत में तुक का विधान पंक्ति का अन्त तो सूचित करता है, साथ ही साथ लय में विराम का आभास भी पैदा करता है।

---

1. दिगन्त – पृष्ठ 38. त्रिलोचन

लेकिन यह छान्दिक इकाई मात्र है, व्याकरणिक इकाई के अधूरे रहने से अर्थ के प्रवाह की पूर्ति के लिये अगली पदपंक्ति की ओर अलग प्रयास करना पड़ता है। एक ओर छान्दिक अनुशासन की पूर्ति और दूसरी ओर अर्थ को पूर्ण करने का प्रयास दोनों के खिंचाव से कविता में एक अपूर्व सौन्दर्यानुभूति होती है।

"भौजी नई नई आई थी. मैं छोटा था.
        झेंपू था. मिलने-जुलने में सिकुड़ा सिकुड़ा
रहता था. समान वयवालों से मोटा था
        पर फुर्ती थी. पीछा करने पर उड़ा उड़ा

यहाँ वहाँ फिरता था. कभी पकड़ में आता
        नहीं. खड़ा था, और अचानक मुझे आ-लिया,
हाथ-पाँव फेंके पर छूट कहाँ से पाता
        लगी गुदगुदाने मन का संकोच धो दिया."[1]

(भौजी)

इन चतुष्पदियों की प्रत्येक पंक्ति चौबीस मात्राओं की है। प्रथम चतुष्पदी की प्रथम पंक्ति में दो पूर्ण वाक्य हैं - लेकिन बाकी तीनों पंक्तियाँ व्याकरण की दृष्टि से अपूर्ण इकाइयाँ हैं। चारों पंक्तियाँ छन्द की दृष्टि से पूर्ण इकाइयाँ हैं। पहली चतुष्पदी की चौथी पंक्ति अर्थ की पूर्णता के लिये दूसरी चतुष्पदी की पहली पंक्ति का अंग तो बन जाती है, पर छन्द की दृष्टि से पहली चतुष्पदी का अंग ही बना रहता है। व्याकरणिक दृष्टि से यह अपूर्णता और उसकी पूर्णता के लिये प्रयास सॉनेट में तनाव बनाये रखता है। इसमें पहली चतुष्पदी की चौथी पंक्ति का

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 29. त्रिलोचन

"उठा-उठा- विराम का आभास देता है। लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से अपूर्ण है। इससे सॉनेटों में अर्थ और लय का पारस्परिक संबंध बना रहता है। यही त्रिलोचनी सॉनेटों की विशेषता है।

सॉनेट के गठन से अनुशासन

यूरोपीय भाषाओं में प्रयुक्त काव्य-रूपों में सॉनेट अपने कड़े छान्दिक नियमों के कारण बहुत ही अनुशासित कहा जा सकता है। उसके जटिल तुक विधान और पाँच चरणों में विभक्त दस अक्षरों की चौदह पदपंक्तियों का ढाँचा उसके एकदम अनुशासित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। त्रिलोचन ने इस विदेशीय काव्य-रूप को हिन्दी के एक और छन्द-रोला - से और भी अनुशासित किया। रोला चौबीस मात्राओं का एक मात्रिक छन्द है - "इसके प्रत्येक चरण में 11, 13 के विश्राम से 24 मात्रायें होती हैं - प्राय: इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं। पर अंत में चार लघु या भगण या सगण भी मिलते हैं।"[1] रोला के ऊपर एक और नियंत्रण लाकर कवि उसके मात्रिक अनुशासन और आन्तरिक लय को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसकी सहज गेयता को भंग कर देते हैं। परिणामस्वरूप, इसे रोला की सहज धुन में गाया नहीं जा सकता। त्रिलोचन की कविता वाक्यों से बनती है जो एक नहीं, दो या तीन पंक्तियों में जाकर खतम होते हैं। छन्द के अनुशासन में पंक्तियाँ तो रह जाती हैं और साथ साथ तुक विधान भी अक्षुण्ण रह जाता है। लेकिन प्रत्येक पंक्ति के अंत में व्याकरणिक रूप से वाक्य का अन्त न होने के कारण अगली पंक्ति की ओर पाठकों को ध्यान देना पड़ता है। इस प्रकार यह द्विमुख प्रक्रिया चलती रहती है कि काव्य वस्तु को छन्द में ढालने के साथ साथ छन्द को वस्तु के अनुरूप ढालने का भी काम। वास्तव में त्रिलोचन के सॉनेटों में अनुशासन पर अनुशासन रहता है। प्रस्तुत काव्य रूप में एकान्विति तो मुख्य विशेषता है। रूप और भाव को एकात्मक बनाने का

---

1. काव्यांगकौमुदी-(तृतीय कला) विश्वनाथप्रसाद मिश्र - 1966, पृष्ठ 248.

इतना जटिल प्रयास त्रिलोचन के ही बूते की बात कही जाती है। भले ही त्रिलोचन के कुछ सॉनेट इस सायास प्रयास से उत्पन्न तनाव और खिंचाव का प्रमाण देते हैं, फिर भी इसे कवि की अपूर्व सफलता और शिल्प - गरिमा कही जायेगी। सॉनेट के विशेष अनुशासन ने ही त्रिलोचन को उस ओर आकर्षित किया होगा। "आवेगों की अभिव्यक्ति का संयमित ढंग और स्वर की तटस्थतावाली अपनी काव्य मानसिकता के कारण ही सॉनेट-जैसे विदेशी काव्य रूप ने त्रिलोचन जैसे ठेठ भारतीय किसानी - मनके कवि को आकर्षित किया होगा।"[1]

सॉनेट के इतने कडे अनुशासन का निर्वाह करने के लिये त्रिलोचन को इतनी शक्ति का उपयोग करनापडा कि इसे शक्ति का अपव्यय कहने को भी आलोचक तैयार हो जाते हैं। "24 पंक्तियों और तुकों के बँधे ढाँचे के भीतर अधुनातन भावनाओं की अभिव्यक्ति साधारण सफलता नहीं है। यद्यपि इसे मैं सामर्थ्य की अपव्ययता कहूँगा, जहाँ किसी एक काव्यरूप के प्रति इतना अधिक दुराग्रह हो जाए"।[2] हिन्दी की आन्तरिक प्रकृति और लयात्मक रूप को समझकर ही त्रिलोचन ने "सॉनेट" रचना के लिये रोला छन्द को चुना था और इस पाश्चात्य काव्य रूप को उन्होंने हिन्दी के ठेठ जातीय रूप में ढाल दिया।

त्रिलोचन के सॉनेटों की शिल्पगत विशेषता के कारण चन्द्रबली सिंह ने कहा है - "त्रिलोचन के सॉनेटों का संगीत बाँसुरी या जलतरंग का संगीत नहीं, बल्कि वीणा का है, जिसके माधुर्य में भी ओजभरी टंकार है, जिसमें स्वरों की गूँजें एक दूसरे से टकराकर और फिर एक होकर वितान सी तन जाती हैं।"[3]

---

1. आलोचना - 56-57 - जनवरी-मार्च 1981, पृष्ठ 71-72. राजेशजोशी.
2. रचना और आलोचना - देवीशंकर अवस्थी. पृष्ठ 73.
3. समालोचक - मई 1958, चन्द्रबली सिंह पृष्ठ 29 .

हिन्दी में त्रिलोचन ही एकमात्र कवि हैं जिनके नाम के साथ एक काव्य रूप का इतना घनिष्ठ संबंध है और वे उसे लगातार बरताने का कार्य करते रहते हैं।

अन्य भाषा छन्द की दिशा में त्रिलोचन की अवधी भाषा की उपलब्धि भी उल्लेखनीय है। उन्होंने "अवधी" में "अमोला" की रचना की है जिसमें 2700 बरवै छन्द संकलित हैं। यह भी त्रिलोचन की काव्य सृजन की भूमिका का दिशानिर्देश करता है। इस सिलसिले में वाचस्पति उपाध्याय का कथन है – "अवधी भाषी न होते हुए भी मुझे तो पूरी पांडुलिपि पढ जाने पर अनेक छन्दों में कबीर का जोगियाना, जायसी का सूफियाना और मिर्जा गालिब का खास दीवाना अंदाज दीख पड़ा है। अनेक छंद आज की गँवई ज़िन्दगी की आधुनिक तल्खी को भी मुखर करता है – भाषा का टटकापन तो बेमिसाल है।"[1]

गीत-काव्य

अंग्रेज़ी में जिसे लिरिक (Lyric) कहते हैं उसे हिन्दी में सामान्य रूप से गेय मुक्तक कहा जाता है। इसी के अन्तरगत प्रगीत काव्य, गीत काव्य या गीति-काव्य आते हैं। "लिरिक शब्द का संबंध वीणा की भांति लिरिक नामक वाद्य-यंत्र से है।"[2] वाद्य-यंत्र से संबंध होने के कारण उसे काव्य-रूप का गेयता से स्पष्ट संबंध दृष्टिगत होता है। अंग्रेज़ी में दी गयी परिभाषा के अनुसार, "प्रगीत काव्य या लिरिक "लयर" (Lyre) नामक वाद्य-यंत्र सेगायी जाने वाली वह काव्य-विधा है जो स्वतःस्फूर्त

---

1. स्थापना – 6 – पृष्ठ 18. वाचस्पति उपाध्याय
2. काव्य के रूप – गुलाब राय –पृष्ठ 113.

भावावेग का गीतात्मक रूप है।"[1] वास्तव में, गीतकाव्य भावातिरेक का संगीतात्मक काव्यरूप है। इसके शिल्पगत तत्व "संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरल प्रवाहमयी कोमल कान्तपदावली, निजी रागात्मकता जो प्रायः आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है संक्षिप्तता और भाव की एकता, यह काव्य अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अन्तःप्रेरित होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।"[2]

छायावादी युग गीत काव्यों का उत्कर्षकाल रहा। छायावादी गीत-काव्य धारा के कवियों से इतर कवियों का एक ऐसा भी वर्ग था जो साहित्यिक चेतना के साथ साथ तीव्र राजनीतिक एवं प्रगतिशील चेतना से प्रेरित होकर गीत-रचना में लगे थे। इनमें- "नागार्जुन, रांगेय राघव, रामविलासशर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री आदि का नाम उल्लेखित है।"[3] इनके रचित प्रगीतों के रचना - विधान की अपनी अलग पहचान है। "प्रगतिवाद के प्रगीतों में जहाँ एक और परंपरागत काव्य रूप मुखरित हुआ है वहाँ दूसरी ओर इनके गीतों का

---

1. (a) Lyric poetry, as the name implies (Lyre song poetry) is poetry originally intended to be accompanied by the lyre or by some other instrument of music. The term has come to signify any outburst in song which is composed under a strong impulse of emotion or inspiration. (Judgement in Literature - p.97 - काव्य के रूप - पृष्ठ 114. गुलाबराय.

(b) (i) A short poem intended for singing, usually to the accompaniment of a lyre or other instruments (ii) A short poem expression personal feeling (Cassell's encycolopedia of literature, p.354)

(c) (i) A poem having the form and musical quality of a song (ii) A short subjective poem with a song like outburst of thoughts and feelings. Dictionary of literary terms, Harry Shaw, p.227.

2. काव्य के रूप - गुलाबराय - पृष्ठ 115.

3. छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य - डा. सुरेश गौतम - 1985, पृष्ठ 119.

T ... ध्यान ... नि और आकर्षक - - - ओक - ... ए यथा ... का-गी ... ना ...।

गीतकारों में त्रिलोचन अलग खड़े हैं। उन्होंने शिल्प शैली तथा विषयवस्तु में अपने ढंग के जो ... सम्पूर्ण परिवर्तन किये ... उन्हें हिन्दी गीत-धारा में उल्लेखनीय ... उपलब्धियाँ प्राप्त हैं। इसी गीत काव्यधारा के अंतर्गत उनकी गज़लें, रुबाइयाँ और सॉनेट आते हैं जिनकी चर्चा हो चुकी

मुक्तिबोध के अनुसार त्रिलोचन में संघर्ष के प्रति बलवती आस्था है। इसी के कारण उनमें - वस्तून्मुखता, बुद्धिपरता एवं तटस्थता आयी है, यही उनके टेक्नीक का आधार बन जाती है। इसी टेक्नीक के कारण त्रिलोचन का उद्बोधनात्मक काव्य भी गीतात्मक हो गया है। त्रिलोचन जी "धरती" संग्रह के बहुत से गीतों में "संघर्षशील कवि के विपरीत अत्यंत गीतात्मक काव्य के रचयिता के रूप में आता है।" "प्राच्य क्लासिकल स्पिरिट और पाश्चात्य प्रोग्रे. टेक्नीक का समन्वय बुद्धि द्वारा अनुशासित गीतात्मक भाव उनके मनोवैज्ञानिक काव्य के कारणभूत तत्व हैं" -[2] इसलिए उनके गीतों में काव्य सौन्दर्य सर्वत्र निखर उठा है।

"पाता हूँ
जय
पराजय की कल्पना से
होता है भय
पाता हूँ जय

---

1. छायावादोत्तर हिन्दी गीति काव्य - डा. सुरेश गौतम - 1985, पृष्ठ 132.
2. मुक्तिबोध रचनावली - 5 - मुक्तिबोध - पृष्ठ 384, 379

मुझे अभी रूप की तृषा है
अभी रंग चाहिए
अभी मुझे
आँखों का अर्थ जान पड़ता है
अभी कहाँ मुझे शान्ति मिली"[1]

और -

अन्धावृत्त लूकी सा
मैं उस अन्धकार में
पड़ा हुआ हूँ
अपनी चेतनता की ज्वाला में
परिसीमित

उठ कर

अन्धकार में देख रहा हूँ
जीवन की बनती रेखाएँ
आयें बाधाएँ सब आयें
पर न मिटेंगी किसी काल में
ये बनने वाली रेखाएँ "[2]

त्रिलोचन ने प्रणय परक, सामाजिक यथार्थपरक प्रगीतों के अलावा कई प्रबोध परक गीत भी लिखे हैं। उनमें उन्होंने सरल, सहज एवं गत्यात्मक, अभिधात्मक भाषा का प्रयोग किया है। गीतों में छायावादी शब्दावली से लेकर आँचलिक शब्दों तक का प्रयोग उन्होंने किया है।

---

1. "धरती" - पृष्ठ 53 त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 90-91

लोकगीत की शैली का भी उपयोग उन्होंने स्थान स्थान पर किया है। कवि के गीत की शिल्प के संबंध में कहा जाता है कि "शब्द प्रयोग के प्रति कवि का आग्रह नहीं है बल्कि भावाभिव्यक्ति की अनिवार्यता ही प्रधान है।"[1]

लंबी कवितायें

"कुंकुम", - "नगई महरा," "चित्रा" "जामगोरकर", "डोलू" आदि त्रिलोचन की लंबी कवितायें हैं जो "ताप के ताए हुए दिन" में संकलित हैं। लंबी कविता ऐसा काव्य-रूप है जिसके द्वारा कवि यथार्थ की इकाई को कम शिल्पगत बन्ध और अवरोध के साथ अभिव्यक्ति दे सकते हैं। "लंबी कवितायें युगीन पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित नवीन और अनिवार्य काव्य माध्यम है जिसके द्वारा कवि सहज रूप में संपूर्ण तनाव, और जटिलताओं को अभिव्यक्ति देता है।"[2] आधुनिक जीवन की उलझी हुई परिस्थितियों और जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में परंपरागत क्लासिकल काव्यरूप अपर्याप्त साबित हुए तो ऐसे काव्य रूपों की तलाश होने लगी जो नये जीवनसत्यों के साक्षात्कार की क्षमता रखते हों। इस सिलसिले में लंबी कविता एक सुगठित और सूक्ष्म काव्य रूप के रूप में सामने आया। "कविकर्म की नई धारणा के परिणामस्वरूप तथा परिस्थिति और कवि मन के एक साथ क्रियात्मक हो उठने और क्रिया - प्रतिक्रिया में नियोजित हो जाने से लंबी कविता के रूपात्मक अन्वेषण तथा रचनात्मक प्रतिफलन में मदद मिली। आधुनिक स्थितियों को देखते हुए लंबी कविता इस अर्थ में एक काव्यगत अनिवार्यता सिद्ध हुई।"[3]

---

1. छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत - विनोद गोदरे - 1975, पृष्ठ 65.
2. हिन्दी कविता में लंबी कविता - डा. कमलेश्वर प्रसाद - 1986, पृष्ठ 68.
3. लंबी कविताओं का रचना विधान - नरेन्द्र मोहन - 1977, पृष्ठ 1, 2.

लंबी कविताओं की रचना-पद्धति का प्रश्न उनकी अन्विति के स्वरूप से जुड़ा है। इनमें अनेक कथात्मक अंशों और प्रसंगों के विशृंखल रूपों में आन्तरिक अन्विति के सर्जनात्मक सूत्र विद्यमान रहते हैं। लंबी कविताओं में प्रस्तुत अन्विति को अनिवार्य शर्त के रूप में माना जा सकता है। इसमें अन्विति के दो प्रकार - बिंबात्मक और विचारात्मक पाये जाते हैं। "पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण, सन्दर्भ और प्रसंग केन्द्रीय बिंब द्वारा संतुलित रहते हैं तो दूसरे प्रकार की अन्विति में क्रियाओं, विचार सूत्रों से जुड़े बिंबों का अनवरत क्रम।"[1] बिंब और विचार का तनाव लंबी कविता की संरचना का मूलभूत आधार है। लंबी कविता के रचनाविधान के अनिवार्य लक्षण के रूप में नाटकीयता को लिया जाना चाहिए। इसका एक विधायक अन्तवर्ती पहलू भी है जिसे सर्जनात्मक तनाव कहा जा सकता है।

त्रिलोचन की "नगई-महरा", "चित्रा जांबोरकर", "छोटू" आदि कविताओं में बिंबात्मक अन्विति का विधान हुआ है और "... तुम" में वैचारिक अन्विति का आयोजन किया गया है।

"नगई महरा" में नाटकीयता का अपूर्व विधान हुआ है, जिसका एक दृश्य बहुआयामी चलचित्र जैसा लगता है -

"उस दिन बड़ी भीड़ थी
बड़े बड़े चूल्हे जगाए गए
जिन पर हण्डे कड़ाह चढ़े थे
कहीं भात कहीं दाल और कहीं
तरकारी पकती थी

---

1. लंबी कविताओं का रचना-विधान - सुरेन्द्र मोहन - 1977, पृष्ठ 3.

दोनों पत्ताल पहले से बना कर
छिपाने से रखे थे

कई बार आ जा कर
रंग वहाँ का देखा
जो भी मिला काम से लगा मिला"[1]

(नगई महरा)

इस में कवि ने लयबद्ध गद्यात्मक शैली, कथा-कथन शैली को अपनाकर नयी तकनीक का निखार दिखा दिया है और नाटकीयता का विधान भी कर दिया है। त्रिलोचन जीवन की समग्रता में विश्वास रखने वाले हैं। सृष्टि के सभी अंगों से पूर्ण समग्र जीवन के सौन्दर्य को देखने की उनकी दृष्टि ही -"मैं तुम" की लंबी कविता में स्पष्ट हुई है। नर-नारियों से बने मानव समाज, वर्ग, देश को रक्षा चाहनेवाली वनस्पतियाँ, चिड़ियाँ और जीवन-जन्तु सब उनके सहयात्री है, इनकी रक्षा में मानवता की रक्षा है, इन सब के पूर्ण समग्रजीवन में विघटन और फूटन न होने पावे, यही कवि का अभिमत है।

"दिन-रात प्रातः सन्ध्या कितने अलग अलग रूपों में
आते हैं कोई इन्हें देखे या अनदेखे कर जाय,
इनकी आपत्ति का पता नहीं चलता
मानव का सारा सौन्दर्य-बोध जब विकास करता है
तब इनका अपना क्या योगदान रहता है
आँखें ही इसे देख सकती हैं
मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हूँ

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 74. त्रिलोचन

जैसे मैं समुद्र नहीं ... पाता
बूँद जानते हो जो अखंड का ... क्या"[1]

(मैं तुम)

कवि उसकी एकता और समग्रता के —

सबके साथ आज ... हूँ
मैं सब का अपना हूँ सब मेरे अपने हैं
मुझे अखंड शान्त में देखो
मैं कहाँ हूँ"[2]

(मैं तुम)

इसी वैचारिक अन्विति का सफल गुंफन "मैं-तुम" नामी कविता में हुआ है। विशेष बात है कि इसके वैचारिक अन्वयन में सपाटता खटकती नहीं है।

क्षणिकायें

त्रिलोचन ने जीवन के छोटे-छोटे चित्रों को क्षणिकाओं में भी बाँधा है जो बहुधः तीन पंक्तियों की होती हैं जो भाव की दृष्टि से भरी-पूरी लगती हैं। कवि ने अपने आसपास की उन बिन्दुओं को क्षणिकाओं का रूप दिया है जो जीवन्त है और जिनमें जीवन दिखता है। ये बिन्दुएँ अतिपरिचित और साधारण हुआ करती हैं।

"आँख मूँदे, पेट पर सिर टेक
गाय करती है पगौनी बँधी जड़ से
पेड़ की छाया खड़ी दीवार पर है"[3]

(गाय करती है पगौनी)

---

1. ताप के तापे हुए दिन - पृष्ठ 62. त्रिलोचन
2. वही - पृष्ठ 63.
3. अरघान - पृष्ठ 25. त्रिलोचन

और

"रोने कुदकते हैं
जाड़े की धूप की जापन के खेल से
आँक आँक देते हैं"[1]

(जीवन का खेल)

सौन्दर्य शीर्षक क्षणिका में वे सौन्दर्य की व्याख्या करते हैं –

"मैं
तुम्हें निहारते
अघाता नहीं"[2]

(सौंदर्य)

"अरधान" में 12 क्षणिकायें संकलित हैं और "चैती" में 15। "चैती" की क्षणिकायें चार पंक्तियों की हैं। अनुभव की भट्ठी में जले जीवन – तत्वों के आधार पर ही ये क्षणिकायें बनी हैं। ये संस्कृत छन्द में रचित चार चरणों के श्लोक ही माने जा सकते हैं। समय-तार से निकले स्वर की अनश्वरता पर कवि की दृष्टि पड़ती है तो उन्होंने श्लोक में इसे बाँध लिया है।

"स्वर व्यतीत कदापि नहीं हुए
समय-तार बजा कर जो जगे,
रँग गई धरती अनुराग से,
गगन में नव गुंजन छा गया."[3]

(स्वर)

---

1. अरधान – पृष्ठ 25. त्रिलोचन
2. वही – पृष्ठ वही.
3. चैती – पृष्ठ 31. त्रिलोचन

प्रकृति की छवि के कोणों का चित्रण भी –

"नव वसंत खिला जब भाग्य सा,
भुवन में तब जीवन आ गया,
गगन ने उस को अपनाया से,
अतुल गौरव से, अपना किया."[1]

(वसंत)

क्षणिक भावों एवं लघु तरंगों को क्षणिकाओं में बाँध कर स्थायी प्रभाव सृष्टि करने में त्रिलोचन की क्षमता सराहनीय है।

त्रिलोचन की काव्यभाषा

काव्य की शिल्पविधि के अंगों में काव्य भाषा का ज़्यादा महत्व है क्योंकि वह काव्यका मात्र बर्हिसाध्य स्वरूप ही नहीं बल्कि ऐसा माध्यम भी है जिसके द्वारा काव्यके अन्तर्साक्ष्य के कारणभूत उस जीवन परिवेश तक जाया जा सकता है जहाँ से काव्य की आत्मा उभर आती है। इसलिये कहा जाता है कि काव्य भाषा ही काव्य है और काव्य ही काव्य भाषा है। "काव्यभाषा के साथ काव्य का संपूर्ण अध्ययन जुड़ा हुआ है, काव्य का सच्चा अध्ययन उसकी भाषा का अध्ययन है।"[2]

काव्य की भाषिक संरचना का विश्लेषण करने से पता चलेगा कि उस का रंग-रूप क्या है और कवि की अनुभूति, रुचि और सोच क्या और कैसी है। अतः भाषिक संरचना के अध्ययन और विवेचन से कवि व्यक्तित्व के ढँके पहलुओं का पर्दा खुल जाता है। "कवि की अनुभूति तक पहुँचने का और कोई माध्यम हमारे पास नहीं है, केवल उसकी भाषा तथा शब्दों के

---

1. वसंत – पृष्ठ 34. त्रिलोचन
2. काव्यभाषा – डा. सियाराम तिवारी – 1976, प्रस्तावना –पृष्ठ 9.

विविध विज्ञान ही में इस काम में सहायता पहुँचा सकते हैं।"[1] कवि के व्यक्तित्व के अनुरूप ही काव्यभाषा भी बनती है। इसलिये काव्य भाषा से कवि के व्यक्तित्व और उसके जीवन परिवेश का पता लगा सकते हैं। "काव्यभाषा का कवि के व्यक्तित्व से बहुत गहरा संबंध होता है। यह कवि के व्यक्तित्व और भाव के अनुरूप, उसकी इच्छा और मनोबल के अनुरूप बदलती रहती हैं।"[2] काव्य भाषा के माध्यम से व्यक्त ऊर्जा और शक्ति से काव्य की गरिमा का मूल्यांकन होता है। इसलिये समर्थ कवि भाषा के उस रूप से वास्ता रखते हैं जिससे काव्य की आत्मा और ऊर्जा अपने जीवन परिवेश से चेतना प्राप्त कर काव्य विशेष को उत्कृष्ट कोटि में पहुँचा देती है। स्वयं कवि त्रिलोचन के अनुसार, "भाषा विज्ञानी, भाषाओं का अध्ययन भाषिक संरचना की दृष्टि से करता है और कवि या लेखक भाषाओं के माध्यम से व्यक्त ऊर्जा की दृष्टि से करता है। इसका य मतलब नहीं कि सभी रचनाकार ऐसा करते हैं। लेकिन जितने रचनाकार ऐसा कर पाते हैं उनकी रचना में विशेष तत्व आ मिलता है अर्थात् विशिष्ट होते हैं। मैंने जो भी भाषा सीखी, इसी दृष्टि से और मैं मानता हूँ मनुष्य की सीमा भी होती है, काल की, शक्ति की।"[3] स्पष्ट है कि त्रिलोचन भाषा को ऐसा माध्यम समझते है जो काव्य की ऊर्जा और आत्मा को झलका देती है।

"शब्द" काव्य भाषा की इकाई है। कवि की शक्ति का परिचय उसके शब्दों के चयन और उपयोग के ढंग को देखकर पाया जाता है। शब्द-भंडार कवि की शक्ति का निर्णायक नहीं हैं। लेकिन शब्द का उपयोग इसकी

---

1. सम्मेलन पत्रिका - श्यामसुन्दरदास विशेषांक - 28-12-1978, पृष्ठ 61. कविता की भाषिक संरचना और मुक्तिबोध काव्य - डा. रमेश तिवारी.
2. नये साहित्य का तर्क शास्त्र विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - 1975, पृष्ठ 151.
3. परिप्रश्न - त्रिलोचन - 1985, पृष्ठ 53. (सं. अश्विनी)

घोषणा करता है कि इसका प्रयोक्ता कवि कितना शक्तिशाली है। "शब्दावली के प्रयोग की विशिष्टता ही कवियों को महत्तम बनाती है।"[1] त्रिलोचन जीवित भाषा से संबंध रखते हैं। स्वयं कवि के शब्दों में "कवि भाव का समृद्धि जन-जीवन के बीच से ही पाता है। वहीं से वह जीवन की भाषा भी लेता है। जीवंत भाषा किताबों में नहीं आती। तभी अपनी कविता में ताज़गी आएगी जनता से मिलेंगे तभी भाषा की वास्तविक पहचान होगी।"[2] जनभाषा को काव्यभाषा बनाने की प्रवृत्ति आज कविता में दिखाई पड़ती है। यह भी जीवनयथार्थ को सीधे काव्यभाषा के द्वारा कविता में लाने के प्रयास का परिणाम है। "भाषा का स्रोत यह चारों ओर फैला जनसमूह ही है जहाँ अनुभूतियाँ पैदा होती हैं और भाषा की शक्ल में ढलती है। सही भाषा की तलाशके लिये रचनाकार को अपने चारों ओर की दुनिया और अपने भीतर की दुनिया को बहुत सचेत होकर सूक्ष्मदृष्टि से देखना होगा और उस ज़िन्दगी का सीधा साक्षात्कार करना होगा जिसका चित्रण वह करना चाहता है।"[3] त्रिलोचन भाषा की लहरों में जीवन को उछल पाते हैं, जीवन क्रियाओं को ध्वनियों में प्राप्त करते हैं। वे मानव-जीवन को माया भाषा में ही देखते हैं - स्वयं कवि के शब्दों में -

"भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन
मैंने किया। मुझे मानव-जीवन की माया
सदा मुग्ध करती है,
सब कुछ पाया
शब्दों में, देखा सब कुछ ध्वनि-रूप हो गया.

---

1. काव्यभाषा : डा. सियाराम तिवारी - पृष्ठ 52.
2. आजकल - अप्रैल - 1982, पृष्ठ 4-5. त्रिलोचन - दिविक रमेश कोभेंटवार्ता
3. नये साहित्य का तर्कशास्त्र - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 1975, पृष्ठ 155.

कुछ सच कुछ सच कुछ सच कुछ सब कुछ भाषा.
भाषा की अंगुलि से मानव हृदय टो गया
कवि मानव का, जगा गया नूतन अभिलाषा.

भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है,
ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है." [1]

(भाषा की लहरें)

त्रिलोचन को इस बात की शिकायत है कि आज काव्यभाषा भी वस्तु सत्य के स्थान पर "नेताओं के कदम सिखाये पुराने, अनुकृति की लीक पर चलती है -

"कहाँ नहीं छाया है,
वस्तु सत्य किस जगह उभर कर आ पाया है.

यह युग, यह जीवन, यह आशा और निराशा
स्वयंस्फूर्त, क्या इस में कहीं नहीं है भाषा." [2]

जीवन स्वयं भाषा प्रदान करे, यही त्रिलोचन का मत है। कभी कभी भाषा छल जाय, भावमाला स्वयं चले। आखिर वही भाषा का रूप ढूँढती है।

त्रिलोचन की काव्यभाषा को एक समग्र इकाई के रूप में ही लिया जा सकता है। इसलिये उनकी कविता का अध्ययन और आस्वादन इसकी समग्रता में ही किया जा सकता है, न बिंबों के, न प्रतीकों के तौरपर। उनकी कविता में इन अंगों को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। कविता के प्रभाव पर ही मुख्यज़ोर दिया जाता है। फिर भी वे भाषा में क्रिया और उसकी गति पर बल देते दिखाई पडते हैं -

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 63. त्रिलोचन

"भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है,
ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है."[1]

ये पंक्तियाँ प्रमाण के रूप में ली जा सकती हैं। उनकी काव्य भाषा के शब्द ऐसे बने हैं कि इनसे बनी ध्वनियाँ भी काव्यार्थ में प्रभावशाली ध्वनि-चित्र जोड देती हैं और पूरी कविता को प्रभावपूर्ण बना देती हैं।

"इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सॉनेट सॉनेट सॉनेट सॉनेट क्या कर डाला"[2]

इसमें सॉनेट शब्द की बार बार आवृत्ति दौडनेवाले घोडे की टाप-जैसी, ध्वनि पैदा करती है। "भादों की रात" कविता में शब्द की नाद-योजना विशेष ध्यातव्य है, बिजली कौंधने, बादलों के गरजने और वर्षा के झमाके की ध्वनियों के शाब्दिक-रूप बहुत ही प्रभावशाली है और इसकी ध्वनि-शब्द योजना चित्रात्मकता में चार चाँद लगा देती हैं -

"भरी रात भादों की...पथ...लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आँखों में इतनी,
छाया चौंधा.
तड़ तड़ तड़त्तड़ाड़. धाड़.धा धाड़. धू.ड़. धू.ड़म्
फिर चमक, कड़ कड़ कड़क कड़ग्घम्.

रिमझिम रिमझिम-छक् छक् छक् छक्-सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक-धमाके घन के, उत्सव निशि भर."[3]

इस दृष्टि से त्रिलोचन की भाषा क्रिया और उसकी गति पर केन्द्रित मालूम पडती है।

---

1. दिगन्त - पृष्ठ 63. त्रिलोचन.
2. वही - पृष्ठ 7.
3. वही - पृष्ठ 28.

"केवल मेरे हिम का पिघला तुम पहुँचा था
बूँदों को छमकारें
ओलतियों को टप टप टपकारें
पानी का कल कल करते
बढ़ते ही जाना"[1]

यहाँ ये ध्वनि चित्र कविता के प्रभाव को बढ़ा देता है। "त्रिलोचन की काव्य भाषा के लिये हमें बार बार यह याद रखना होगा कि त्रिलोचन की भाषा में क्रिया और गति पर सबसे अधिक बल देते है।"[2]

कभी कभी कुछ शब्दों का प्रयोग वे ऐसे करते हैं कि उनसे उनकी शब्द शक्ति स्पष्ट होती है और जिनका गहरा प्रभाव भी बन पड़ता है -

"बिस्तरा है न चारपाई है
जिंदगी खूब हम ने पाई है
कर अँधेरे में जिस ने सर काटा,
नाम मत लो हमारा भाई है"[3]

इसमें "खूब" शब्द इसका स्पष्ट उदाहरण है।

त्रिलोचन की काव्य भाषा में उनका किसानी रूप उभर आता है। किसान के खुरदरे प्रकृति से लंबे संघर्ष से प्राप्त दृढ़, धैर्यनिष्ठ व्यक्तित्व का स्वरूप उनकी भाषा की मुख मुद्रा है। इसमें मानव- कर्म की प्रतिध्वनि मिलती है। "त्रिलोचन की मानसिकता का या उसके सामाजिक चिन्तन का सबसे स्वाभाविक रूप है उनकी भाषा। यह किसान के स्वभाव की, उसकी ही काठी की भाषा है।"[4]

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 18. त्रिलोचन.
2. इसलिए - अगस्त- 1977 - पृष्ठ 19 - भगवानसिंह
3. गुलाब और बुलबुल - पृष्ठ 28. त्रिलोचन.
4. "धरती" - 6 - पृष्ठ 54 - विष्णुचन्द्र शर्मा

"बैठ धूप में हरा मटर की घुँघनी खाना,
जाड़े का आनंद यही है रस गन्ने का
ताज़ा ताज़ा पीना, कोल्हाड़ों में जाना,
इन उन बातों से मन बहलाना, बचने का
भाव न मन में आने देना, आवाजाही
का तांता, रस का कड़ाह में पकना, झोंका
जाना गुलौर का, आलू ले कर मनचाही
संख्या में पकने के लिए पहुँचना, घोंका
किसी कमानी या पतली लकड़ी में, डाला
फिर कड़ाह में, कहो सुनो सानंद कहानी
"सीत बसंत" "संख राजा" की, मन में माला
नए नए स्वप्नों की, सुधि जानी-अनजानी,
ठाँव ठाँव का जीवन है कुछ नया, अनोखा,
कहीं सरल विश्वास है, कहीं केवल धोखा,"[1]

त्रिलोचन की किसान सुलभ दृष्टि का स्पष्ट प्रतिबिंब उनकी काव्य-भाषा में प्राप्त होता है।

"सॉनेट और त्रिलोचन दोनों की है एक।
कठिन प्रकार में बँधी सत्यसरलता।"[2]

(ऐसा ही प्रण)

यह "सॉनेट की ही नहीं, पूरी काव्य भाषा पर लागू मालूम होती है।

प्रस्तुत भाषा वर्गविभक्त, संगठित मेहनतकश किसान के परिवर्तन पर शंकालू स्वभाव की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। उनकी कृषि कला कोष से लिये गये शब्दों का उदाहरण प्रस्तुत है – विषदन्त, हडकम्प, रवाना,

---

1. उस जनपद का कवि हूँ – पृष्ठ 74. त्रिलोचन
2. शमशेर बहादुर सिंह – कुछ और कवितायें – स्थापना – 8 – पृष्ठ 24.

अन्होर, ओखा, रास-परोसा, कजर, भस्माभूत लूको ये ग्रंथों के नहीं, अवध के कृषक - जीवन से संपृक्त शब्द हैं। "उनकी भाषा भारत के किसान जीवन की विविध क्रियाओं, परिवेश और लोकोक्तियों से स्वरूप, ग्रहण करती है।"[1]

त्रिलोचन बातचीत बोली भाषा का कलात्मक ढंग से कविता में प्रयोग करते हैं। "उनकी कविता में एक ओर किसानों का बातूनीपन है तो दूसरे छोर पर बहुत सारी बात को कुछ शब्दों में, एक चुस्त-से वाक्य में या एक सूक्ति में समेट लेने की मितव्ययता भी। यह द्वैत वस्तुतः इस बात का प्रमाण है कि उनकी कविता का रचाव हिन्दी अंचल के किसान के चरित्र, आदतों और बोलचाल से कितने गहरे अर्थों में संपन्न हुआ है।"[2] मैं - तुम कविता में कवि ने स्पष्ट रूप से कहा भी है -

"मैं तुम से, तुम्हीं से, बात किया करता हूँ
और यह बात मेरी कविता है"[3]

त्रिलोचन ठेठ अवध अंचल के कवि हैं और उनकी काव्य भाषा में अवध बोली के शब्द काफ़ी मात्रा में मिलते हैं। वे हिन्दी में सभी उपभाषाओं, बोलियों और लोकभाषाओं के शब्द मिलाने के पक्ष में खड़े हैं। "जनभाषाओं को जनभाषा कहने में संकोच की गुंजाइश नहीं, "आधुनिक हिन्दी वह परिमार्जित भाषा है जिसमें सभी उपभाषाओं के प्रयोगों का अपने अनुशासन में समाहार है।"[4] त्रिलोचन का कथन उनकी जनभाषा और लोक भाषाओं के प्रति मनोवृत्ति पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डालता है। इतना ही नहीं, कवि काव्य भाषा के क्षेत्र विशेष और परिवेश के यथातथ्य होने में सहायक रहने में भी ज़ोर देते हैं।

---

1. जीवनसिंह - धरती - 4-5 - पृष्ठ 42.
2. राजेश जोशी - आलोचना - 56-57 - पृष्ठ 69.
3. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 61. त्रिलोचन.
4. त्रिलोचन - जन भाषा और काव्य भाषा - पूर्वग्रह - अंक 75 - पृष्ठ 23.

6

वे कहते हैं – "कविता द्वारा पेश किया गया चित्र या चरित्र जिस क्षेत्र या वर्ग का होगा यदि उसका यथातथ्य न हुआ तो कविता निराधार हो जायेगा ।"[1]

कविता में प्रयुक्त शब्दों का सामाजिक संदर्भ से संपृक्त होना भी कवि जरूरी मानते हैं। वे आगे कहते हैं – "शब्दों का व्याकरण से भी ऊपर सामाजिक संदर्भ होता है जिसका अनुसंधान हर रचनाकार को करनापडता है ।"[2] अभिव्यंजना में जन – संवेदना को संप्रेषित करने के प्रयास में त्रिलोचन ने देशी, लोक भाषाओं के अनेक शब्द अपनी काव्य भाषा में प्रयुक्त किये हैं, जैसे, डकार, अँजोरिया, नेक, भिखरिया, दन्दाया, छुट्टासाँड, बर्द, बधुआ, सारमी, दमपट्टी, गुर, ठुनका – ठुनकी, झेंपु, कनई, डगरा, डगराया, छूछो, अलाय बलाय, अडियल, राँधे, धाँधे, खुराई, ढब, लिसौंढे, ठेलम-ठेला, भूखे-दूखे, गुडी-मुडी, बूँकेगा, ढिकला, झिंगे, सिकला, अन्दोर, अर्तन-बर्तन, ररै, भेडियाधसान, झुराया, अंटी, छाया-धूमा, घिन, डाभा, सग्गड, पाकड, हड हड – भडभड, कौधा, चिल्ला, चीन्हा, बनई, उगरा, कूतना, तूँकना, गंगालो, आदि । वास्तव में त्रिलोचन शब्दों का प्रयोग मिट्टी और खाद की तरह करते हैं। इसमें कोई विशेष सायास प्रयत्न भी नहीं दिखता। यह इसका प्रमाण है कि कवि इनके रूप और भाव की खूब पहचान रखते हैं। केदारनाथ सिंह का कथन है कि "भाषा के प्रति त्रिलोचन एक बेहद सहज कवि हैं। "एक ऐसे कवि जो अपनी भाषा की समस्त गूँजों और अनुगूँजों को बखूबी जानते हैं वे ठेठ अवध के कवि हैं और फलत: अवधी बोली की सर्जनात्मक क्षमता से खडी बोली को अधिक आत्मीय और अधिक व्यंजनाक्षम बनाने के आग्रही कवि भी" ।[3]

---

1. पूर्वग्रह – अंक – 75 – पृष्ठ 24 .
   त्रिलोचन – जनभाषा और काव्य भाषा .
2. वही – पृष्ठ वही .
3. डा. केदारनाथसिंह – त्रिलोचन – प्रतिनिधि कवितायें .
   भूमिका – पृष्ठ 8.

त्रिलोचन बोली के शब्दों का चयन करते हैं, वैसे ही संस्कृत के प्रचार च्युत शब्दों को भी। जैसे, उन्नोनीषा, आच्छद, बलाकृष्ट, स्नस्चित, रिरक्षिषु, दौष्क, रोलंब, प्रस्थिति, प्लोषण, ग्लपन शमन, अनृतल्पंदी, एतिद्य, रोदषी, अनवधांगी, हृधा, अधिज्यकार, समाच्छन्न, वांत, पांसुल, मददाश्रय, रक्षणावेक्षण, आस्तम्भा, तोणस्त्रक, प्रत्यप, रोडरोड, अभ्रंकश, अपमडभो, सन्निकर्ष। इन शब्दों के प्रयोग में त्रिलोचन का उद्देश्य खडीबोली हिन्दी की भाषा-संपदा को बढाना ही मालूम पडता है। इस सिलसिले में हमें केदारनाथ सिंह से सहमत होना पडता है - वस्तुत: त्रिलोचन "हिन्दी" शब्द से जिस विपुल भाषिक संपदा का बोध होता है उसको संपूर्णता को अपनी रचना शीलता के विविध स्तरों पर पकडने और उद्‌घाटित करनेवाले कवि हैं - एक ऐसे कवि जिनके यहाँ भाषा की श्रेणियाँ नहीं बनायी जा सकती।"[1] त्रिलोचन ने तद्भव, तत्सम, देशी-बोली, लोकभाषा के शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि के साथ साथ संस्कृत के समासपदयुक्त प्रयोग [2] भी किये हैं - तमसाच्छन्न, क्षितिज, तरुश्रेणी, वरंबूटी, "सौरज धीरज जेहिरथ चाका", "हाय राजा मिलके बिछुड गयी अँखियाँ" जैसे उद्धरण भी वेकरते हैं। वे वहाँ से शब्द का चयन करते हैं जहाँ से मुहावरे और लोकोक्तियाँ उपजती है। त्रिलोचन उसे कविता नहीं मानते जो अपने क्षेत्र विशेष से संबंधित परिवेश का यथातथ चित्र प्रस्तुत नहीं करती हो -

"महल खड़ा करने की इच्छा है शब्दों का
जिसमें सब रह सकें रम सकें लेकिन साँचा
ईट बनाने का मिला नहीं है, शब्दों का
समय लग गया, केवल काम चलाऊ ढाँचा

---

1. प्रतिनिधि कवितायें - भूमिका - पृष्ठ 8. डा. केदारनाथ सिंह .
2. "सुविकसितांतिर्भाव, निपीतवारि वनराजी", सुदलच्छाय - लता, वीरुध तरुललिता" - शब्द - पृष्ठ 69.

किसी तरह तैयार किया है. सबको बोली-
ठोली लाग-लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा
भाव, आचरण, इंगित, विशेषता फिर भोली
भूली इच्छाएँ, इतिहास विश्व का बिखरा

हुआ रूप-सौन्दर्य भूमिका, स्वर की धारा
विविध तरंग-भंग भरती लहराती गाती
चिल्लाती, इठलाती फिर मनुष्य आवारा
गूढ़ी, असभ्य, सभ्य, शहराती या देहाती -

सबके लिए निमंत्रण है अपना जन जानें
और पधारें इसको अपना ही घर मानें."[1]

त्रिलोचन के द्वारा निर्मित शब्द मंडल का यह चित्र पूरा है और यही उनकी काव्य भाषा का सही चित्रण है। इसमें जनभाषा या लोकभाषा का स्पर्श भी है। इसमें किसी बोली या भाषा के शब्दों के प्रति परहेज़ नहीं। त्रिलोचन के काव्य भाषा-संबंधी सिद्धांत का स्वरूप यही है।

खड़ी बोली के गद्यमय रूप को पद्यलय तक उठाने का प्रयास त्रिलोचन ने किया है। उनकी कविता की भाषा गद्य और काव्य के संधिस्थल पर खड़ी दिखाई पड़ती है। इस गद्यमय लयबद्ध काव्य भाषा का रूप हमें "नगई महरा" में भी मिलता है जिसका गद्य लयबद्ध है। साथ ही साथ कविता को वाचिक - परंपरा तक ले जाता हुआ दिखाई पड़ता है। वहाँ भाषा का ठेठ रूप कलात्मक ढंग से कथा-कथन शैली में भी प्रयुक्त दृष्टिगत होता है। गद्यमय, लयबद्ध काव्य भाषा का, कथा-कथन शैली में प्रयुक्त होना खास रूप से उल्लेखनीय है -

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 51 त्रिलोचन

"गाँव वाले इधर उधर कहते थे
नगई
सामना हो जाने पर कहते थे
नगई भगत

नगई कहार था
अपना गाँव छोड़ कर
चिरानीपट्टी आ बसा
पूरब की ओर
जहाँ बाग या जंगल था
बाग में
पेड़ आम जामुन या चिलबिल के
जंगल में मकोय, हैंस, रिसवल की बँवर
झाड़ियाँ झरबेरी की
और कई जाति की
दैरे, कटार, ढाक, आछी,
बबूल और रेवाँ के
पेड़ भी जहाँ तहाँ खड़े थे"[1]

अवध-अंचल के चिरानीपट्टी गाँव की गँवई प्रकृति का जीवंत चित्र गद्यात्मक लयबद्ध काव्यभाषा में रूप प्राप्त करता हैं। "अवध के ग्रामीण इलाके के रीति-रिवाज़, वहाँ की प्रकृति और अवधी मिश्रित हिन्दी में उस सब की अभिव्यक्ति से कविता को नयी ज़मीन मिली है।"[2]

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 64. त्रिलोचन
2. प्रकाशन समाचार - दिसंबर 1986, पृष्ठ 11. डा. वाचस्पति

"त्रिलोचन कविताओं में अक्सर पूरे पूरे वाक्यों का उपयोग करते हैं, अनूठेढंगसे इस प्रकार गद्यात्मक संरचना का कविता में सक्षम उपयोग करनेवाले शायद वे अकेले हैं। इन वाक्य-पंक्तियों का भी गठन प्रयोजन भरा है। एक एक आशय, दृश्य धारणा, क्रिया, भंगिमा के लिए एक एक पंक्ति"[1]

"मैं बाहर निकला तो सोचता हुआ निकला
आज हुआ वह केवल आज ही हुआ है"[2]
अर्थ बहुत बाद में कुछ कुछ पाया
धारणा बेकार बोझ ढोना ही नहीं है"[3]

त्रिलोचन की काव्यभाषा में एक तरह की "सपाटता" बनी रहती है। भावों के उतार-चढाव के अनुसार भाषा में कोई परिवर्तन नहीं दीखता। भावों के चढाव या भावों की तीव्रता के अवसर पर भी काव्य-भाषा में वैसी तटस्थता बनी रहती है जैसे शुरू की पंक्तियों में मौजूद थी - उदाहरण के लिए "नदी कामधेनु" कविता लीजा सकती है -

"नदी ने कहा था मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
तैर कर धारा को पार किया.

नदी ने कहा था मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
सपरिवार धारा को
नाव से पार किया.

---

1. सोमदत्त - पूर्वग्रह - 63-64 - पृष्ठ 94.
2. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 71।
3. वही - पृष्ठ 73.

नदी ने कहा था मुझे बांधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है

अब वह कामधेनु है. "[1]

कविता की अंतिम पंक्ति तक आते - आते मनुष्य की विकास-यात्रा के भी एक महत्वपूर्ण परिणति तक पहुँचने की अवस्था में भी भाषा का "सुर" पहले जैसा ही रहता है।

देशी-बोली के लोक भाषा शब्दों के प्रयोग से उनकी काव्य भाषा ताज़गी और कलात्मकता से संपन्न हो गयी है। त्रिलोचन की लोकभाषा से काव्य भाषा में ताज़गी और कलात्मकता का उत्कर्ष इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

"सोसती सिरी सर्ब उपमा जोग बाबू रामदास को
लिखा गनेसदास का राम राम बाँचना. छोटे बड़े का सलाम
असिरबाद जथा उचित पहुँचे. आगे
यहाँ कुसल है, तुम्हारी कुसल काली जी से
रात दिन मनाती हूँ.

वह जो अमोला तुम ने धरा था द्वार पर,
अब बड़ा हो गया है. खूब घनी
छाया है. मौरों की बहार है. सुकाल
ऐसा ही रहा तो फल अच्छे आएँगे.

---

1. ताप के ताए हुए दिन - पृष्ठ 13. त्रिलोचन

और वह बछिया मेरा भी है. यहाँ
जो तुम होते. देखो कब ब्याती
है. रज्जो कहती है बछड़ा ही वह
ब्याएगी, मेरा कहना है बछिया ही वह
ब्याएगी, देखो क्या होता है. पाँच
पाँच रुपए की बाजी है. देखें कौन
जीतता है."[1]

(परदेसी के नाम पत्र)

सहज-सरल, गत्यात्मक, अभिधात्मक भाषा और सरल प्रांजल शैली, गद्यात्मक लयबद्ध खडीबोली-काव्यभाषा, लयात्मक गद्य में कथाशैली का प्रयोग, काव्य भाषा के वैशिष्ट्य से कविता का वाचिक-परंपरा की ओर आनयन, विविध बोलियों के शब्द-भंडार से खडी बोली को समृद्ध करने का प्रयास, अखंडित काव्य भाषा की अवधारणा, उर्दू से बढकर संस्कृत का प्रभाव, तुलसी-निराला की क्लासिकल काव्य भाषा परंपरा का अनुसरण, आम जनता के नैसर्गिक जीवन-भाषा के प्रति रुझान, लोकधुनों और लोक लय की गहरी पकड, लोकलय से निर्मित भाषिक ढाँचा, आदि के कारण त्रिलोचन की काव्य भाषा अलग खडी दीखती है और यह अनूठी कही जा सकती है।

संक्षेप में, त्रिलोचन की काव्य भाषा अवध अँचल के जनपदीय जीवन के परिवेश के स्वरूप की स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ हुई है। त्रिलोचन की काव्य भाषा का यह विशेष पहलु उनके व्यापक जीवनानुभव और विस्तृत काव्यानुभव के लिए पर्याप्त प्रमाण भी है।

---

1. अरघान – पृष्ठ 74. त्रिलोचन

शिल्पगत अनुशासन त्रिलोचन की कविता की अपनी विशिष्टता है। कविता के अंतरंग स्तर पर अनुशासन की पूरी गहराई को वे निभाते रहते हैं। लेकिन कविता के अभिव्यक्ति-पक्ष को अधिकाधिक संप्रेषणीय बनाने की दिशा में भी वे दत्तचित्त हैं। आधुनिक कविता की तमाम शैल्पिक विशिष्टताओं के बावजूद उनकी कविता जनवादी स्वर अपना लेती है। उपरोक्त सूचित किया गया है कि वे सॉनेट के पक्षपाति हैं। लेकिन उस प्रकरण में यह भी स्पष्ट होता है कि वे सरलता के भी आकाँक्षी हैं। शिल्प और कथ्य के बीच की अन्विति त्रिलोचन की कविता में पूरी तरह से संतुलित है।

उपसंहार

छायावादोत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख काव्य प्रवृत्ति के रूप में प्रगतिवाद का परामर्श होता है। वस्तुत: प्रगतिवाद काव्य-प्रवृत्ति से बढ़कर काव्यान्दोलन भी है, क्योंकि प्रगतिशील अवधारणा ने हिन्दी कविता को ही नहीं बल्कि तमाम भारतीय भाषाओं की कविताओं को एक विशिष्ट गति दी है। प्रगतिवाद का प्रारंभ छायावादी कविता के विरोध में हुआ या छायावादी काल में ही प्रगतिवादी चेतना का प्रस्फुटन हुआ, यह तथ्य उतना मुख्य नहीं है जितना प्रगतिवादी कविता की निजी अवस्था है। प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण देन महामानव के स्थान पर लघुमानव की प्रतिष्ठा है। प्रगतिवाद की दूसरी मुख्य देन जीवन के साथ उसका ठोस साक्षात्कार है। हिन्दी काव्य विकास हमें यह बता रहा है कि प्रगतिवाद के पश्चात् प्रयोगवाद तदुपरान्त नयी कविता आदि का विकास हुआ। लेकिन प्रश्न यह है कि प्रगतिवादी युग में हिन्दी कविता ने जिस प्रगतिचेतना को अभिव्यक्ति दी, क्या वह विकसित होती गई या अवरूद्ध। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी दौर की परवर्ती रचनाओं में प्रगतिचेतना का निरंतर विकास हुआ है। यहाँ तक कि हम यह भी बता सकते हैं कि समकालीन कविता की वास्तविक जड़ें प्रगतिवादी कविता में विद्यमान हैं।

प्रगतिवाद की एक बहुत बडी कमी की तरफ़ मुक्तिबोध ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। मनुष्य मात्र को राजनीतिक परिदृश्य में पहचानने का उपक्रम जो प्रगतिवाद में प्राप्त होता है उसका विरोध ही मुक्तिबोध ने किया था। प्रगतिवाद को एक अन्य कमज़ोरी के बारे में कई आलोचकों ने संकेत किया है। छायावादी कविता के भावावेग को स्थिति का विरोध तो प्रगतिवाद ने किया, लेकिन अंतत: प्रगतिवाद स्वयं भावावेग की कविता है। इतने पर भी यह तथ्य भी महसूस किया जा सकता है कि प्रगतिवादी दौर में

ही कविता पूर्णतः मानवीय हो जाती है। परवर्ती युगों के सौन्दर्यात्मक रुझानों में अनेक प्रकार के परिवर्तन के होने के बावजूद मानवीयता की तलाश और तत्संबंधित कविता के सहज पक्षों का अन्वेषण कविताओं में विद्यमान है। प्रगतिवाद की इस प्रासंगिकता पर सन्देह प्रकट नहीं किया जा सकता। नारेबाजियों के समीप तक पहुंचनेवाली कविता भी इस दौर में लिखी गई। फिर भी मनुष्य को केन्द्र में पहचानने के कारण प्रगतिवाद का अपना अलग मूल्य है।

त्रिलोचन का संबंध हिन्दी कविता के प्रगतिवादी दौर से अवश्य है। प्रगतिवाद के सभी प्रकार के उतार एवं चढ़ावों से भी उनकी प्रारंभिक कविताओं का संबंध है। लेकिन तब भी ऐसा अनुभव होता था कि वे अपनी कविताओं को प्रगतिवाद की सीमा के बाहर ले जा रहे हैं। प्रगतिवाद की वास्तविक स्थिति को उन्होंने अपनाया। प्रगतिवाद की बहिरंग स्थितियों से लगातार वे अपने को अलग करते रहे। यद्यपि उनकी प्रारंभिक कवितायें पूर्णतया कमज़ोरियों से मुक्त नहीं हैं फिर भी प्रगतिवादिता की आत्मा को पहचानते हुए अपनी रचनाओं को जीवन्त बनाने का कार्य अकसर उन्होंने किया है। अतः प्रगतिवाद के दौर के समाप्त होने के बाद भी त्रिलोचन की कविता आगे बढ़ती रही। इस बीच अनेक प्रकार के प्रयोगों, नये नये काव्य-रूपों के प्रति भी वे आकर्षित होते रहे। लेकिन इन प्रयोगों के बीचों बीच नये नये काव्य-रूपों के मध्य एक झिलमिलाता सत्य प्राप्त होता है। वह त्रिलोचन द्वारा अन्वेषित मनुष्य का सत्य है। इसे उन्होंने पूरी आत्मीयता के साथ अपनी कविताओं में केन्द्रित किया है। वादों एवं प्रतिवादों के प्रवाह में न पडकर जीवन धारा की गहराइयों में गोता लगाते हुए त्रिलोचन ने इस मनुष्य को शब्द दिया है। इसलिए उनके शब्द कभी भी खोखले नहीं बने।

मानवीय चेतना की ठोस स्थिति को स्वीकारने के कारण त्रिलोचन की कविता के अन्तर्प्रवाह की गति प्रगतिचेतना से सुनिर्णीत है। उसमें जूझने और

टकराने की शक्ति है, अभिसंधि न करने की क्षमता है और सामान्य लोगों की आकांक्षाओं की तथा उनके छोटे-बड़े संसार की तमाम बातें हैं। यह सर्वसम्मत बात है कि त्रिलोचन किसानी चेतना के कवि हैं। बचपन से लेकर जिस दुनिया से उनका सरोकार था, जिस वातावरण में वे पले, उसकी यथोचित अभिव्यक्ति ही उन्होंने दी नहीं, बल्कि उन्होंने उस संसार को साकार कर दिया, उसके रोए-रेशे से मिलकर, उससे सात्मीकृत होकर, उसके अणु-अणु में विलयित होकर ही उन्होंने इस चेतना के लिए शब्द दिए हैं। अतः हमें लगता है कि उनके अनुभव संसार के दो पक्ष हैं। एक, सीधा सपाट तथा निराड पक्ष और दूसरा तीक्ष्ण प्रतिक्रियाओं का कर्कश पक्ष। दोनों त्रिलोचन के कवि व्यक्तित्व के दो अभिन्न अंग ही हैं।

त्रिलोचन ने अमानवीय हरकतों का डटकर विरोध किया है। उनकी कविताओं में प्राप्त व्यंग्य वृत्ति का पूरा परिदृश्य उनकी तीखी प्रतिक्रियाओं से संबंधित है। राजनीति की विडंबनात्मक स्थितियों की शून्यताओं से संबंधित दर्जनों कवितायें उनकी मिलती हैं। ये मात्र व्यंग्य कवितायें नहीं हैं। इनमें "अयरनी" का जो सूक्ष्म परिवेश विवृत होता है उसमें उस निरीहता की खोज भी वर्तमान है। त्रिलोचन की आस्था बराबर उस मनुष्य के लिए रही है जो निरंतर टूटता बिखरता रहता है।

सामाजिक विडंबनाओं से संबंधित त्रिलोचन की कविताओं में चट्टान की तरह खड़े होने वाले कवि का व्यक्तित्व प्रकट मिलता है। लेकिन हर प्रकार की चुनौती को अपनाने के उपरान्त भी वे अपने भीतर रोशनी संरक्षित रखते हैं। उनके सामने अँधेरा ही नहीं है। विडंबनाओं की अँधियारी से परिचित होने के साथ साथ अपनी आस्था के आलोक को भी वे जाज्वल्यमान कर डालते हैं।

इन तमाम विडंबनाओं के मध्य ही उन्होंने अपने को देखा और महसूस किया है। अपने को दर्शाते समय कहीं भी अद्वितीयता का पुट उन्होंने दिया नहीं है। उन्होंने लगातार अपनी निरीहता और टूटन का रेखांकन

किया है। पर उनमें पराजय का स्वर कहीं भी गुंजायमान नहीं है। दबकर भी न दबने की अवस्था का प्रयास उनका रहा है। आत्मपरक रचनाओं में यही बात लक्षित होती है। यह त्रिलोचन की अस्मिता की विशिष्ट पहचान है। समान्तर गति से बढकर भी वे अकेले दीख पडते हैं। जीवन की समान्तरता के पूरे वैभवों और आडंबरों को उन्होंने अपनाया नहीं। जीवन की समान्तरता के साथ भागते समय भी वे रुके रहे कि जब कभी भी उन्हें जीवन की सहजता का कोई कण प्राप्त हुआ। इस कण की खोज ही वस्तुतः त्रिलोचन की कविता है।

सामाजिक असंगतियों पर अंकुश लगानेवाले, प्रगतिशील चेतना को आत्मसात् करनेवाले इस कवि की कवितायें अपने सहयोगियों से बढकर सौन्दर्यवादी हैं। जीवन यथार्थ से कटकर नहीं, बल्कि उससे जुडकर उन्होंने सौन्दर्य का प्रतिपादन किया है। अगर उनकी कवितायें प्रेम और प्रकृति की रंगस्थली हैं तो उनके सौन्दर्यात्मक रुझान का एक अनूठा पक्ष उसके साथ इस कदर जुडा हुआ है जो कि उनकी सूक्ष्म चेतना की व्यापकता ही है।

त्रिलोचन प्रेम के भी कवि हैं। उनकी प्रेमपरक कविताओं में प्रेम-भावना के सभी रूप उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि उन्होंने रूप वर्णन-संबंधी कविताएँ भी लिखी हैं। प्रेम के संयोग और वियोग पक्षों को भी उन्होंने स्वीकारा है। इतने पर भी प्रेम भावना को जिस नैतिक आधार के साथ उन्होंने स्वीकारा है, वह मुख्य है। त्रिलोचन के लिए प्रेम स्वस्थ मन की स्वस्थ भावना है। इसलिए वे उसका यथार्थपरक वर्णन करते हैं। उनकी कविताओं में ऐसे सन्दर्भ हैं जहाँ प्रेमी-प्रेमिका अभावग्रस्तता के बीच में भी स्वस्थ प्रेम का अनुभव करते हैं। इसके दो पक्ष हैं। एक, अभावग्रस्तता को उन्होंने दयनीय नहीं बनाया, दूसरा, जीवन के प्रति निरंतर विकासमान सौन्दर्यात्मक आकर्षण। उनकी कविता में कहीं भी यह तथ्य उभरता नहीं है कि जीवन से मुँह मोडा जाय, पलायनवादिता का किंचित् स्पर्श भी उनकी कविताओं में नहीं है। अपने अभावों, कमियों, कमज़ोरियों के प्रति अभिज्ञ होते हुए भी प्रेम भावना को उन्होंने कुंठित नहीं किया है। प्रेम भावना को उन्होंने जीवनीशक्ति के रूप में भी स्वीकार किया है।

त्रिलोचन की प्रेम कविताओं में लोकधर्मिता के कुछ अनूठे दृश्य भी उपलब्ध होते हैं। इसका विकास उन्होंने किसान प्रेम के विकास के माध्यम से संभव बनाया। किसान को अपनी खेती और फसल से जुड़ाव है। त्रिलोचन ने उसे सामान्य इच्छा के रूप में न देखकर उसकी गहरी आस्था के रूप में अनुभव करते हुए प्रेम का एक लोक-वातावरण सृजित किया है। समान गति से आस्था और प्रेम का विकास होता है। यथार्थ की कर्कशता से जुड़कर इसका दिनों दिन विकास होता है। इन सन्दर्भों में उनका प्रेम जितना यथार्थपरक है साथ ही साथ तरल और कोमल भी।

त्रिलोचन की अधिकाधिक प्रेम-कवितायें स्मृति रूप में विन्यसित हैं। उनकी इन स्मृतियों में प्रेम भावना की तीक्ष्णता के विभिन्न क्षण भी विद्यमान हैं तथा उन स्मृतियों से धीरे धीरे उभरता हुआ उनका जनपद भी है खेत-खलिहानों, मैदानों और टीलों, तालाबों और पोखरों के बिंबों को उन्होंने अपनी कविताओं में उतारा है और यह सब उनकी प्रेम भावना के साक्षी भी हैं। हिन्दी में त्रिलोचन ही एक मात्र कवि हैं जिन्होंने प्रेम का इतना स्वच्छ और लोकधर्मी पक्ष को चित्रित किया। मगर यह भी लोकधर्मिकता की वायवी आसक्ति के कारण नहीं है। उनकी प्रेम परक स्मृतियों में जीवन का कसमसाता हुआ रूप विद्यमान है और उस कसमसाहट का अनुभव करनेवाला एक ग्रामीण व्यक्ति जो उनकी कविताओं में अनेकानेक नामों के साथ विभिन्न भूमिकाओं में प्रकट होता रहता है। त्रिलोचन की कविता की गहनता के इस पक्ष तक पहुँचने के बाद हम यह कहने के लिए मजबूर हो जाते हैं कि उनकी प्रेम भावना और प्रकृति प्रेम के पीछे उनकी प्रगतिशील अवधारणा है।

प्रकृति के साथ त्रिलोचन ने इस प्रकार अपने को मिलाया है कि उससे उनकी कवि-दृष्टि को अलग करना कठिन-सा प्रतीत होता है। वे प्रकृति में रमे हुए कवि हैं। प्रकृति की समग्रता उनकी कविताओं में आद्यंत वर्तमान है। परन्तु प्रकृति का यह मोह उनकी जनवादी चेतना को अवरुद्ध करता

नहीं है। उनमें धरती का जो अनुराग है उसके दो पक्ष हैं। धरती का ठोसपन अर्थात् जीवन की लय, धरती का मोह अर्थात् विराट धरती का सात्मीकरण। ये दोनों पक्ष एक के बाद एक होकर उनकी कवि-दृष्टि को अनुप्राणित करते रहे हैं। अतः प्रकृति-कविताओं के माध्यम से वे अपनी धरती के कण-कण में तल्लीन हो जाते हैं। मगर इस तल्लीनता में आवेग नहीं बल्कि तन्मयता है एक विशेष आत्मीयता है।

भारत में लोक कविताओं की एक लंबी परंपरा है। त्रिलोचन ने भरसक ऐसा प्रयत्न किया है कि अपने को इस परंपरा के साथ जोड़े। लोक परंपरा के समान्तर ही काव्य की अभिजात परंपरा भी है। कभी कभी क्लासिकल परंपरा में लोक लय फूट पड़ती है और कभी कभी लोकपरंपरा में अभिजात तत्व दर्शित होते हैं। त्रिलोचन ने इन दोनों का सम्यक् अध्ययन किया और समान अनुपात में विशिष्ट तत्वों को ग्रहण भी किया है। यह बात उनकी कविताओं में एक नयी वस्तुपरकता के रूप में विद्यमान है। प्राकृतिक चित्रों, मनोरम दृश्यों, प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलुओं को चित्रित करते समय सौन्दर्य की भंगिमा का पूरा उन्मेष वे उतारते हैं। उसके साथ साथ प्रकृति में निहित गहरी स्थानीयता का एहसास भी देते चलते हैं।

प्रभावग्रहण के बारे में विचार-विमर्श करते समय त्रिलोचन हिन्दी के कवियों में तुलसी के बाद सिर्फ निराला का जिक्र करते हैं। निराला के व्यक्तित्व की तेजस्विता और उनके शब्दों की गहराई के वे सच्चे समर्थक हैं। तुलसी से भाषा सीखने की बात भी उन्होंने कही है । लेकिन ऐसे अनेक लोक कवियों और अप्रतिष्ठित कवियों का जिक्र भी त्रिलोचन करते रहते हैं जिनके प्रति उनके मन में आदर समन्वित आस्था है। प्रश्न उठ सकता है कि इन कवियों से त्रिलोचन ने क्या ग्रहण किया है। त्रिलोचन की कविता का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह तथ्य सामने आ जायेगा कि उनमें प्राप्त गहरी स्थानीयता एक व्यापक लोकसंवेदना की रचनात्मक विवृति है। अपनी कविताओं के माध्यम से त्रिलोचन ने उस परंपरा का ही विकास किया है।

त्रिलोचन काफी लंबे अरसे से हिन्दी कविता में रचना-रत हैं। समय के इस लंबे दौर में कविता के रूप पक्ष को विभिन्न ढंग से सँवारने का कार्य भी उन्होंने किया है। परन्तु वे रूपवादी नहीं है। अन्य कई काव्यरूपों से बढकर सॉनेट के प्रति त्रिलोचन को विशेष आसक्ति है। लगातार इस काव्य रूप में उन्होंने शोध-परिशोध किया है। लेकिन कविता की मूल चेतना को ध्वंसित करने का कार्य उन्होंने किया नहीं है। अपनी कविता की विशेष पहचान के प्रति वे सचेत हैं। इस अर्थ में वे अनुशासनप्रिय भी हैं, विशेष रूप से भाषा के सन्दर्भ में। अपना संबंध वाचिक परंपरा से मानते हुए भी भाषिक संरचना को शिथिल करने का कार्य उन्होंने किया नहीं है। त्रिलोचन सही शब्दों के कवि हैं। अपनी विशिष्ट भाषिक चेतना के माध्यम से त्रिलोचन ने यह सिद्ध किया है कि शब्दों की विशिष्टता प्रयोग की विशिष्टता पर निर्भर नहीं बल्कि उसके माध्यम से जीवन की पहचान पर निर्भर है।

त्रिलोचन आज की हिन्दी कविता में - समकालीन हिन्दी कविता में - एक धन्य नाम है। जीवन के साथ जुडे रहकर कवि कर्म में लगे हुए कवियों के लिए त्रिलोचन की कविता प्रेरणा देती है। इसका कारण यही है कि त्रिलोचन का जीवन भी कविता के समान है। त्रिलोचन का व्यक्तित्व समकालीन कविता का सच्चा प्रतिनिधि है। अलावा इसके उनकी कविता भाषिक अस्मिता की खोज की कविता भी है। इस अर्थ में समकालीन हिन्दी कविता के वे अग्रज कवि हैं

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

( ) ... के ...

1977	नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद
गुलाब और बुलबुल (1985)	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
3. दिगन्त (1957)	जगत शंखधर वाराणसी
4. ताप के ताए हुए दिन (1980)	संभावना प्रकाशन हापुड़
5. शब्द (1980)	वाणी प्रकाशन दिल्ली
6. उस जनपद का कवि हूँ (1981)	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
7. अरघान (1983)	वाणी प्रकाशन दिल्ली
8. तुम्हें सौंपता हूँ (1985)	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
फूल नाम है एक (1985)	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
10. अनकहनी भी कुछ कहनी है (1985)	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली

11.	[illegible] (1987)		वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

(ख) अन्य कवियों के काव्य-संकलन

12.	[illegible] (1964)	[illegible]	परिमल प्रकाशन इलाहाबाद
13.	चाँद का मुँह टेढ़ा (1964)	मुक्तिबोध	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी
14.	युगधारा (1982)	नागार्जुन	यात्री प्रकाशन दिल्ली
15.	युग की गंगा (1947)	केदारनाथ अग्रवाल	हिन्दी ग्रन्थ मंदिर लिमिटेड, बंबई
16.	रूपतरंग (1956)	रामविलास शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
17.	सतरंगे पंखोंवाली (1984)	नागार्जुन	वाणी प्रकाशन दिल्ली
18.	हिल्लोल (1946)	शिवमंगलसिंह सुमन	सरस्वती प्रेस, बनारस

(ग) आलोचनात्मक ग्रंथ (हिन्दी)

	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (1964)	– नामवर सिंह	– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
20.	आधुनिक [illegible] (196[illegible]	– डा. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र	– ग्रंथम् कानपुर
21.	आधुनिक हिन्दी काव्य में – यथार्थवाद (1966)	डा. परशुराम शुक्ल विरही	– ग्रंथम् कानपुर
22.	आधुनिक हिन्दी कविता में – प्रेम और श्रृंगार (1961)	डा. रांगेय राघव	– राजपाल एंड संज़ दिल्ली
23.	आधुनिक हिन्दी काव्य – (1973)	डा. भागीरथ मिश्र	– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
24.	आधुनिक हिन्दी कविता में – शिल्प (1963)	कैलाश बाजपेयी	– आत्माराम एंड संज़, दिल्ली
25.	आधुनिक हिन्दी काव्य में – छन्द योजना (1958)	डा. पुत्तूलाल शुक्ल	– लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ
26.	उर्दू भाषा और साहित्य – (1962)	रघुपति सहाय फिराक-गोरखपुरी	– हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश

27.	[illegible]- [illegible] शब्द कोश (19[illegible])	मुहम्मद मुस्तफ़ा	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश
28.	[illegible] (1972)	शिवप्रसाद सिंह	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी
29.	काव्य और प्रकृति (1960)	डा. रघुवंश	नाशनल पब्लीशिंग हाउस, दिल्ली
30.	काव्यपुरुष निराला (1970)	डा. जयनाथ नलिन	आलोक प्रकाशन, कुरुक्षेत्र
31.	काव्य शिल्प के आयाम (1971)	सुलेख शर्मा	आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
32.	काव्यबिंब (1967)	डा. नगेन्द्र	नाशनल पब्लीशिंग हाउस, दिल्ली
33.	काव्यभाषा (1976)	डा. सियाराम तिवारी	मैकमिलन कंपनी, नई दिल्ली
34.	काव्यांग कौमुदी (तृतीय कला) (1966)	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नन्द किशोर एंड ब्रदर्स, वाराणसी

35. काव्य के रूप (1958) – गुलाबराय – आत्माराम एंड संज़, दिल्ली

36. [illegible] और छायावाद (1969) – सुरेन्द्र माथुर – ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली

37. कविता के नये प्रतिमान (1968) – नामवर सिंह – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

38. कुछ विचार (1961) – प्रेमचन्द – सरस्वती प्रेस बनारस

39. केदारनाथ अग्रवाल (1986) – सं. अजय तिवारी – परिमल प्रकाशन इलाहाबाद

40. छायावाद (1955) – नामवर सिंह – सरस्वती प्रेस बनारस

41. छायावाद (1968) – नामवर सिंह – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

42. छायावादोत्तर हिन्दी-गीतिकाव्य (1985) – डा॰ सुरेश गौतम – प्रेमप्रकाशन मंदिर दिल्ली

43. [illegible] के पद (1978) – मुजीब रिज़वी, अशोक चक्रधर – मैकमिलन दिल्ली

44. छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत (1975) - विनोद गोदरे - वाणी प्रकाशन दिल्ली

45. जनकवि (1984 - सं. विजयबहादुर सिंह - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली

46. त्रिलोचन की प्रतिनिधि-कवितायें (1983) - डा. केदारनाथ सिंह - राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

47. त्रिलोचन की कविता यात्रा (1983) - डा. जीवनप्रकाश जोशी - संधान प्रकाशन नई दिल्ली

48. त्रिलोचन के काव्य (1985) - राजू. एम. फिलिप - यात्री प्रकाशन दिल्ली

49. दरअसल (1981) - डा. कमलाप्रसाद पांडेय - साहित्यवाणी इलाहाबाद

50. नया साहित्य: नये प्रश्न (1963) - नन्ददुलारे बाजपेयी - विद्यामंदिर वाराणसी

51. नयी कविता का आत्मसंघर्ष (1983) - मुक्तिबोध - राजकमल नई दिल्ली

52. नयी कविता (1976) - आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी - मैकमिलन कंपनी दिल्ली

53. नये साहित्य का तर्कशास्त्र (1975) – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – मैकमिलन कंपनी दिल्ली

54. निराला काव्य का वस्तु-तत्व (1979) – डा. भगवान देव यादव – साहित्य रत्नालय कानपुर

55. परिप्रश्न (1985) – सं. अश्विनी – संधान प्रकाशन दिल्ली

56. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल (1986) – डा॰ रामविलास शर्मा – परिमला प्रकाशन इलाहाबाद

57. प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य (1984) – अजय तिवारी – परिमल प्रकाशन इलाहाबाद

58. प्रगतिवाद की रूपरेखा (1952) – डा. मन्मथ नाथ गुप्त – आत्माराम एण्ड संज़्स, दिल्ली

59. प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन (1966) – हँसराज रहबर – नवयुग प्रकाशन दिल्ली

60. प्रगतिवाद और समानांतर-साहित्य (1978) – रेखा अवस्थी – मैकमिलन कंपनी दिल्ली

61. प्रगतिवाद (1966) – शिवकुमार मिश्र – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

62. प्रगतिवादी काव्य साहित्य (1971) – डा. कृष्णलाल हंस – मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

63. प्रगतिवादी काव्यः उद्भव और-विकास (1984) डा. अजितसिंह साहित्यलोक कानपुर

64. प्रगतिशील काव्य (1966` – उमेशचन्द्र मिश्र – ग्रंथम् कानपुर

65. भारतीय साहित्य कोश (1981) – डा. नगेन्द्र – नेशनल पब्लीशिंग हाऊस, नई दिल्ली

66. मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ- तथा नवनिबंध (1955) परशुराम चतुर्वेदी – लोकसेवासदन प्रकाशन, बनारस

67. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता (1980) – भक्तराम शर्मा – वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

68. मार्क्सवाद और प्रगतिशील- साहित्य (1984) – रामविलास शर्मा – वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

69. मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की- भूमिका (1981) – मक्खनलाल शर्मा – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

70. मुक्तिबोध रचनावली-5 (1980 -सं. नेमिचन्द्र जैन – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

71.	[illegible] (1979)	देवीशंकर अवस्थी	मैकमिलन कंपनी दिल्ली
72.	राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य (1953)	रामेश्वर शर्मा	[illegible]भारती प्रकाशन, दिल्ली
73.	[illegible] (1960)	[illegible] अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी
74.	लंबी कविताओं का रचना-विधान (1977)	नरेन्द्र मोहन	मैकमिलन कंपनी दिल्ली
75.	विचारबोध (1980)	केदारनाथ अग्रवाल	परिमल प्रकाशन इलाहाबाद
76.	साहित्य की समस्यायें (1956)	शिवदानसिंह चौहान	आत्माराम एंड संज़, दिल्ली
77.	हिन्दी साहित्य का बृहत्-इतिहास (चतुर्दश भाग) (1957)	सं. हरवंशलाल शर्मा	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
78.	हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास (1952)	हजारी प्रसाद द्विवेदी	यू. सी. कपूर एंड संज़, दिल्ली
79.	हिन्दी साहित्य का इतिहास (1973)	डा. नगेन्द्र	नाशनल पब्लीशिंग हाउस, दिल्ली

80.	हिन्दी कविता एक आधुनिक- आयाम छायावादोत्तर (1978)	रामदरश मिश्र	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
81.	हिन्दी कविता की प्रगतिशील- भूमिका (1978)	सं. प्रभाकर श्रोत्रिय	मैकमिलन कंपनी दिल्ली
82.	हिन्दी साहित्य का इतिहास- (1955)	रामकुमार वर्मा	रामनारायण लाल प्रयाग
83.	हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य (1967)	सच्चिदानंद वात्स्यायन	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
84.	हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी- चेतना (1974)	जनेश्वर वर्मा	ग्रंथम् कानपुर
85.	हिन्दी समीक्षा और संदर्भ (1974)	रामदरश मिश्र	मैकमिलन कंपनी दिल्ली
86.	हिन्दी साहित्य का इतिहास (1982)	डा. हरिश्चन्द्र वर्मा रामनिवास गुप्त	मंथन पब्लिकेशन रोहतक, हरियाणा
87.	हिन्दी की प्रगतिशील कविता (1971)	डा. रणजीत	हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली

88.	हिन्दी की प्रगतिवादी कविता 1985	-	डा. सुरेन्द्र प्रसाद		चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
89.	हिन्दी छन्द प्रकाश (प्रथम संस्करण)	-	रघुनन्दन शास्त्री	-	राजपाल एंड संज़, दिल्ली
90.	हिन्दी गज़ल उसका उद्भव और विकास (1987)	-	रोहिताश्व अस्थाना	-	सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली
91.	हिन्दी कविता में लंबी कविता (1986)	-	डा. कमलेश्वर प्रसाद	-	भारतीय संस्कृतभवन जालंधर

(च) आलोचनात्मक ग्रंथ (अंग्रेज़ी)

92.	A Concise History of Russia (1972)	-	Ronald Hingley	-	Thomas & Hudson, London
93.	Ajoykumar Ghosh and Communist movement in India (1987)	-	Pyotr Kutsobin	-	Sterling Publishers (P) Ltd., New Delhi
94.	A History of Indian Freedom Struggle (1986)	-	E.M.S.Namboodiri--pad		Social Scientist Press, Trivandrum
95.	Art and Social Life (1953)	-	G.V.Plekhanov	-	People's Publishing House Ltd., Bombay

,0.	ın Studv t ratu (196ᵕ) -	ıli ry Hudson	- Georg G Harrap and Co.(Lt'), London
7.	A Hi ory English Li atur (1961)	- Ifor Evans	- Penguin ooks, London
3.	Cass ' yclopedi o Li tı (1953)	- Edi H.S' in	- Cassel and Co. (Ltd.), London
99.	Dictionary o Li erary Ter (19??)	- Harry Shaw	- Mcgraw Hill Company, New York
100.	Encyclop di Americana Vol.18. (International Edition) (1974)		- Americana Corporation
101.	History of the Freedom ove nt in India Vol.III (63)	- R.C.Manjumdar	- Firma.K.L. Mukhopadhay, Calcutta
102.	Hist ry of the Freedom Mov n in India, (vol.4) 1972	- Tharachand	- Publications Division Ministry of Information & Broadcasting Government of India, New Delhi

103.	History of the Freedom Movement in India (Vol.2) (1963)	- R.C.Manjumdar	- Firma.K.L. Mukhopadhaya Calcutta
104.	Illusion and Reality (1966)	- Christopher Cadwell	- Peoples' Publishing House, New Delhi
105.	Image and Experience (1960)	- Graham Hough	- Gerald Duckworth & Co., London
106.	'India and World Civilisation (Vol.2) (1971)	- D.P.Singhal	- Rupa and Co Calcutta
107.	Modern India (1984)	- Bipin Chandra	- National Council of Educational & Tranining New Delhi
108.	On Literature and Art (1967)	- Lenin	- Progress Publishers, Moscow
109.	Poetry and Practice (1965)	Archibald Macleish	- Penguin books London

110.	Rural Economics (1984)		K.V.Patel, A.C.Shaw and L.D'mello	-	Himalaya Publishing house, Bombay
111.	On Literature	-	Maxim Gorkey	-	Foreign Languages publishing House, Moscow
112.	Struggle for freedom (1969)	-	K.M.Mumshi	-	Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay
113.	The Concise Encyclopedia of World History (1971)	-	John Bowle	-	Hutchinson of London
114.	The new Encyclopedia of Britanica (Macropaedia) Vol.26 (1985)	-	Robert P Gwinn Chairman Board of Directors	-	The University of Chicago, Chicago
115.	The necessity of Art (1964)	-	Ernst Fisher	-	Penguin Books, London
116.	The Cambridge History of India (Vol.VI) 1932	-	H.H.Dodwell	-	S.Chand & Co. Delhi

117. Th[illegible] Po[illegible] – [illegible] Sketon – [illegible] London
(

118. Th[illegible] T[illegible] (198[illegible]) – [illegible] – Oxford [illegible]ty Pre[illegible] London
4 E[illegible]

119. Th[illegible] Uni[illegible]l Dic[illegible] of the En[illegible]li[illegible] Langu[illegible] (19[illegible]) – Henry Cecil Wyld – London The [illegible] Book Company (Ltd)

120. Th[illegible] Short[illegible] Oxford English [illegible]ctionary (1959) – C.T.Onions – Oxford Universit[illegible] Press, London

121. Th[illegible] College Encyclop[illegible] (1978) – – Galahad Books New York

122. Und[illegible]standing Po[illegible]try (19[illegible]7) – Cleanth Brooks – Holt R[illegible]ni[illegible]rt & Winston, New Yor[illegible]

(ङ.) आलोचनात्मक ग्रंथ (मलयालम)

123. नेरूदा (1985) – (अनुवादक) सच्चिदानन्दन – मलबरी बुक्स कालिकट

(ग) पत्रिकाएँ

			जुलाई–सितंबर 1976
	आलोचना	–	जनवरी–मार्च 1981
		–	अप्रैल–जून 1981
		–	जुलाई 1982
		–	अक्तूबर–दिसंबर 1985
		–	अप्रैल–जून 1986
		–	अक्तूबर–दिसंबर 1986
		–	जुलाई–सितंबर 1987
2.	आजकल	–	मई 1981
		–	अप्रैल 1982
3.	इसलिए	–	अगस्त 1977
4.	कल्पना	–	अगस्त–सितंबर 1969
5.	कृति विशेषांक	–	नवंबर–दिसंबर 1960
6.	जागृति	–	मई 1983
7.	धरती	–	फरवरी 1983 (4–5)
		–	(6) 1984 आलोचना विशेषांक
8.	परिशोध	–	मई 1983
9.	पहल	–	अक्तूबर 1980
10.	प्रकाशन समाचार (राजकमल)	–	दिसंबर 1986

11.	पूर्वग्रह	–	सितंबर 1984
		–	मार्च–जून 1986
		–	जुलाई–अगस्त 1986
		–	दिसंबर 1986
12.	महत्व त्रिलोचन स्मारिका	–	जून 1982
13.	भाषा	–	दिसंबर 1982
14.	वसुधा	–	अप्रैल–जून 1986
15.	समालोचक	–	मई 1958
16.	समीक्षा	–	जनवरी–मार्च 1983
		–	अक्तूबर–दिसंबर 1986
17.	सामयिक साहित्य राधाकृष्ण प्रकाशन	–	जुलाई 1985
1	सम्मेलन श्यामसुन्दरदास विशेषांक	–	दिसंबर 1978
19.	शोध	–	1985
20.	साक्षात्कार	–	सितंबर–अक्तूबर 1983
		–	जून–जुलाई 1984
		–	नवंबर–दिसंबर 1985
		–	दशक विशेषांक 1985

21.	स्थापना[illegible]	–	[illegible] 197
		–	दिसंबर 1970
		–	अक्तूबर 1970
2[illegible]	[illegible] का [illegible] के नाम [illegible]	–	सितंबर 1986
[illegible]3.	दस्तावेज़	–	अक्तूबर 1984

(ङ.) <u>अन्य भाषा (मलयालम)</u>

मातृभूमि साप्ताहिक	–	4-11-1988